ISSN No : 2583-3855
anuswaar@gamil.com

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

सदस्यता आवेदन

सदस्यता आवेदक का नाम ____________________

पूरा पता पिन कोड सहित ____________________

ईमेल आईडी व ____________________ **फोन नम्बर** ____________________

तारीख ____________________

हस्ताक्षर

मूल्य :

सामान्य प्रति : **150 रुपये,**

वार्षिक मूल्य : **600 रुपये,**

द्विवार्षिक मूल्य : **1000 रुपये**

आजीवन सदस्यता : **6000 रुपये**

भुगतान के लिए :

IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191

ISSN No : 2583-3855

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष : 3 मूल्य : 150/- अंक : 11 जुलाई-सितंबर 2023

सलाहकार मंडल

सलाहकार संपादक
डॉ. प्रेम जनमेजय
डॉ. एस.एस.मुद्गिल
डॉ. सुशील कुमार त्रिवेदी

प्रबंध संपादक
डॉ. मनोरमा

कार्यकारी संपादक
कामिनी

मुख्य संपादक
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशक एवं स्वामी
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशकीय/संपादकीय कार्यालय : 'अनुस्वार', सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)
मुद्रण कार्यालय : बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
वितरण कार्यालय : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)

© **स्वत्वाधिकार :** मुख्य संपादक : डॉ. संजीव कुमार

आवरण चित्र : शुभ्रामणि
आवरण एवं पुस्तक सज्जा : विनय माथुर

मूल्य : सामान्य प्रति : 150 रुपये
वार्षिक मूल्य : 600 रुपये
द्विवार्षिक मूल्य : 1000 रुपये
आजीवन सदस्यता : 6000 रुपये

भुगतान के लिए :
IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191
Paymtm No : 9893561826

नोट : भुगतान करने के उपरान्त रसीद के साथ अपना पता और फोन नं. हमें 9873561826/9810066431 पर व्हाट्सअप करें।

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीनी या फोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

डॉ. संजीव कुमार, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर) द्वारा स्वयं के स्वामित्व में प्रकाशित बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा-110032, से मुद्रित।

संपादक : डॉ. संजीव कुमार

अनुक्रम

मुख्य संपादक की ओर से	डॉ. संजीव कुमार	7
पाठक नामा		9
आवरण कथा		10
कलाक्षेत्रे	रामराज्य	11
विशिष्ट व्यक्तित्व : सन्तोष खन्ना		12
चिंतनधारा		
सन्तोष खन्ना की नाट्यसाधना	प्रो. सुरेश सिंहल	13
सामाजिक सरोकारों का दस्तावेज़ : सन्तोष खन्ना का 'फुंगियों पर धूप'	सौम्या पांडेय	19
आज के समय को विशाल फलक पर प्रदीप्त करता उपन्यास 'रोशनी'	प्रो. अमिता तिवारी	21
भारत का संविधान	सन्तोष खन्ना	23
सन्तोष खन्ना की आलोचकीय दृष्टि	डॉ. शकुन्तला कालरा	27
रूकना नहीं है मेरा नाम	रमेश चन्द्र	32
समसामयिक समस्याओं के समाधान तलाशता इतिहास	डॉ. देवदत्त शर्मा	39
कथाकार सन्तोष खन्ना : 'आज का दुर्वासा'	डॉ. सुधेश	42
वे कर्मयोगिनी हैं	संतोष बंसल	45
प्रेरक व्यक्तित्व डॉ. सन्तोष खन्ना	डॉ. अलका शर्मा	48
अंग्रेजी के मोहपाश में हिंदी भाषी	डॉ. जवाहर कर्णावट	50
वैश्विक परिदृश्य में उभरती हिंदी	अलका सोनी	52
हिमाचल साहित्य लेखन और समकालीन व्यंग्य	अशोक गौतम	56
डेल्फी (ग्रीस) में शिवलिंग	सन्तोष खन्ना	61
व्यंग्य का स्वरूप और नए प्रतिमान की तलाश	गिरीश पंकज	64
संवाद		
डॉ. संजीव कुमार का सन्तोष खन्ना के साथ संवाद	संवादकर्ता : डॉ. संजीव कुमार	76
कथा-कहानी		
नई किरण	सन्तोष खन्ना	85
आज़ादी (बाल कहानी)	सन्तोष खन्ना	94
ऐसा भी होता है	देवी नागरानी	95
चुटकुला	हरदीप सबरवाल	98
टुकड़े-टुकड़े ज़िन्दगी	हरीश पाठक	100

प्लीज़ हमें साथ रहने दो	डॉ. शकुन्तला कालरा	102
कान्दिवली की लड़कियाँ	ममता कालिया	106
सुनो मधुमालती	नीरजा माधव	112

मिर्ची के रंग

लोकतंत्र का पर्व	सन्तोष खन्ना	116
सर्व भिक्षा अभियान	डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'	118
चूं चूं का मुरब्बा	विवेक रंजन श्रीवास्तव	121
पांडेय जी नया और एजेंडा	लालित्य ललित	122
मानसून माननीय और मतवाले बादल	मुकेश राठौर	126

स्वास्थ्य साहित्य

पॉलिसिस्टिक ओवेरियन सिंड्रोम (PCOS)	डॉ. आराधना सिंह बुंदेला	127

विधि साहित्य

भारत का संविधान, संस्कृति और कानून : एक पाठक की दृष्टि में	सतीश चंद्र रस्तोगी	128

कविता/ग़ज़ल

धर्मपाल महेंद्र जैन की कविताएँ, सुनील गज्जाणी की कविताएँ, हरिहर झा की कविताएँ, बुद्धिनाथ मिश्र के दोहे, जगदीश चंद चौहान की कविताएँ, डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ, सन्तोष खन्ना की कविताएँ 130

पुस्तक समीक्षा

काल के कपाल पर हस्ताक्षर (हरिशंकर परसाई की प्रामाणिक जीवनी)	राहुल देव	137
गहन अनुभूतियों से भरा काव्य-संग्रह "साँझ के पंछी"	विजय कुमारी तिवारी	139
उदात्त की देह से परे आध्यात्मिक अनुभूति है यह उपन्यास	विनीता राहुरीकर	144

साहित्य समाचार

चित्र नगरी संवाद मंच मुम्बई	प्रेम जनमेजय	146
इंडिया नेटबुक्स ऑडियो बुक्स का टेस्ट लॉन्च	रिपोर्ट : शैली माथुर	148
राही रैंकिंग में 9वें स्थान के बाद डॉ. संजीव कुमार को जयशंकर प्रसाद स्मृति सम्मान	रिपोर्ट : शिवानी	149

अंततः

ज्यों ज्यों बूड़े परसाई रंग	प्रेम जनमेजय	150

मुख्य संपादक की कलम से

प्रिय पाठकों

अनुस्वार के अब तक दस अंक आप सभी तक पहुँच चुके हैं। आपका अनुस्वार के साथ जुड़ना और अपना सहयोग देना हमारे लिए एक अनुपम संयोग कहा जा सकता है जिसके लिए मैं अपने पाठकों का आभारी हूँ और हमें जो सुझाव प्राप्त हुए हैं वह अनुस्वार की गुणवत्ता में निरंतर संवर्धन करने के लिये मार्गदर्शन कराते रहते हैं।

अनुस्वार का यह ग्यारहवाँ अंक अंततः आपके समक्ष प्रस्तुत विधाओं से संबंधित सामग्री आपके सुझावों को ध्यान में रखते हुए संकलित एवं संपादित की गई है। जिसमें पठनीयता और उपादेयता का संतुलन बनाये रखने का पूरा प्रयास है।

जैसा कि आप जानते हैं अनुस्वार की "विशिष्ट व्यक्तित्व शृंखला" में पूर्व में लालित्य ललित, प्रताप सहगल, संतोष श्रीवास्तव, गिरीश पंकज व इस बार प्रसिद्ध साहित्यकार विधिवेत्ता एवं विधि भारती पत्रिका की संपादिका तथा लोकसभा में दशकों का अनुभव रखने वाली एक विशिष्ट व्यक्तित्व पर केंद्रित है।

सन्तोष खन्ना जी साहित्य के क्षेत्र में समान रूप से योगदान देती रही हैं। उन्होंने कहानी, लघुकथा, उपन्यास, कविता आदि लगभग सभी क्षेत्रों में काम किया है। उनकी लगभग 16 पुस्तकें एवं 20 संपादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और वे अनेको सम्मानों से नवाजी जा चुकी हैं। और वे विश्व रिकार्ड होल्डर भी हैं। हमें विश्वास है कि उनकी रचनाधर्मिता आने वाले समय में भी कायम रहेगी। आशा है कि पाठकों को उनके बारे में जानकर अच्छा होगा।

पिछले कुछ समय से आंतरिक एंव बाहय परिवेश में बहुत परिवर्तन आया है। कहीं-कहीं पर प्राकृतिक आपदाओं के कारण और कहीं-कहीं पर अपने स्वयं के मूल्यों के क्षरण के आपसी के कारण सौहार्द्रता के कारण क्षरण हुआ है और भारत में जी-20 के सफल संगमन के फलस्वरूप एक नई ऊर्जा का संचार हो रहा है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की साख मजबूत हुई है। इसके अतिरिक्त वैश्विक स्तर पर भारत के उत्पादों की माँग में भी वृद्धि हुई है। यह बदलती हुई स्थिति हमारे देश के परिवेश में सुधार स्पष्ट करती है। इन सबको देखते हुये हम उज्ज्वल भविष्य की कल्पना कर सकते हैं।

अनुस्वार के कलेवर में हम आपके समक्ष अच्छे से अच्छे लेख, कथाएँ, संस्मरण, समीक्षाएँ, कविताएँ, व्यंग्य आदि प्रस्तुत करते रहे हैं। इस अंक में भी आपके समक्ष चुनिंदा सामग्री प्रस्तुत कर रहे हैं 'जिसमें ममता कालिया, हरिप्रकाश राठी, नीरजा माधव, शकुंतला कालरा, सन्तोष खन्ना और सौम्या पांडे की कथाएँ हैं। लघुकथाओं में कमलेश भारतीय, बलराम अग्रवाल, की रचनाएँ हैं। काव्य संसार में हरिहर झा, सुनील गज्जाणी, धर्मपाल महेन्द्र जैन एवं सन्तोष खन्ना की कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं।

ये अंक व्यंग्य रचनाओं से भी खाली नहीं हैं। इसमें लालित्य ललित, रवि शर्मा 'मधुप' और सन्तोष खन्ना के व्यंग्य भी हैं और गिरीश पंकज का व्यंग्य पर वृहद आलेख भी है। इन सबके साथ सभी स्थायी स्तंभ यथानुरूप शामिल किये गये हैं। हमें सूचित करते हुये हर्ष है कि हमारे पाठकों से निरंतर संदेश प्राप्त होते रहे हैं कि अनुस्वार का सदस्य बना लिया जाये। इस अंक के साथ सदस्यता का फार्म संलग्न है। सदस्यता फार्म की एक प्रति, वार्षिक, द्विवार्षिक या आजीवन सदस्यता शुल्क के भुगतान के रूप में ग्रहण की जा सकती है।

आपका जुड़ना हमें बता देगा। आपका अनुस्वार परिवार में स्वागत रहेगा।

हम यह भी सूचित करना चाहते हैं कि इंडिया नेटबुक्स ने कई विधागत शृंखलाएँ आपके समक्ष प्रस्तुत की हैं जिनमें 251 व्यंग्यकारों की व्यंग्य संकलन, 'कवि के मन से' काव्य शृंखला, 'कथामाला' के नाम से कहानी-कथा शृंखला और लघुकथासागर के नाम से लघुकथा शृंखला एंव बाल साहित्य के लिए बाल संगमन धारा अपने शीर्ष पर पहुँच रही है। इन शृंखलाओं में न केवल वरिष्ठ रचनाकारों को शामिल किया गया है अपितु नवोदित रचनाकारों को भी गुणवत्ता के आधार पर अवसर दिया जा रहा है। यदि हमारे पाठकों में से कोई इन शृंखलाओं में भाग लेना चाहता है तो उसका स्वागत है। रचनाओं की गुणवत्ता के आधार पर संबंधित शृंखला संयोजक रचनाओं के चयन एवं संपादन का कार्यभार स्वतंत्र रूप से कर रहे हैं।

"हिंदी व्यंग्य शास्त्र" योजना के संबंध में अपेक्षित कदम उठाये जा रहे हैं और अब तक भारी संख्या में आलेख प्राप्त किये जा चुके हैं। ज्ञातव्य है कि इसमें व्यंग्य के विभिन्न पक्षों से संबद्ध आलेख होंगे। यदि आप व्यंग्य के किसी पक्ष पर अपना आलेख प्रस्तुत करना चाहते हैं तो 31 अक्तूबर 2023 से पहले **inbauthors@gmail.com** पर यथाशीघ्र भेज सकते हैं।

आपको ज्ञात होगा कि पिछले वर्ष लिखित एवं वीडियो साक्षात्कारों का एक लंबा सिलसिला चला था और कुल मिलाकर लगभग 300 साक्षात्कार रिकार्ड एवं संपादित किये गये थे। इनमें से 51-51 साक्षात्कार ''इंदम न मम'' एवं ''यथावत'' में संग्रहीत किये गये हैं और शेष वीडियो साक्षात्कार यू-ट्यूब पर ''इंडिया नेटबुक्स'' और ''अनुस्वार मंच'' चैनलों में संग्रहीत किये जा चुके हैं। आपसे अनुरोध ा है कि यू-टयूब पर इन साक्षात्कारों को देखकर अपने सुझाव संप्रेषित करें। अंत में यह स्पट कर देना चाहता हूँ कि द्वितीय चरण में नवोदित एवं युवा रचनाकारों के साथ भी सरल साक्षात्कार प्रारंभ कर दिये गये हैं। अतः साक्षात्कार के संबंध में अपनी स्वेच्छा का संदेश हमें व्हाट्सअप पर प्रेषित कर सकते हैं।

इंडिया नेटबुक्स ने बाल रचनाकारों को प्रेरणा देने के लिए एक योजना तैयार की है जिसमें विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के स्तर पर प्रतिभावान विद्यार्थियों की रचना क्षमता में विकास के लिये प्रयास किये जाते हैं और उनकी चुनिंदा रचनाओं को संकलित करके पुस्तकाकार दिया गया है। विद्यालय एवं महाविद्यालय से जुड़े हुये हमारे पाठकों को अनुस्वार मंच एवं इंडिया नेटबुक्स के द्वारा इस योजना के लिये आमंत्रित किया जाता है और इस सबंध में किसी भी जानकारी के लिये आप हमें संपर्क कर सकते हैं।

अनुस्वार समूह के अन्य क्रिया-कलापों एवं साहित्यिक गतिविधियों में निरंतर परिवर्धन हो रहा है। इस अवधि में आपके मुख्य संपादक को ''अंतर्राष्ट्रीय वैश्विक मंच'' द्वारा ''जयशंकर प्रसाद स्मृति पुरस्कार'' से विभूषित किया गया है। इसके अतिरिक्त, उन्हें अनेकानेक कार्यक्रमों में शामिल होने का मौका मिला है।

इस अंक के अतिथि संपादक श्री प्रेम जनमेजय को उनके सफल मार्गदर्शन हेतु धन्यवाद देता हूँ और आभार व्यक्त करता हूँ।

अंततः अनुस्वार का यह अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। आपके सुझाव एवं मार्गदर्शन की हमेशा प्रतीक्षा रहती है। आशा है कि अनुस्वार का यह अंक भी आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा।

डॉ. संजीव कुमार
मो. नं. 9873561826

पाठकनामा

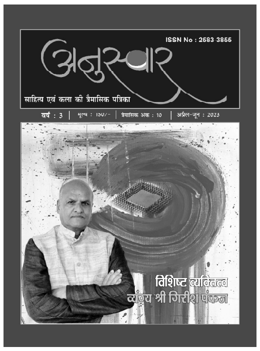

बड़े भैया गिरीश पंकज पर केंद्रित अनुस्वार का अंक (अप्रैल-जून, 2023) देखने का सौभाग्य मिला। भैया के लेखन से मैं शुरू से परिचित हूँ। उनका बहुआयामी लेखन हर किसी को प्रभावित करता है। ईशान की सामग्री पढ़कर मुझे भी कुछ नई बातें जानने का अवसर मिला। संजीव कुमार से उनकी जो लंबी बातचीत हुई, वह किसी दस्तावेज़ से काम नहीं है। आलोक सक्सेना द्वारा लिया गया साक्षात्कार भी ज्ञानवर्धक है। अन्य सामग्री भी गिरीश भैया के व्यक्तित्व को समझने के लिए पर्याप्त है। अनुस्वार के इस उपक्रम की कितनी तारीफ की जाए, कम है।

सतीश उपाध्याय, मनेन्द्रगढ़ (छत्तीसगढ़)

अनुस्वार का अप्रैल जून 2023 का अंक पढ़ने को मिला। विशिष्ट व्यक्तित्व व्यंग्यश्री गिरीश पंकज पर एकाग्र इस साहित्यिक पत्रिका के अभिनव अनुष्ठान को देखकर आत्मिक खुशी हुई। आपने मेरा लेख भी प्रकाशित किया है, इस हेतु आपका आभार। आलोक सक्सेना ने गिरीश पंकज के साथ जो बातचीत की है, वह पठनीय है। भाषा और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं, यह बात विचारणीय है। शख्सियत जिनका कहना है में डॉक्टर संजीव कुमार की लंबी बातचीत भी प्रभावित करती है। गिरीश पंकज साहित्य और पत्रकारिता की दुनिया के एक अनोखे हस्ताक्षर हैं। इन पर आपने जो विशिष्ट सामग्री प्रकाशित की है, इससे उनके बारे में साहित्य जगत के अन्य लेखन पाठकों को विस्तार के साथ पता चलेगा। अनुस्वार का हर अंक अपने किस्म का अनूठा अंक होता है। इसका कलेवर, इसकी सामग्री इसे देश की महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका के रूप में स्थापित कर रही है।

रविन्द्र गिन्नौरे, भाटापारा

गिरीश पंकज पर केंद्रित अनुस्वार का अंक पढ़कर लगा कि एक सक्रिय लेखक के साथ किसी पत्रिका ने न्याय किया। इतना कुछ लिखे जाने के बावजूद भैया को जिस तरह का महत्व मिलना चाहिए था, वह नहीं मिल सका। मगर अनुस्वार ने इसकी कमी पूरी कर दी। आपका धन्यवाद। जितनी भी सामग्री इसमें प्रकाशित हुई है, उसे मैंने ध्यान से पढ़ा। अनुस्वार के इस कार्य की जितनी भी प्रशंसा करूं, कम है।

अर्चना शर्मा, सिलीगुड़ी (पश्चिम बंगाल)

विशिष्ट व्यक्तित्व व्यंग्यश्री गिरीश पंकज पर एकाग्र अनुस्वार का अंक संग्रहणीय बन गया है। आपको बधाई। इस अंक में प्रकाशित अनेक लेख सृजनधर्मी रचनाकार को समझने में सहायक साबित होंगे। जब गिरीश पंकज पचास वर्ष के हुए थे, तब मैंने भी साहित्य वैभव पत्रिका का एक अंक 'पचास के गिरीश' प्रकाशित किया था। पन्द्रह साल बाद फिर एक महत्वपूर्ण अंक अनुस्वार के रूप में सामने आया है। डॉ. संजीव कुमार से लेकर प्रेम जनमेजय तक की कलम से गिरीश जी के बारे में 'सद्‌भावना' के साथ जो कुछ लिखा गया है, वह उनके कृतित्व का 'दर्पण' ही कहा जाएगा।

डॉ. सुधीर शर्मा, रायपुर

अनुस्वार का अप्रैल-जून 2023 अंक देखकर मुझे आत्मिक खुशी हुई। यह मेरा परम् सौभाग्य है कि अनुस्वार जैसी चर्चित हो चुकी साहित्यिक पत्रिका ने मुझ पर सामग्री प्रकाशित की। आज के समय में ऐसी उदारता दुर्लभ हो चुकी है। डॉक्टर संजीव कुमार, आप तीव्रगति के साथ लिखने वाले रचनाकार तो हैं ही, लेकिन उससे भी पहले आप बेहतर मनुष्य हैं। आपका नीरक्षीर विवेचन मुझे हर वक्त प्रभावित करता रहा है। आपके साथ हुई लंबी बातचीत ने मुझे बड़ा सुकून दिया। इसके अलावा, डॉक्टर चितरंजन कर, रविंद्र गिन्नौरे, संजय द्विवेदी, अख्तर अली, द्वारका प्रसाद अग्रवाल, रमेश तिवारी रिपु, दिलीप तेतरवे और आलोक सक्सेना ने मेरे लिए जो कुछ भी लिखा, इसके लिए सब का आभार ज्ञापन करता हूँ और बड़े भाई प्रेम जनमेजय जी ने भी 'अंततः' में मुझ पर कलम चलाई। आवरण पृष्ठ पर अपनी बहुरंगी छवि को देखकर मैं खुद पर मोहित हो गया। मैं शुभ्रामणि का विशेष आभार ज्ञापन करता हूँ।

गिरीश पंकज, रायपुर

'अनुस्वार' पत्रिका का अप्रैल-जून 2023 अंक देखकर प्रसन्नता हुई क्योंकि उसमें अपने प्रिय लेखक गिरीश पंकज के विशिष्ट व्यक्तित्व को जानने समझने का अवसर मिला। पत्रिका का आवरण ही बेहद आकर्षक है। फेसबुक के माध्यम से पंकजजी की सक्रियता मैं देखती रही हूँ, लेकिन आज तक उनसे मिलने का अवसर नहीं आया। लेकिन 'अनुस्वार' का अंक पढ़कर लगा, उनसे भेंट हो गई। मुझे उनके कृतित्व के बारे में विस्तार से जानने को मिला। मैंने भी पंकज जी की कुछ किताबों पर समीक्षात्मक लेख भेजा था, जो किसी कारणवश नहीं छप पाया, इसका मुझे दुख है। अंत में प्रेम जनमेजय जी ने भी गिरीश पंकज के बारे में लघु मगर महत्वपूर्ण टिप्पणी की है। इस अंक में केंद्रित व्यक्तित्व की रचनाएँ भी प्रभावित करती हैं। अनुस्वार की अन्य सामग्री भी अनुस्वार के कलेवर को समृद्ध करती है। बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।

डॉ. योगिता जोशी, जयपुर

आवरण-कथा

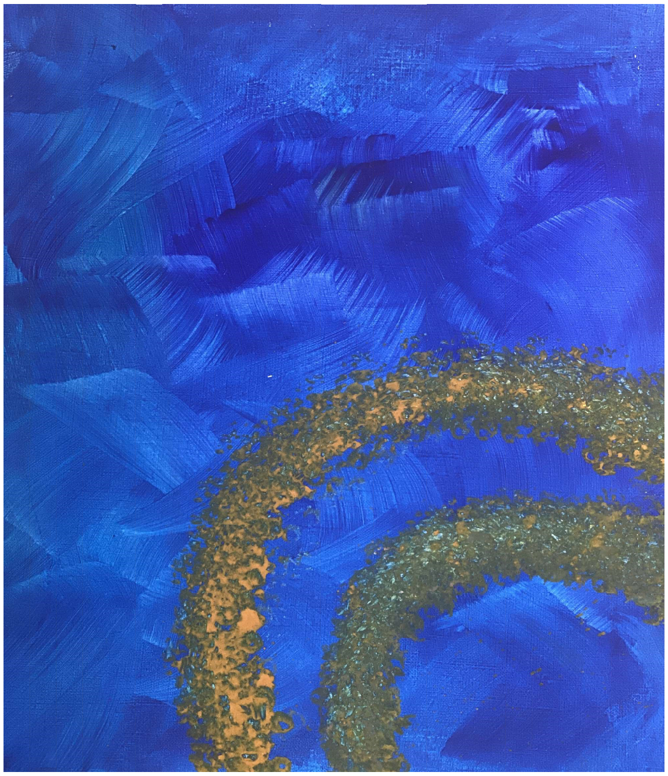

आवरण-कथा

प्रस्तुत आवरण ब्रह्माण्ड की अवस्थिति का रूपांकन प्रस्तुत करता है। हमारा ब्रह्माण्ड अभी तक हमारे लिए एक रहस्य बना हुआ है?

लेकिन वर्तमान में हमने कुछ ग्रहों पर अपनी यात्रा कर ली है। हमने ये भी शोध कर लिया है कि हमारे लिए दृष्टयानुमुत ग्रह जो हमारे सौरमंडल का हिस्सा है वो है, सूर्य, बुद्ध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, चंद्रमा, यूरेनेस, नेपचूयन, प्लूटो, हमने आकाश गंगा में आकाश में तैरते ग्रहों, तारकों आदि के बारे में बहुत से समंग इकट्ठे कर लिए हैं और इस आवरण में आकाश गंगा के आंशिक पटल को दो निहारिकाओं के साथ रेखांकित किया गया है। ये वो दो निहारिकाएँ हैं जिनका दिग्दर्शन हमें प्राप्त हो चुका है और उसकी पृष्ठभूमि में विशाल गंगा हिलारे मार रही है।

शुभ्रामणि : एक परिचय

शुभ्रामणि एक अमूर्त कलाकार हैं। उनकी प्रेरणा किसी विचार, प्रकृति, वस्तु, भावना या किसी उद्देश्य में छिपी होती है। रंगों और आकारों के माध्यम से उसे कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करना उसे एक ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करता है जो कई बार शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती है। अमूर्त कला एक ऐसा माध्यम है जिसमें कलाकार को रंगों के सहारे नए-नए आयाम, नए-नए चित्र बनाने का अवसर मिलता है और हर बार उसकी कला एक अनोखापन लेकर उभरती है। ऐसे ही कुछ नया करने का एहसास और प्रयास शुभ्रामणि की कला का आधार है। एक सलाहकार कम्पनी में काम करते हुए एक कुशल गृहिणी के साथ-साथ वह अपने खाली समय का सदुपयोग वह अपने कलात्मक एवं काव्यात्मक अभिव्यक्तियों के द्वारा करती हैं। वह जहाँ एक कलाकार हैं, वहीं एक कवयित्री भी हैं।

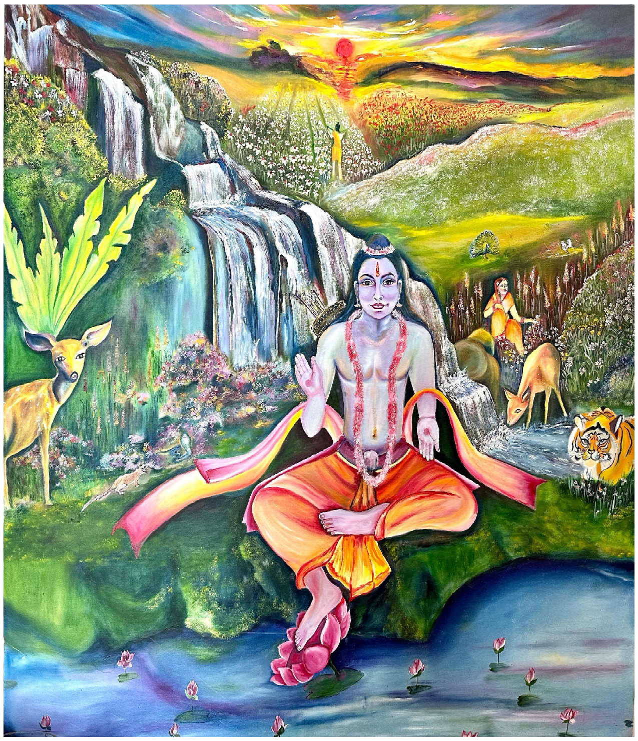

"रामराज्य"

देहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

यह पेंटिंग कलाकार द्वारा रामराज्य की परिकल्पना है। प्रकृति में एक दूसरे के विरोधाभास वाले जीव जंतु भी मर्यादापुरुषोत्तम राम के पास परस्पर सामंजस्य में विचरण कर रहे है। जलप्रवाह के पास हिरण और चीता, सर्प और नेवला, बंदर और स्वान सब सौहार्द के साथ आनन्दमय है। यह चित्रण दर्शाता है कि संसार में मतभेद एवं असमानताओं के बीच भी सौहार्द की स्थापना ही राम राज्य की परिकल्पना है।

प्रभु राम का जीवन चरित्र समस्त मानवजाती के लिया आदर्श है एवं इनका आंशिक अनुसरण करके मनुष्य जीवन की उच्चतम संभावना तक पहुँच सकता है।

रचना राणा : एक परिचय

रचना राणा एक कलाकार हैं जो उत्तर प्रदेश के रामपुर के छोटे से गाँव से ताल्लुक रखती हैं। उत्तर प्रदेश का रामपुर शहर वैसे तो छुरी, प्रसिद्ध चाकू एवं नवाबो के राजशाही के लिए विख्यात है। ऐसे में साहित्य एवं कला की धुरी बनना थोड़ा मुश्किल तो प्रतीत होता है लेकिन इसी मिट्टी से अपनी मूल शिक्षा लेकर रचना कला में अभूतपूर्व ऊर्जा, स्पष्ट सन्देश, एवं मानवीय संदेशो को कैनवास पर दर्शाती है। उन्होंने राजस्थान के बनस्थली विद्यापीठ से दृश्य कला में एम.फिल पूरा किया। दृश्य कला के प्रति उनका झुकाव और रंगों के प्रति आकर्षण उनकी शिक्षा के साथ-साथ शुरू और गहरा होता गया, जहाँ उन्होंने भारतीय आधुनिक कला से जुड़े ज्ञान को अवशोषित किया। अपनी शिक्षिका सुश्री किरन सरना मैम, इला यादव मैम व पुष्पा दुल्लर मैम के मार्गदर्शन और शिक्षण ने रंगों और कैनवास की इस खूबसूरत दुनिया में उत्प्रेरक का काम किया।

वर्ष 2019 में वह दिल्ली चली गईं और २०२१ में मेघवर्ण आर्ट गैलरी की स्थापना की। उनका दृढ़ विश्वास है कि जैसा कि हम "आर्ट ऑफ लिविंग" की सराहना करते हैं और आनंद लेते हैं, वैसे ही हमें "आर्ट फॉर लिविंग" को स्वीकार करना, आनंद लेना और समझना चाहिए।

सन्तोष खन्ना एक बहुमुखी प्रतिभा की धनी हैं। वे संसदीय अधिकारी जिला उपभोक्ता फोरम की जज रही हैं और "विधि भारती" विधिक पत्रिका की मुख्य संपादिका हैं। उन्होंने रेमन मेगसेसे अवार्डीज़ पर काव्य संकलन 'काव्य सलिला' के नाम से प्रस्तुत किया। जो कि विश्व कीर्तिमान के रूप में स्वीकृत किया गया।

सन्तोष खन्ना जी एक साहित्यकार के तौर पर भी ख्याति प्राप्त हैं। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलेख, समालोचना और अनुवाद साहित्य, यात्रा-संस्मरण जैसे अनेक विधाओं में लेखन कार्य किया है। उनकी 20 मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 20 पुस्तकों का संपादन किया है। वे भारतीय अनुवाद परिषद की उपाध्यक्ष हैं।

इस अंक में हम उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में विस्तार से जानेंगे।

चिंतनधारा

सन्तोष खन्ना की नाट्यसाधनाः

"सेतु के आर-पार नाटक का संदर्भ विभिन्न भाषाओं, साहित्य और संस्कृतियों के बीच अनुवाद एक सेतु है।"

प्रो. सुरेश सिंहल

अनुवाद जगत में सन्तोष खन्ना एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में प्रख्यात हैं। यह एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसमें अनुवाद विषय कई प्रकार से घुल-मिल गया है। रच बस गया है और जिसे एक अनुवादमय व्यक्तित्व की संज्ञा दी जा सकती है। काफी लंबे समय से सन्तोष खन्ना भारतीय अनुवाद परिषद् से जुड़ कर अनुवाद के प्रति समर्पित भाव से कार्य करती आ रही हैं। यूं तो अनुवाद का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जिस पर उन्होंने लेखनी न चलाई हो, किंतु उनके द्वारा लिखित अनुवाद विधा पर आधारित 'सेतु के आर पार', शीर्षक से नाटक का प्रकाशन एक सुखद आश्चर्य कहा जा सकता है, क्योंकि अनुवाद विधा को कथ्य बना कर लिखा जाने वाला यह अपने किस्म का प्रथम नाटक है। अतः अनुवाद के क्षेत्र में यह अनुवाद नाटक स्वागत के योग्य है, चूंकि अनुवाद विधा सर्वदा भाषाओं, साहित्य और संस्कृतियों के बीच सेतु का सार्थक साधन रही है इसलिए नाटक का शीर्षक सार्थक बन पड़ा है।

आज के युग में अनुवाद के बढ़ते महत्व को देखते हुए लेखिका ने अनुवाद के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत नाटक का आधार और कथ्य बनाया है। इस नाटक का उद्देश्य अनुवाद विधा से जुड़े प्रश्नों को सरल और रोचक ढंग से प्रस्तुत करना है।

प्रस्तुत नाटक अनुवाद के क्षेत्र में सर्वथा एक नया प्रयोग ही माना जाएगा। निःसंदेह, नाटक के कलेवर में अनुवाद के विभिन्न पक्षों को समेटना अपने आप में एक कठिन कार्य है। इस संदर्भ में रंगमंच की दृष्टि से अनुवाद को संरचनात्मक स्वरूप प्रदान करना एक सराहनीय कार्य है। अनुवाद को सारे नाटक के कथानक का आधार बनाना, विभिन्न पक्षों की भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से चर्चा-परिचर्चा करवाना, संवादों को अनुवाद के वाद-विवाद के रूप में बुलवाना आदि विशेषताएँ प्रस्तुत नाटक को एक महत्वपूर्ण दर्जा दिलाने के लिए काफ़ी हैं। उनका यह नाटक नव्यता लिए है और अनुवाद के क्षेत्र में ऐसा प्रयास वस्तुतः सराहनीय और वंदनीय है।

अनुवाद विधा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष को इस नाटक में सरस, चुटीले, व्यंग्य और हास्य रस पूर्ण संवादों से ऐसे सजाया गया है कि नाटक बहुत रोचक बन पड़ा है। वास्तव में नाटक अनुवादकों पर समय-समय पर लगे आरोपों के आधार पर आरंभ होता है और नरक में चित्रगुप्त न्यायाधीश के रूप में इस मुकदमे की सुनवाई कर रहे होते हैं और जब वह अपने समक्ष आरोपी के रूप में लाये गये अनुवादकों से अनुवाद के बारे में प्रश्न करते हैं, उस संबंध में कथोपकथन की एक बानगी देखिए–

चित्रगुप्त : आप अनुवादक हैं, इसलिए हम जानना चाहते हैं कि अनुवाद क्या है?

अनुक 1 : महाराज, एक भाषा की रचना को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करने को अनुवाद कहते हैं।

यमदूत 2 : अनुक महोदय, यह अनुवाद की परिभाषा है या उसकी दुम। इतने गंभीर आरोप और इतना संक्षिप्त उत्तर। आप अंगूठी से थान निकालना चाहते हैं?

यमदूत 3 : हरहराती गंगा के सामने बरसाती नाला...।

अनुक 1 : महाराज, धृष्टता क्षमा हो, आपकी आज्ञा हो तो इसे गोमुख से गंगासागर तक का कर दूँ।

चित्रगुप्त : नहीं...नहीं। जितना संगत है, केवल उतना ही।

नाटक के प्रथम अंक में अनुवाद की मूल प्रकृति, उसके स्वभाव और स्वरूप को लेकर अनेक प्रश्न सामने

आते हैं। इनमें से अधिकतर प्रश्न अनुवाद विषय पर लगाए जाने वाले आरोपों और आपत्तियों के रूप में आए हैं। अनुवाद के साथ-साथ अनुवादक भी इस दायरे में आता है। सबसे पहले अनुवादक पर आरोपों की बौछार होती है 'अनुवादक को एक सफल साहित्यकार नहीं कहा जा सकता', मूल आक्षेप के रूप में सामने आता है। इसी संदर्भ में उस पर 'प्रवंचक' (पृष्ठ 7), पोंगापंथी (पृष्ठ 8), 'मूलघाती' 'सौंदर्यघाती', 'साहित्यघाती' (पृष्ठ 8) 'मिट्टी के शेर' (पृष्ठ 9) 'तांत्रिक' (पृष्ठ 11), 'जादूगर' (पृष्ठ 12) होने के आरोप मढ़े गए हैं।

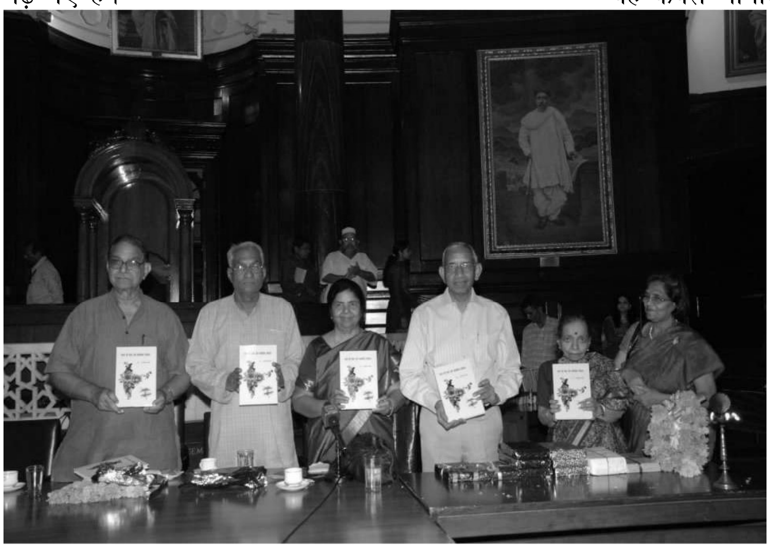

इसी प्रकार, अनुवाद को भी असंभव करार दे दिया गया है। डॉक्टर जॉनसन के कथन, 'काव्य का अनुवाद हो ही नहीं सकता', विक्टर ह्यूगो के मत, 'पद्यमय अनुवाद असंभव है' और क्रोंचे के विचार 'अनुवाद उस नारी के समान है जो यदि सुंदर होती है तो वफ़ादार नहीं होती और वफ़ादार होती है तो सुंदर नहीं होती' (पृष्ठ 8) पुष्टि के हेतु दर्शाया गया है। यमदूतों, 'महादूत' और स्वयं चित्रगुप्त के द्वारा तैयार किए गए इस आरोप पत्र का सटीक एवं न्यायोचित उचित उत्तर अंक पांच में चित्रगुप्त के माध्यम से उनके निर्णय के रूप में इस प्रकार दिया गया है—

'अनुवादक न तो प्रवंचक है और न ही जादूगर है और न ही किसी और की प्रतिभा के आधार पर मौज-मस्ती या गुरछर्रे उड़ाने वाला कोई व्यक्ति है। अनुवादक वस्तुतः परहितकारी एवं समन्वयकारी एक ऐसा मनीषी है जो अपने परिश्रम, लगन, त्याग, तपस्या एवं मूल के प्रति निष्ठा से भाषा-भाषा के बीच की दूरियाँ मिटाता है, भिन्न-भिन्न काल खंडों को समीप ले आता है। भिन्न-भिन्न साहित्यों में परिचय करता है।

लोकहित का यह कार्य अनुवादक को दिया गया है। सच्चा और पारंगत अनुवादक कोई मामूली व्यक्तित्व नहीं, अपितु उसकी गरिमा ईश्वर आराधक से भी कहीं अधिक है। वह केवल भाषाओं के बीच सेतु का साधन नहीं, बल्कि संस्कृतियों के बीच संपर्क स्थापित करता है। ऐसा प्राणी वस्तुतः वंदनीय है, मैं अनुवादक को हर प्रकार के आरोप से बरी करता हूँ। (पृष्ठ 116-17)

इसी प्रकार, अनुवाद विषय पर लगाए गए सभी आरोपों को भी न्यायाधीश चित्रगुप्त के द्वारा ख़ारिज किया गया है, "अनुवाद मानव और मानव के बीच संवाद है, विभिन्न संस्कृतियों के विविध रूपों की झांकियों को प्रदर्शित करने का एक स्वच्छ दर्पण है, मानव मनीषा के नए-नए विचारों का कोषागार है। कम से कम वर्तमान युग में कोई भी आयाम अनुवाद से अधिक मानव मित्र हो ही नहीं सकता जब किसी साहित्यिक रचना का अनुवाद होता है तो अनुवाद केवल भाषा के स्तर पर ही नहीं होता है अपितु वह भाषा, विचार, संस्कृति, इतिहास आदि के स्तर पर भी होता है। अनुवाद के माध्यम से स्रोत भाषा की संपूर्ण साहित्यिक परंपरा लक्ष्य भाषा में उपस्थित हो जाती है और लक्ष्य भाषा के रचनाकार साहित्य, समाज एवं संस्कृति को एक नए रूप में प्रमाणित करती है। (पृष्ठ 116)

निःसंदेह, चित्रगुप्त के माध्यम से उसके निर्णय के रूप में अनुवादक और अनुवाद विधा पर सभी आरोपों और भ्रांतियों को लेखिका ने बखूबी ख़ारिज करते हुए अनुवाद को एक स्वतंत्र साहित्यिक और महत्वपूर्ण विधा के रूप में

स्थापित करने का संदेश दे कर इस नाटक की सार्थकता को सिद्ध किया है।

नाटक के अंक दो में लेखिका ने अनुवाद की परिभाषा, अर्थ, विकास, प्रक्रिया, प्रकार, स्वरूप आदि जैसे विभिन्न आयामों को समाहित किया है। इस दृष्टि से नाटक का यह अंक बहुत ही महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम, चित्रगुप्त अनुवाद की अवधारणा को लेकर अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत करते हैं। इसके उत्तर में कहा गया है कि 'विश्व की प्राचीनतम सभ्यता और समृद्धतम भाषा संस्कृत में अनुवाद शब्द विराजमान है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'अन' (उपसर्ग), 'वद' धातु, 'घञ' (प्रत्यय) से हुई है जिसका शब्दार्थ है किसी कथन के बाद उसे दुहराना। आरंभ में अनुवाद का अर्थ विधिप्राप्तस्य वाक्यांतरेण कथने 'अर्थात् विधायक शास्त्र द्वारा कही गई बात को वाक्यांतर में पुनः कहना था। अनुवाद शब्द का ऋग्वेद में भी उल्लेख हैः 'अन्वेको न् वदति यद्दाति।' यहाँ 'अनु' और 'वदति' का अर्थ दुहराना है। बृहदारण्यक उपनिषद् में 'तद्, तद्, वैशा देवी वाग् अनुवदति' में अनुवदति का प्रयोग दुहराने के अर्थ में हुआ है।

यमदूत 1 : अनुक महोदय संस्कृत साहित्य का उल्लेख कर रहे हैं तो बताइए क्या संस्कृत के शीर्षस्थ विद्वान पाणिनि के मानक मूल व्याकरण ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' में 'अनुवाद' शब्द का उल्लेख हुआ है।

अनुक 1 : जी हाँ, उसमें 'अनुवाद चरणामृ' में अनुवाद स्पष्टीकरण, व्याख्या आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। एक भाषा के रूप काव्य को दूसरे रूप में प्रस्तुत करना, जैसे काव्य को गद्य में उतारना आदि।

आज विद्वान इसे 'इंटरलिंगुअल ट्रांसलेशन' भी कहते हैं। संस्कृत अध्यापन में एक प्रकार से अनुवाद का प्रयोग होता था जो आज भी विद्यमान है। (पृष्ठ 15) इस प्रकार लेखिका ने नाटक में अनुवादक पात्रों के द्वारा अनुवाद के प्रारंभिक अर्थ को स्पष्ट करने के बाद उसके स्वरूप को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है। अनुवादक पात्रों में से एक अनुवादक पात्र कहता है कि अनुवाद अत्यंत दुष्कर कार्य है मौलिक लेखन से भी कठिन। (पृष्ठ 19) ये नट की रस्सी पर चलने की कला है (पृष्ठ 19) अनुवाद के इस सिद्धांत के स्वरूप को सिद्धांतकार नामक पात्र के कथन के माध्यम से स्पष्ट किया गया है–

'अनुवाद अन्य कलाओं की भांति एक रचनात्मक विधा है। रचनात्मक साहित्य का अनुवाद एक कलात्मक प्रक्रिया है। अनुवाद को मूल रचनाकार के साथ तादात्म्य स्थापित कर मौलिक सृजन की भांति विचार, भाव और भाषा में लालित्य और चमत्कार का समावेश करना पड़ता है। यही नहीं, मूल रचना में निहित बिंब, प्रतीक और अभिप्राय तथा इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचनात्मकता की आंतरिक लय को रूपांतरित करना होता है।

अनुवाद प्रक्रिया में मूल रचना के मूल स्वर को अंतरित करते समय अनुवादक को आत्म साक्षात्कार द्वारा मूल रचनाकार के मानस में प्रवेश करना पड़ता है इसलिए अनुवाद को परकाया प्रवेश की संज्ञा दी गई है। अनुवाद तप है, कठिन साधना है कोई यंत्र-तंत्र नहीं जैसा कि अनुवादक पर आरोप है। महाराज, अनुवाद एक सुंदर पुष्प की सुगंध को दूसरे सुंदर पुष्प की सुगंध में उड़ेलने की कला है एवं यह अत्यंत सूक्ष्म एवं जटिल प्रक्रिया है। (पृष्ठ 21) जब तक इस कार्य में 'स्व' का पूर्ण विसर्जन नहीं हो जाता, अनुवाद असंभव है। (पृष्ठ 25) अनुवाद सदैव इस बात को लेकर विवाद का विषय रहा है कि क्या यह कला है, शिल्प है या फिर विज्ञान है। इस विषय में भी प्रस्तुत नाटक में सार्थक स्पष्टीकरण दिया गया है। सिद्धांतकार का कथन यहाँ प्रासंगिक है 'अनुवाद कार्य केवल कला नहीं कला, शिल्प और विज्ञान का संगम है।

अनुवाद के शिल्प होने के दो पक्ष हैं। पहला, पहले साधारणतया अनुवाद श्रेण्य ग्रंथों, धार्मिक पुस्तकों और प्रेरक साहित्य का किया जाता था। अनुवादक ऐसे अनुवाद धीरे-धीरे यथा क्षमता सुंदर, अलंकृत और दार्शनिक शैली में करते थे। अब अनुवाद का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। विभिन्न भाषा-भाषियों के विचारों, भावों एवं विभिन्न उपलब्धियों को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर दी गई है। वस्तु साहित्य का सामान्यतया एक निश्चित समय सीमा में सीधी-सादी नपी-तुली और अलंकार रहित शैली में बोधगम्य अनुवाद करना होता है। सामान्य अर्थ में अनुवाद कार्य करने की

कुशलता ही शिल्प है।

दूसरा, अपने व्यापक रूप में शिल्प का अर्थ है भाषा प्रयोग, संरचनात्मक बोध और वाक्य विन्यास। अनुवाद में इसकी भूमिका साधन की है। कला साध्य है तो शिल्प साधन है। इस साधन के प्रयोग की विधि ही विज्ञान है (पृष्ठ 25)। यह विज्ञान इसलिए भी है, क्योंकि यह अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के अंतर्गत आता है तथा अनुवाद से पहले की चिंतन प्रक्रिया तुलनात्मक या व्यतिरेकी भाषा विज्ञान पर ही पूर्णतया आधृत है। (पृष्ठ 30) अनुवाद की प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण पहलू है इसको लेकर भी प्रस्तुत नाटक में साहित्यकार पात्र द्वारा प्रश्न उठाया गया है कि क्या अनुवादक भी मूल रचनाकार की भांति साहित्य-सर्जन जैसी ही प्रक्रिया से गुजरता है। इस संदर्भ में दोनों ही प्रकार की प्रक्रियाओं साहित्य और अनुवाद की प्रक्रिया पर चर्चा की गई है—

रचना प्रक्रिया में कवि अर्थात् साहित्यकार जब विषय विशेष के प्रति संवेदनशील होता है और उस स्वरूप में जिस भाव राशि का विस्फोट होता है तो उसकी प्रतिक्रिया में अभिव्यक्ति के लिए वह आतुर हो उठता है तब वह भाव भाषा रज्जू के सहारे आकार लेने लगते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान वह उन भावों में से सीप सा चयन करता है और एक स्वतंत्र रचना करता है। काव्य-सृजन मन में उठने वाले भावों का अनुवाद है जो संवेदना की अनुभूति पर आधारित होते हैं। (पृष्ठ 27)

इस प्रकार अनुवाद प्रक्रिया में भी लगभग यही सोपान होते हैं। मूल रचना को पढ़ने से अनुवादक के मन में संवेदनाजनित अनुभूति के आधार पर भाव प्रस्फुटन होगा। मूल रचनाकार के मन में किसी विषय एवं स्थिति विशेष के प्रति प्रक्रिया स्वरूप भाव स्फुटन होता है। साहित्यकार के लिए भावों को भाषाबद्ध करते समय कोई सीमा नहीं होती जबकि अनुवादक के लिए सीमा होती है।

वह मूल भाषा में व्यक्त भावों को ही लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त करता है तभी तो अनुवाद को पुनः सृजन के नाम से अभिहित किया गया है। (पृष्ठ 28) सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद के संदर्भ में कविता के अनुवाद की समस्याएँ एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है। प्रस्तुत नाटक में भी लेखिका ने अनेक ऐसी समस्याओं पर विचार किया है और उनका प्रामाणिक और विज्ञान-सम्मत समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। यहाँ इन समस्याओं को विभिन्न आक्षेपों के रूप में दर्शाया गया है।

'काव्य मानव की उदात्त और अद्वितीय अनुभूतियों की रचनात्मक अभिव्यक्ति है और काव्य अनुवाद की प्रक्रिया में यह उदात्त एवं अद्वितीय अनुभूतियाँ औसत अनुभूतियों में परिणत हो जाती हैं (पृष्ठ 55-56) या 'फिर अनुवाद में रचना अपने मूल से बहुत दूर हो जाती है।' (पृष्ठ 56) ऐसे आरोपों की पुष्टि के लिए प्लेटो के कथन, 'कवि जीवन की ऐसी अनुकृति करता है जो यथार्थ से दुगनी दूर होती है (पृष्ठ 56) अरस्तु के कथन— if poet is mads, it is divine madness. और रविंद्रनाथ टैगोर के कथन, 'अनूदित कविता पढ़ना किसी तीसरे व्यक्ति के माध्यम से प्रेमिका का चुंबन लेने के समान है।' (पृष्ठ 79)

अनुवादकों पर एक यह आरोप भी लगाया गया है कि असफल लेखक ही काव्यानुवाद की ओर प्रवृत्त होते हैं। (पृष्ठ 78) इसके उत्तर में लेखिका ने एक अनुवादक पात्र से यह संदेश दिया है कि ऐसा होता तो भारतेंदु हरिश्चंद्र, रविंद्र नाथ टैगोर, महावीर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, हरिवंश राय बच्चन आदि प्रतिष्ठित एवं स्थापित सफल साहित्यकार अनुवाद करते।... रवींद्रनाथ टैगोर उच्च कोटि के अनुवादक थे। उन्होंने गीतांजलि का अंग्रेजी में स्वयं अनुवाद किया और इसी अनुवाद पर उन्हें नोबेल पुरस्कार मिलता है। (पृष्ठ 78) इसी क्रम में काव्यानुवाद की कुछ और समस्याएँ और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम, अनुवादक का काव्यानुवाद में छूट लेना कहाँ तक उचित है? प्रश्न के उत्तर में सिद्धांतकार पात्र कहते हैं कि कवि के चेतन-अवचेतन से जो भाव अभिव्यक्ति के लिए मचल रहे होते हैं उन्हें भाषा की पकड़ में लाना भी कठिन होता है।

आकार लेते-लेते उसमें से कुछ छूट जाता है जिसे 'मन के पुष्पक क्षणों की आधी पंखुड़ियाँ का गिरना' कहा गया है, इसी प्रकार, काव्यानुवाद के दौरान कुछ और जुड़ भी जाता है, किंतु यदि कुछ और कविता के मूल अर्थ को प्रभावित किए बिना आए तो इसे दोष नहीं माना जाना चाहिए।

(पृष्ठ 79-80)

एक अन्य प्रश्न, 'काव्यानुवाद में अनुवादक को कौन-सा रास्ता अपनाना चाहिए के उत्तर में कहा गया है कि' अनुवादक को सर्वप्रथम स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के बीच समानार्थकता की खोज करनी चाहिए। अनुवाद एक व्याख्यापरक कला है।

7अनुवादक को स्रोत भाषा की मानसिक धरातल पर व्याख्या कर उसके अर्थ को ग्रहण करना चाहिए। व्याख्या के दौरान अर्थ प्रकाश से कवि का अर्जित अनुभव अनुवादक का अर्जित अनुभव हो जाता है और फिर उसे आवश्यकता होती है लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा की शैली की, तभी वह पुनः सृजन कर सकता है। (पृष्ठ 80) इसी कड़ी में अगली समस्या, 'क्या अनुवादक को मूल रचनाकार की शैली का अनुसरण करना चाहिए' के उत्तर में लेखिका कहती हैं कि 'प्रत्येक रचना के दो भाग होते हैं शिल्प और शैली। शिल्प भंगिमा विशेष को कहते हैं। अनुवादक को मूलनिष्ठ अनुवाद करने के लिए मूल रचनाकार की शैली का ही अनुसरण करना चाहिए। ऐसा करने में शब्द, ध्वनि, रूप आदि पर समस्याएँ उठ सकती हैं।

अप्रस्तुत विधान, बिंब, अलंकार आदि का अनुवाद भी अपेक्षित है।' (पृष्ठ 80) 'कविता का सौंदर्य बढ़ाने के लिए क्या अप्रस्तुत विधान को प्रस्तुत किया जा सकता है' जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न के उत्तर में सिद्धांतकार पात्र कहता है कि 'अप्रस्तुत का अंतरण न करने से कविता की रचनात्मकता की क्षति होती है। सामान्यतया ऐसी अभिव्यक्तियों का अनुवाद संभव होता है किंतु अनेक बार संस्कृतियों एवं पौराणिक संदर्भ से युक्त समान धर्म व्यंजनाएँ ढूँढ पाना असंभव होता है। ऐसी स्थिति में पाद टिप्पणी अथवा कोष्ठक में व्याख्या दे देनी चाहिए।'

दार्शनिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के अनुवाद की समस्या के संदर्भ में कहा गया है कि ऐसा नहीं है कि इनका अनुवाद संभव न हो इस के लिए अनुवादक को उतना ही कल्पना-प्रवण और संवेदनशील होना होता है जितना मूल कवि। जब मूल में व्यक्त अभिव्यक्ति के समतुल्य अभिव्यक्ति लक्ष्य भाषा में नहीं मिलती तो उसी प्रकार का भाव व्यक्त करने वाली अभिव्यक्तियों का प्रयोग करना चाहिए। (पृष्ठ 82-83)

साहित्यिक अनुवाद के संदर्भ में नाटकानुवाद भी एक महत्वपूर्ण आयाम है। प्रस्तुत नाटक में लेखिका ने नाटकानुवाद की कुछ समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। नाटकानुवाद की कुछ समस्याओं का शेक्सपियर को केंद्र में रखकर चित्रण किया गया है। शेक्सपियर के नाटकों के अनुवादकों ने अनुवाद किए हैं, किंतु समय-समय पर उन पर कोई न कोई आरोप लगता ही रहा है। मूल रूप से नाटकों के अनुवाद के बारे में यह आरोप लगा है कि अनुवादकों ने अनुवाद के नाम पर नाटकों को ऐसा तोड़ा-मरोड़ा है कि उनकी पहचान ही समाप्त हो गई है। ना तो वह अपने 'जनक' के ही रहे और न ही 'जानकी' बन पाए। (पृष्ठ 60) एक तरह से कहा जाए तो शेक्सपियर के नाटकों का जनाजा निकाला गया। यह अनुवाद मूलनिष्ठ बिल्कुल नहीं थे यहाँ तक कि उन्हें उन नाटकों की छाया तक कहने में

संकोच होता है। उदाहरण के लिए, लाला संतराम का अनुवाद किलष्ट है, रांगेय राघव का अनुवाद पैराफ्रेज जैसा है और उन्होंने मूल के कई अंश का अनुवाद किया ही नहीं है और भारतेंदु ने पात्रों के नामों का भारतीयकरण कर दिया है। (पृष्ठ 62-62) अन्य अनुवादकों ने भी अपने ढंग से किसी एक नाटक की कहानी ली और उसे विजातीय संस्कृति में ढाल दिया।

उन्होंने अपनी ओर से उनमें गीतों की भरमार कर दी और कहानी को मनमाने ढंग से तोड़ा मरोड़ा। (पृष्ठ 62-64) इसी कारण शेक्सपियर अभी भी अपनी संपूर्णता के साथ अनुवाद में नहीं आ पाए हैं। जिन्होंने शेक्सपियर के मूल नाटकों को पढ़ा है वह अनुवाद के 'बौनेपन' से परिचित हैं। उनमें कविता नदारद है सपाट और शुष्क। (पृष्ठ 64) और रस निष्पत्ति भी देखने को नहीं मिलती। (पृष्ठ 65) एक विद्वान ने कहा है– शेक्सपियर के अब तक के अनुवादों में उसका चोला जी सका, आत्मा नहीं। (पृष्ठ 67) उक्त सभी आरोपों और समस्याओं की बहुपक्षीय सफाई एवं समाधान सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं।

हमारे यहाँ शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद की परंपरा एक सदी से भी अधिक पुरानी है। आरंभ में उनके अनेक नाटकों का मुक्तानुवाद हुआ, इन अनुवादों की अनेक रंगमंच प्रस्तुतियाँ हुईं जो जनसाधारण में बेहद लोकप्रिय हुई। यह कार्य अनुवादकों ने किसी दुर्भावना से प्रेरित होकर नहीं किया।

वे तो पाठकों/दर्शकों को इस महान लेखक से परिचित कराना चाहते थे/अनुवादकों ने तो शेक्सपियर को अपने अनुवाद के द्वारा विभिन्न भाषाओं में 'अमर' किया है। इन लोगों का उद्देश्य मूल भाषा से अनभिज्ञ पाठकों को मूल कृति से परिचित कराना रहा है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी यही सोच कर शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद किया। वे अनुवाद करने में मूल-भाव को ज्यों-का-त्यों ग्रहण करने में समर्थ थे किंतु साथ ही अनूदित कृति पर अपने देश, भाषा, संस्कृति की मौलिक छाप छोड़ने के पक्षधर थे।

अतः उन्होंने 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का भारतीयकरण किया। अमृत राय, हरिवंश राय बच्चन और रघुवीर सहाय ने भी अनेक नाटकों का अच्छा अनुवाद किया है। बच्चन ने शेक्सपियर की चार महान त्रासदियों और रघुवीर सहाय ने 'मैकबेथ' का पद्य अनुवाद किया है। यह सभी अनुवाद परवर्ती अनुवादों से वस्तुतः बेहतर हैं।

इन अनुवादों में इस समय की मांग के अनुसार ऐसे प्रसंग भी सम्मिलित कर लेते थे जो जन जागृति में सहायक होते थे। दरअसल, नाटकानुवाद काव्यानुवाद से भी कठिन कार्य है। इसमें काव्य बिंब के साथ नाट्य बिंब का भी अनुवाद करना होता है। उसमें प्रयुक्त संवाद की संश्लिष्टता होती है उसमें एक-सा स्वर नहीं होता। कहीं गंभीर, कहीं, व्यंग्यात्मक, कहीं हास्यात्मक संवादों की विविध प्रकार की छटा को अनुवाद में उतरना होता है। यह सब अनुवादकों की बदौलत ही संभव हो पाया है।

सन्तोष खन्ना का नाटक 'सेतु के आर पार' अपने आप में एक नया प्रयोग है ही, अनुवाद की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। अनुवाद विषय को सरल एवं रोचक ढंग से समझने समझाने के लिए यदि इसका मंचन किया जाए तो यह सभी अनुवादप्रेमियों के लिए लाभकारी सिद्ध होगा। प्रस्तुत नाटक की समीक्षा इस उद्देश्य से की गई है कि यह एक महत्वपूर्ण समीक्षात्मक शोध लेख के रूप में शोधार्थियों/विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो। निश्चित ही प्रस्तुत अनुवाद नाटक का अनुवाद जगत में अनुवाद प्रेमियों के द्वारा स्वागत किया जाएगा।

यहाँ यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि लेखिका का एक और नाटक 'तुम कहो तो' एक सामाजिक नाटक है जिसमें उन्होंने समाज की समस्याओं को उठाया है। इसके अलावा, लेखिका ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार बर्नार्ड शॉ के नाटक 'सेंट जोन' का हिंदी में नाट्यानुवाद भी किया है। इस अनूदित नाटक का राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा मंचन किया जा चुका है।

'ननकू के जूते' शीर्षक से एक एकांकी नाटककार सन्तोष खन्ना ने बच्चों के लिए लिखा था जिसे भारत सरकार के प्रकाशन विभाग की बाल पत्रिका 'बाल भारती' में प्रकाशित किया गया था।

सामाजिक सरोकारों का दस्तावेज़ : सन्तोष खन्ना का 'फुंगियों पर धूप' काव्य संग्रह

सौम्या पांडेय

'फुंगियों पर धूप' आदरणीय डॉ. सन्तोष खन्ना जी का ताज़ा काव्य संग्रह है। आप वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार हैं, जो कि पूर्व जज व 'महिला विधि भारती पत्रिका' की प्रधान संपादक हैं, साथ ही सेवानिवृत्त संसदीय अधिकारी भी हैं एवं इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी की काउंसलर भी हैं।

विभिन्न प्रशासनिक दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन करते हुए आप हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी विगत कई दशकों से विभिन्न विधाओं में सृजन करते हुए अपना अमूल्य योगदान दे रही हैं। डॉ. खन्ना के अब तक पांच काव्य-संग्रह, कहानी संग्रह, नाटक, अनुवादित नाटक, विधि व कानून पर आधारित 20 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, साथ ही हिंदी एवं अंग्रेजी विषय में 20 से अधिक संपादित पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

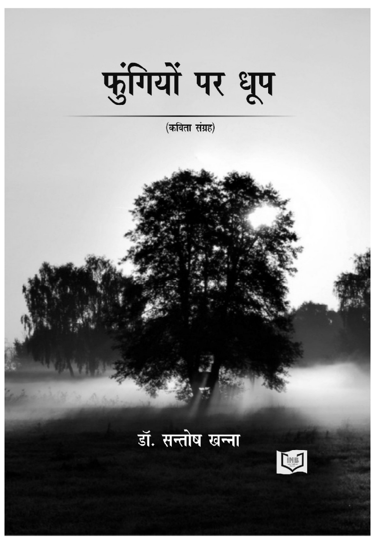

हाल ही में आप रेमन मैगसेसे अवॉर्ड विनर्स पर 'काव्य सलिला' नामक पुस्तक का संपादन करके वर्ल्ड बुक ऑफ रिकॉर्ड, लंदन के 'गोल्ड एडिशन' में भी अपना नाम दर्ज करा चुकी हैं। डॉ. खन्ना को उनकी साहित्यिक व विधिक सेवाओं के लिए कई राष्ट्रीय पुरस्कार तथा सम्मान भी प्राप्त हो चुके हैं।

'फुंगियों पर धूप' उनका विशिष्ट काव्य संग्रह है, जिसमें जीवन, प्रकृति, देश, समाज, स्त्री-विमर्श, व्यवस्था, अध्यात्म एवं बाल कविताओं का समावेश है। एक ओर जहाँ उनकी रचनाओं के विषयों में विविधता है तो वहीं उन्होंने काव्य की विभिन्न विधाओं जैसे, गीत, ग़ज़ल, दोहे, मुक्त छंद, हाइकू आदि के द्वारा रचनाओं को दोहराव से बचाया है, जिसके कारण पाठकों को एक ही संग्रह के अंतर्गत विभिन्न काव्य विधाओं एवं अनेको विषयों को पढ़ने का आनंद प्राप्त होगा।

यह संग्रह कोरोना की विभीषिका के बाद रचा गया है अतः उस काल की भयंकरता, सामाजिक विद्वेष, सकारात्मकता की प्रवृत्ति की भी संग्रह में उपयुक्त रूप से उपस्थिति है।

डॉ. खन्ना ने अपने लेखकीय कथन में कोरोना काल के समय के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पक्षों का वर्णन किया है। साथ ही महाकवि 'निराला' जी के संस्मरण द्वारा सौ वर्ष पूर्व की महामारी से उसका तुलनात्मक विवरण भी प्रस्तुत किया है, जो कि उनकी शोधपरक दृष्टि का परिचायक है। संग्रह का प्रारम्भ 'नमन' नामक कविता से होता है। जिसमे वो सम्पूर्ण जगत के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हुए नतमस्तक होती हैं, एक बानगी देखियेः

तुम्हारे सजदे में...
बंद पलकों में बना रहा
यह अनोखा अहसास...
माँगू दवा सबकी
देश की और पूरा संसार।

इसके बाद शीर्षकीय रचना 'फुंगियों पर धूप', 'कवि', 'कविता', 'शब्द' आदि रचनाएँ विषय को सार्थक करती नज़र आती हैं। इसी प्रकार एक रचना 'खुशी' में वो खुश होने के अनोखे उदाहरण से मन आह्लादित करती हैं, इसमें बेटी के जन्म की महत्ता को भी खुशी के प्रतीक रूप में दर्शाया गया हैः

तपते मौसम के बाद
जैसे सावन की फुहार
अमावस के बाद हो
जैसे शुभ चाँदनी रात
कई बेटों के बाद
जैसे जन्मी हो बेटी

इसी प्रकार पुलवामा के दंश को बयां करती उनकी

रचना “पुलवामा कहर” को देखें :

कलम हुई कुंद
आया ऐसा बवंडर
लील गया मेरे लालों को
मेरा तन मन गश के अंदर

डॉ. खन्ना ने गहन आध्यात्मिक पराकाष्ठा को भी अपनी लेखनी से उकेरा है :

मेरा आकार है बेशक लघु
पूरे ब्रह्मांड-सी हस्ती हूँ मैं
मैं संगीत में हूँ, सुरों का साज हूँ मैं
सुर में दिव्य संगीत हूँ मैं
कवितत्व में कविता हूँ
कविता में कवितत्व हूँ
मैं अक्षर हूँ, मैं शिव हूँ
शिव का शिवत्व भी मैं।

एक तरफ जहाँ मुक्तक लिखते हुए वे नदी की विवशता व जल के संकट की गंभीरता को परिलक्षित करती हैं :

सब की मैल और मैला धो रही है नदी
पर अपनी पावनता को खो रही है नदी
धुलवाते रहोगे अपने पाप गर नदी से
देख लेना बंजर हो जाएगी यही सदी।

तो वहीं दूसरी तरफ सूर्योपासना व छठ पर्व की महत्ता को सीमित शब्दों में दर्शाता उनका हाइकू अचंभित करता है:

षष्ठी का पर्व
उपासना सूर्य की
अर्ध्य उत्सव

इसी प्रकार “एक शाम” कविता विवाह उत्सवों के द्वारा उल्लास व वैवाहिक कार्यक्रमों में कार्य करते कर्मचारियों को रोजगार दिलाने का सबब बनती है तो वहीं बाल कविता बच्चों के मनोविज्ञान को बतलाती गेय रचना है:–

देखो खेले मेरी मुनिया
भांति-भांति के सुंदर खेल

ऐसे ही स्त्री भावना व युद्ध की विभीषिका के मध्य स्त्री के क्षरण का सजीव चित्रण करती रचना आँखें नम कर देती है:

चूंकि वह जननी है
रक्त जिसका बहता है
तो वह है स्त्री
लुटता जिसका श्रृंगार है

इसके साथ ही इंसानियत का पाठ पढ़ाती रचना “सबका है लाल लहू” विश्व बंधुत्व के भाव को जगाती है तो वहीं “विषाणु वायरस” कोरोना की भयावहता को दर्शाती है।

ऐसे ही गीत देखें:

खामोश हूँ पर गुनगुना रही हूँ मैं
हर देहरी पर दीप जला रही हूँ मैं

तो वहीं ग़ज़ल है:

क्यों बरबस मुस्कराए जाते हो
दर्द को क्यों छिपा, जाते हो

यह सम्पूर्ण संग्रह डॉ. सन्तोष खन्ना के अनुभवों से सृजित उत्कृष्ट काव्य रचनाओं से समृद्ध है जिसमें इतने विषय समाहित हैं कि हर रचना मन में नया भाव उत्पन्न कर जाती है व पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती है। जहाँ एक ओर त्रासदी का मंजर है तो वहीं दूसरी ओर सकारात्मकता का, कहीं बालपन की कविताएँ तो कहीं प्रेम से सराबोर रचनाएँ। हर्ष, विषाद के मिले जुले भावों में आध्यात्म का पुट भी है, लेकिन कहीं भी निराशा नहीं है, क्योंकि निराशा में भी आशा के दीप जलाना डॉ. खन्ना बखूबी जानती हैं। ऐसी रचनाएँ समय की माँग हैं, जिनका सृजन करके उन्होंने अपने लेखकीय दायित्व का पालन किया है क्योंकि यह कविताएँ सिर्फ कोरी कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ का प्रतिबिंब हैं, जो परिस्थितियों से सीखने की प्रेरणा देती हैं तो वहीं आने वाले भविष्य के प्रति सचेत भी करती हैं। यह निस्संदेह एक पठनीय पुस्तक है, क्योंकि विपुल विषय विस्तार व उत्कृष्ट शब्द संयोजन संग्रह को वैशिष्टय प्रदान करते हैं। यदि छोटी-छोटी प्रिंटिंग की त्रुटियों को नजरअंदाज कर दें तो अच्छी पेपर क्वालिटी की यह हार्ड बाउंड पुस्तक संग्रहणीय है। इस अनुपम सृजन के लिए डॉ. सन्तोष खन्ना जी बधाई की पात्र हैं।

आज के समय को विशाल फलक पर प्रदीप्त करता सन्तोष खन्ना का उपन्यास"रोशनी"

प्रो. अमिता तिवारी

साहित्य समाज का दर्पण होता है। एक ओर साहित्य समाज की समस्याओं, विडम्बनाओं, विसंगतियों को दर्शाता है तो दूसरी ओर दिशा निर्देश भी करता है। श्रेष्ठ साहित्य वही है जिसमें उस समय का सच हो, इस दृष्टि से सन्तोष खन्ना का उपन्यास 'रोशनी' खरा उतरता है।

21वीं सदी के दूसरे दशक में रचित उपन्यासों में 'रोशनी' उपन्यास अपनी अलग पहचान बना कर चलता है। यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें आज की नारी का नया रूप दिखाई देता है।

समकालीन उपन्यासों में नारी की बदलती अस्मिता के अनेक रूप दिखाई देते हैं, परन्तु अधिकांश उपन्यासों में नारी की धुरी अपनी देह, अपनी सोच, अपनी मर्ज़ी के इर्द गिर्द घूमती है। पर इस उपन्यास की नायिका अपने से अधिक न केवल अपने परिवार के बारे में अपितु समाज के बारे में सोचती है। जहाँ वह अपनी अस्मिता के प्रति सचेत है वहीं वह समाज के प्रति भी सचेत है।

वह अपने से अधिक समाज के बारे में सोचती है। हमारे समाज में अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिनसे समाज त्रस्त है जिनके समाधान के लिए युवावर्ग को आगे आना चाहिए। युवावर्ग की यह ज़िम्मेदारी रोशनी उठाती है। सड़क पार हुए एक्सीडेंट्स की वह मूक दर्शक नहीं बनती बल्कि उस व्यक्ति को वह अस्पताल पहुँचाती है और समय पर उपचार होने से उस व्यक्ति की जान बच जाती है।

इस उपन्यास में लेखिका ने अपने समय की सभी समस्याओं, विसंगतियों और विडम्बनाओं का चित्रण तो किया ही है साथ ही उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है।

आज हमारा समाज रोडरेज, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, रिश्वतख़ोरी, नेताओं की लूट-खसोट से त्राहि-त्राहि कर रहा है। लेखिका ने इन सभी समस्याओं को इस उपन्यास में आधार बनाया है। सन्तोष खन्ना जी भारतीय समाज की जुझारू महिला हैं 'रोशनी' सन्तोष खन्ना का चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में वर्तमान युग की विसंगतियों का चित्रण है।

आज के युग में दंगे होना आम बात हो गई है। सिखों के दंगे, गोधरा कांड, गुजरात के दंगे, जम्मू कश्मीर में हो रहे दंगों ने मानवीयता को शर्मसार किया है। कितनी बडी विडम्बना है कि दंगों के नाम पर मारे जा रहे हज़ारों-लाखों लोगों का जीवन केवल ख़बर बनकर रह गया है। हमारे समाज की न्याय व्यवस्था खोखली हो गई है।

इस उपन्यास में लेखिका ने वर्तमान युग की भ्रष्ट राजनीति और राजनेताओं का पर्दाफ़ाश किया है। आज का समाज अत्यंत उच्छृंखल हो गया है। पढ़-लिखकर बच्चे केवल अपने बारे में सोचते हैं। न तो उन्हें अपने माता-पिता की चिंता है और न ही बड़ों के सम्मान की परवाह। आज के युग में माता-पिता के प्रति उपेक्षा का भाव अधिक बढ़ गया है।

माता-पिता बच्चों को अच्छी शिक्षा देकर पढ़ा लिखाकर क़ाबिल बना देते हैं। बच्चे विदेश चले जाते हैं और माता-पिता या तो घर के चौकीदार बन कर रह जाते हैं या फ़ालतू सामान की तरह घर के किसी एक कोने में पड़े रहते हैं। किसी के पास उनसे बातचीत करने, उनका दुख-दर्द समझने महसूस करने का समय नहीं होता।

इसी प्रकार की पीड़ा व्यक्त करते हुए मि. गुप्ता रमाशंकर से कहते हैं। "मेरा बेटा अपनी पत्नी, बच्चों, दोस्तों से तो खूब बात करता है। मेरे लिए ही उसके सारे शब्द चुक गए हैं। बच्चे भी बस मतलब से बात करते हैं। बहू रोटी बनाकर खिला देती है। बस, अपने कमरे में पड़ा रहता हूँ।"

आज भारतीयों के मन में विदेशों में बस जाने की अभिलाषा अत्यंत बढ़ गई है।

इसी अभिलाषा के परिणाम स्वरूप हर लड़की विदेश में रह रहे लड़के से शादी करना चाहती है और विदेशों में रह रहे लड़के शादीशुदा होते हुए भी भारतीय लडकियों से शादी कर लेते हैं फिर या तो उन्हें छोड़कर चले जाते हैं या वहाँ ले जाकर नौकरानी बना कर रखते हैं। रोशनी की मम्मी को जब दिनेश के शादीशुदा होने का पता चलता है तो वह कहती है "अरे विलायत में रहने वाले सब ऐसे ही होते हैं। जानती हो मेरी ननद की बेटी का क्या हाल हुआ विलायत से लड़का शादी कर महीने दो महीने मौज-मस्ती कर फुर्र हो गया। कह गया था वह जल्दी ही बुला लेगा आज चार साल हो गए, उसने कभी कोई खोज ख़बर नहीं ली।"

इस उपन्यास में इंदिरा गाँधी की हत्या का विश्लेषण बडी बारीकी से किया गया है। 1984 में इंदिरा गाँधी की हत्या उनके सुरक्षाकर्मी बेअंत सिंह और सतवंत सिंह ने की। उसके बाद शहर में दंगे भड़क उठे। किस प्रकार समूची दिल्ली हिंदू-सिख दंगों की चपेट में आ गई उसका बडा क्रमबद्ध चित्रण लेखिका ने किया है।

सिखों को कैसे ज़िंदा जलाया जा रहा था इस सबका वर्णन लेखिका ने बड़ी स्वाभाविकता से किया है। दंगे किसी भी समुदाय में हों अंततः मानवीयता जीवित रहती है। इसकी मिसाल भी 1984 के दंगों में देखी गई जब हिंदू परिवारों ने सिखों को अपने घरों में छिपाकर उनकी रक्षा की।

आतंकवाद आज हमारे समाज का सबसे बड़ा नासूर है। ऐसा नासूर जो दिन-प्रतिदिन गहरा होता जा रहा है और इसका शिकार न जाने कितने निर्दोष बनते जा रहे हैं। उपन्यास का एक पात्र शारदा रमाशंकर से कहता है "अंकल, आप इतिहास को कैसे भूल सकते हैं।

हमने अपनी प्रिय प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को आतंकवाद की बलि वेदी पर चढ़ते देखा है। हमने अपने प्रधानमंत्री राजीव गाँधी को आतंकवाद के हाथों खो दिया" देश की लंबी समय से सेवा में जुटे गाँधी परिवार ने आतंकवाद के हाथों बहुत बड़ी क़ीमत चुकाई है।

उनका क़सूर क्या था? यही कि वह आतंकवाद की लड़ाई लड़ रहे थे। ऐसे देश को टूटने से बचाने के लिए इंदिरा जी ने अपने प्राणो की बाज़ी लगा दी। वास्तव में सन्तोष खन्ना जी ने इंदिरा गाँधी की हत्या के काल और उससे पहले और बाद में बनी परिस्थितियों को स्वयं देखा समझा है इसलिए वह एक प्रामाणिक इतिहास के सच की तरह उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है।

भारतीय समाज में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों को लेखिका ने इस उपन्यास में दिखाया है। एक ओर लड़कियाँ अपने अधिकारों के लिए लड़ रही हैं। तो दूसरी ओर वे सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए भी संघर्ष कर रही हैं। दहेज प्रथा हमारे समाज में सदियों से चली आ रही है। इसका विरोध भरपूर हुआ पर आज भी यह समाप्त नहीं हुई बल्कि इसका रूप बदल गया।

आज हमारे समाज में परिवर्तन यह आया है कि आज स्वयं लड़कियाँ इस प्रथा का विरोध कर रही हैं। 'रोशनी' उपन्यास की नीता को जब शादी के मंडप में पता चलता है कि उसके ससुर दहेज की माँग कर रहे हैं तो वह अपने हाथ से सगाई की अँगूठी उतार कर फेंकते हुए कहती है "मैं ऐसे विवाह को नही मानती जिसे लोभ लालच के रंगों से सजाया गया हो।

पिताजी, मैंने आपसे पहले ही कहा था कि इनकी माँगें पूरी मत करो। आपने पहले दस माँगें न मानी होतीं तो आज यह नौबत न आती।"

वास्तव में सन्तोष जी का यह उपन्यास अपने समय का सच दर्शाता है। सामाजिक विसंगतियों, बदलते परिवेश, आज के जीवन के ज्वलंत प्रश्नों पर लेखिका ने गंभीरता से विचार किया है।

इसकी नायिका आज की स्त्री-विमर्श वाली नायिका नहीं जिसे केवल अपने जीवन, अपनी मुक्ति, अपनी देह की पड़ी हो, वह समाज के बारे में सोचती है। सामाजिक समस्याओं से जूझती है और आत्मसम्मान के साथ जीती है। उसका लक्ष्य उदात्त है और यही इस उपन्यास की विशेषता है।

भारत का संविधान और देश का नाम भारत

सन्तोष खन्ना

वर्ष 1965 में एक मशहूर फिल्म आई थी जिसका नाम था— "सिकंदर-ए-आज़म" उस फिल्म का देशभक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत एक गीत था, "जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़ियाँ करतीं हैं बसेरा, वह भारत देश है मेरा।" हालांकि यह फिल्म सिकंदर की कहानी से आरंभ होती है परंतु भारत के लिए इसका अधिक महत्व है इसमें सम्राट पुरु अर्थात् पोरस से संबंधित गाथा के कारण। सिकंदर पोरस युद्ध में पोरस का बेटा शहीद हो जाता है और पोरस को बंदी बना लिया जाता है। बंदी के रूप में सम्राट पोरस के पराक्रमी वार्तालाप से सिकंदर प्रभावित हो मित्रता की पेशकश करता है। बाद में सिकंदर भारत से वापस प्रस्थान कर जाता है।

इसी फिल्म में "जहाँ डाल डाल पर सोने की चिड़ियाँ करती हैं बसेरा/वह भारत देश है मेरा" गीत पोरस के माध्यम से भारत दर्शन कराने का सुंदर प्रयास है। इस कालजयी गीत की रचना प्रसिद्ध गीतकार राजेन्द्र कृष्ण ने की है और संगीत निर्देशक रवि बहल और इसकी लाज़वाब प्रस्तुति की है स्वर सम्राट मोहम्मद रफी ने। लगभग छः दशक पुराना यह गीत जब भी बजता है कौन भारतीय होगा, जिसका मन, प्राण और आत्मा देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत न हो जाता हो। यही नहीं, इस गीत के प्रारंभ में जो गुरु स्त्रोतम मोहम्मद रफी ने अपनी बुलंद और आत्मा को सम्मोहित करने वाले स्वर में प्रस्तुत किया है, वह भी सबको आध्यात्मिक रूप से आह्लादित करता हैः

"गुरुर्ब्रम्हा गुरुर्विष्णु य गुरुर्देवो महेश्वरः गुरुः साक्षात परब्रह्मा तस्मै गरवे नमः यह गुरु स्त्रोतम स्कंद पुराण के गुरु गीता अध्याय में है और जिसका अर्थ है कि गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही शिव शंकर है, गुरु साक्षात परब्रह्म है और मेरा उनके चरणों में प्रणाम है। संस्कृत में गुरु का अर्थ है अंधेरे से उजाले की राह दिखाने वाला। मोहम्मद रफी की आवाज़ में इस गुरु स्त्रोतम की पावन और उदात्त गुंजायमान स्वरलहरियाँ जब धरती और आकाश के प्रांगण के समूचे परिवेश का उन्मेष कर रही होती हैं कि यह गीत अपने सम्पूर्ण माधुर्य के साथ समां बांधना आरम्भ कर देता है :

"जहाँ डाल डाल पर सोने की चिड़ियाँ करतीं हैं बसेरा, वो भारत देश है मेरा। जहाँ सत्य, अहिंसा का पग-पग लगता डेरा, वो भारत देश है मेरा।

इस समूचे गीत को सुनकर हर हदय तंत्री का नाद भी चारों दिशाओं में गूंज उठता है, 'यह भारत देश है मेरा, यह भारत देश है मेरा।' इस गीत में गूंज रहे 'भारत' शब्द के कारण ही मैंने अपने भारत देश के लिए यह भूमिका बांधी है। भारत देश हमारा सर्वस्व है, हमारी आन, बान और शान है, हमारी अस्मिता और हमारी पहचान है। इस जैसा अनमोल शब्द विश्व की किसी अन्य भाषा में नहीं हो सकता। इसी के लिए हमारे ऋषियों-मुनियों ने गाया है, 'जननी जन्मभूमि स्वर्गादपि गरीयसी।' अर्थात् माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। इसी जन्मभूमि के लिए अनेकानेक संतानों ने अपना जीवन इस पर न्योछावर कर दिया और भविष्य में भी भारत देश की संतान उसकी अखंडता और सुरक्षा के लिए सर्वोच्च बलिदान देती रहेंगी।

भारत एक ऐसा बहुत पुरातन और उदात्त संस्कृति सम्पन्न देश है। इसी के लिए अल्लामा इक़बाल ने लिखा था, कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी—

"सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा
सारे जहां से अच्छा हिंदुस्तान हमारा।"

भारत के लिए हिंदुस्तान शब्द का इस्तेमाल भी सदियों से किया जा रहा है पर इसके लिए 'इंडिया' शब्द का इस्तेमाल भारत पर अंग्रेजी साम्राज्य के दौरान शुरू हुआ और हमने अंग्रेजी साम्राज्य की पराधीनता से मुक्ति के बाद भी अधिकांशतः इंडिया शब्द ही अपना रखा है क्योंकि हम गुलामी की मानसिकता से बाहर आना ही नहीं चाहते। यहाँ तक कि जब स्वतंत्र भारत के लिए संविधान का निर्माण किया जा रहा था तो उस संविधान में जैसे ही उसकी उद्देशिका के बाद संविधान का मुख्य भाग शुरू होता है तो उसके पहले अनुच्छेद की पहली पंक्ति ही इंडिया शब्द से

ही प्रारंभ होती है। संविधान की पहली पंक्ति में भारत को परिभाषित करते हुए कहा गया है **India that is Bharat shall be a Union of States.** इंडिया अर्थात् भारत राज्यों का संघ है। चूंकि भारत के संविधान की रचना अपनी किसी भारतीय भाषा में नहीं, आक्रांताओं की भाषा अंग्रेजी में की गई है, इसलिए उसमें जहा- जहाँ भी भारत का उल्लेख आया है, वहाँ 'इंडिया' शब्द का ही इस्तेमाल किया गया है। 'भारत' शब्द का भारत के इस बृहत संविधान में ले देकर पहली पंक्ति में केवल एक बार ही उल्लेख है। अब भारत के संविधान को बने और लागू हुए लगभग पचहत्तर वर्ष होने को हैं, परंतु गुलामी की मानसिकता की प्रतीक इस व्यवस्था को बदलने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया।

जब भारत का यह संविधान बनाया जा रहा था तो उस संविधान सभा के अध्यक्ष थे प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जिनकी उत्कट इच्छा थी कि जब संविधान बन रहा था उसे अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा में भी बनाया जाए। उन्होंने उसके लिए एक समिति भी बनाई थी परंतु भारत का संविधान उस समय हिंदी में नहीं बन सका था और उस संविधान सभा से भारत का संविधान 'कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' 19 नवंबर, 1949 को केवल अंग्रेजी में ही पारित हो सका, हिंदी में नहीं, बाद में इस संविधान का 'भारत का संविधान' शीर्षक से हिंदी में अनुवाद तो किया गया। परंतु वर्षो तक उसका प्राधिकृत पाठ संसद से पारित हो कर नहीं आ सका, जिसका एक परिणाम यह हुआ कि देश का शासन चलाने के लिए अंग्रेज़ी में लिखित 'कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' का ही प्रयोग किया जाता रहा। वह तो बहुत बाद में वर्ष 1987 में भारत की संसद से 'कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' से हिंदी में अनुवाद कर भारत के संविधान को हिंदी में प्राधिकृत करवाया गया। किंतु 'कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को ले कर कई संवैधानिक प्रावधानों के कारण भारत के शासन का कामकाज अंग्रेज़ी में ही किया जाता रहा है और अभी भी देश की राजभाषा हिंदी में शासन का कामकाज कम ही किया जाता है और अंग्रेज़ी का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। चूंकि 'कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' में देश की न्याय संस्थाओं विशेष रूप से उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में कार्यवाही अनिवार्यतया अंग्रेज़ी में करने के प्रावधान कर दिये गये थे, अब जब देश अपनी स्वतंत्रता की छिहत्तरवीं वर्षगांठ मना रहा है, देश की जनता को देश की न्याय संस्थाओं से न्याय अपनी भाषा अथवा भाषाओं में नहीं बल्कि अंग्रेज़ी भाषा में ही मिल रहा है और इस तरह हम भारतवासी अंग्रेज़ी भाषा के रूप में गुलामी के इस प्रतीक को ढोने को अभिशप्त हैं और इस मायने में देश की जनता को कहीं भी सच्चे अर्थों में न्याय नहीं मिल पाता, बस जिसके बस में है अर्थात् तथाकथित पैसेवाले, रसूखदार या बाहुबली न्याय खरीद लेते हैं या अप्रत्यक्ष रूप से हथिया लेते हैं और आम जनता न केवल न्याय से वंचित हैं बल्कि अंग्रेज़ी भाषा में लिखित मूल अधिकार तथा समानता के अधिकार से, गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार से वंचित हैं चाहे हम कितना ही इस बात का दम भरते रहे कि भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। जब तक हम गुलामी के प्रतीकों से स्वयं को मुक्त नहीं करते, तब तक हम सही मायनों में स्वतंत्र होने का दम नहीं भर सकते हैं।

यह बात शत प्रतिशत सही है कि किसी देश की संस्कृति उसकी अपनी भाषा अथवा भाषाओं के माध्यम से ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी में अंतरित होती है। आप जिस भाषा के माध्यम से बचपन से आरंभ होकर छात्र जीवन में शिक्षा ग्रहण करते हैं, उसी भाषा की संस्कृति आपके रोम रोम में, आपके संस्कारों में, आपकी जीवन शैली में व्याप्त होती रहेगी। चूंकि स्वतंत्र भारत की पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिक्षा अब तक अंग्रेज़ी भाषा में होती आई है और देश का संविधान भी अंग्रेज़ी भाषा में निर्मित हुआ, शासन का कामकाज अंग्रेज़ी में किया जाता रहा है, न्याय आपको अंग्रेज़ी भाषा में दिया जा रहा है शिक्षा आप अंग्रेज़ी माध्यम से ग्रहण करते आ रहे हैं, आपने देश को भारत के रूप में नहीं, इंडिया के रूप में जाना है, स्वाभाविक है कि आपके संस्कारों में, आपकी जीवनशैली में भारतीयता कम हो, पश्चिम संस्कृति अधिक हो। आजकल हम अपने ऊपर ओढ़ी हुई पश्चिमी संस्कृति के दुष्प्रभाव को देखते हैं फिर भी पश्चिमी अपसंस्कृति के जाल में ऐसे संलिप्त हैं कि न तो हम अपने पारिवारिक

मूल्यों को निभा रहे हैं और न ही समाज में एक सुदृढ़ व्यवस्था कर पा रहे हैं। आज कल हम भारतीय गाहे-बगाहे अपनी प्राचीन संस्कृति की बात कर रहे हैं परंतु उसे अपनाने के लिए हमें अपने देश की जड़ों की ओर लौटना होगा। उसके लिए सबसे पहले अपनी स्वदेशी भाषाओं की ओर लौटना होगा। उसके लिए हमें सबसे पहले भारत के सबसे बड़े कानून अर्थात् भारत के संविधान में देश के नाम की परिभाषा को बदलना होगा जो वर्तमान में देश को परिभाषित करती है "इंडिया दैट इज़ भारत।" इसे 'इंडिया' से बदल कर 'भारत' करना होगा।

भारत के संविधान का निर्माण वर्ष 1946 से ले कर 1949 के बीच के कार्यकाल में हुआ था। जब संविधान सभा में संविधान में देश को परिभाषित करने के विषय पर चर्चा हो रही थी, तो संविधान सभा के उस समय के कुछ राष्ट्रवादी सदस्यों ने 'इंडिया' शब्द के इस्तेमाल पर अपना विरोध व्यक्त किया था परंतु उस समय के विदेश पलट अंग्रेजी भक्त सदस्यों ने इसे स्वीकार नहीं किया। जब संविधान सभा में कुछ सदस्यों ने देश का नाम इंडिया रखे जाने का विरोध किया, उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह दब गई। संविधान सभा के सदस्य एचवी कामथ ने कहा था कि संविधान सभा को देश के नाम को गंभीरता से लेना चाहिए। उनका विचार था कि मुख्य नाम भारत ही होना चाहिए। संविधान सभा के एक और सदस्य सेठ गोविंद दास ने वेद, पुराण, महाभारत का हवाला देकर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि इस देश को हमेशा से भारत के नाम से ही जाना जाता रहा है। उन्होंने 'इंडिया दैट इज भारत' के स्थान पर 'भारत नोन एज इंडिया इन फॉरेन कंट्रीज' का प्रयोग करने की सलाह भी दी थी। दस्तावेज़ बताते हैं कि इस मुद्दे पर कमलापति त्रिपाठी और डॉ. भीमराव आंबेडकर के बीच नोंक-झोंक भी हुई थी। आखिरकार, एचवी कामथ के प्रस्ताव पर वोटिंग हुई। उनके समर्थन में 38 सदस्य थे, जबकि 51 ने उसका विरोध किया। परिणास्वरूप उनका प्रस्ताव पास नहीं हो पाया और 'इंडिया दैट इज भारत' को ही स्वीकार कर लिया गया और तब से हम इंडिया शब्द को अधिक जानते हैं और भारत को कम। संविधान सभा में भारत के संविधान में 'भारत' नाम रखने के बारे में बहुत लंबी चर्चा हुई, उस सबका उल्लेख यहाँ संभव नहीं, उस बहस के एक दो उदाहरण देना यहाँ पर्याप्त होगा जिससे पता चलता है कि विश्व में सभी देशों का एक ही नाम हैं और हमने देश के सर्वोच्च कानून अर्थात् भारत के संविधान में देश के दो नाम रखे परंतु उसमें भी इंडिया को प्रथम स्थान पर रखा है।

संविधान सभा के एक माननीय सदस्य ने अपने स्वतंत्र हो रहे देश का नाम केवल भारत रखने की वकालत करते हुए कहाः—

"हमें वास्तव में अपने देश को ऐसा नाम देना चाहिए जो हमारे इतिहास और संस्कृति के अनुरूप हो। यह बहुत खुशी की बात है कि हम आज अपने देश का नाम भारत रख रहे हैं। मैंने पहले भी कई बार कहा है कि यदि हम इस मामले में सही निर्णय पर नहीं पहुँचे तो इस देश की जनता स्वशासन का महत्व नहीं समझ पाएगी।"

भारत के संविधान में केवल 'भारत' नामकरण के बारे में तर्क देते हुए एक माननीय सदस्य का यह कहना था :

'यह भी कहा गया जब कोई देश गुलामी में होता है, तो वह अपनी आत्मा को खो देता है। हजार साल की गुलामी के दौरान हमारे देश ने भी अपना सब कुछ खो दिया। हमने अपनी संस्कृति खो दी, हमने अपना इतिहास खो दिया, हमने अपनी प्रतिष्ठा खो दी और वास्तव में हमने अपना रूप और नाम खो दिया। आज हजार वर्ष तक परतंत्र रहने के बाद यह स्वतंत्र देश अपना नाम पुनः प्राप्त करेगा और हमें आशा है कि यह अपना खोया हुआ नाम प्राप्त करेगा। अपनी आंतरिक चेतना पुनः प्राप्त करेगा।'

एक अन्य माननीय सदस्य हर गोविंद पंत का भी दृष्टिकोण था : जहाँ तक 'इंडिया' शब्द का सवाल है ऐसा लगता है कि सदस्यों को और वास्तव में मैं भी यह समझने में असफल हूँ कि हमारा इस शब्द के प्रति इतना लगाव क्यों है? हमें यह जानना चाहिए कि हमें यह नाम हमारे देश को विदेशियों द्वारा दिया गया था जो इस भूमि की समृद्धि के बारे में सुनकर इसके प्रति आकर्षित हुए थे और हमारे देश की संपत्ति हासिल करने के लिए इन्होंने हमसे हमारे

स्वतंत्रता छीन ली। यदि हम इंडिया नाम से चिपके रहते हैं तो इससे यह पता तो चलेगा कि हमें इसमें कोई शर्म नहीं है जो विदेशी शासकों द्वारा हम पर नाम थोपा था हम उससे मुक्त होने के लिए तैयार नहीं हैं। मुझे यह समझ नहीं आ रहा कि हम इस शब्द 'इंडिया' को स्वीकार क्यों कर रहे हैं।

संविधान लागू होने के बाद भी समय-समय पर यह आवाज़ उठती रही है कि संविधान से 'इंडिया' शब्द हटा कर केवल 'भारत' रहने दिया जाये। वर्ष 2020 में उच्चतम न्यायालय में इस आशय की याचिका दायर की गई थी तो उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एस. बोबडे की अध्यक्षता वाली तीन सदस्यीय बेंच ने याचिका को ख़ारिज़ करते हुए इस मामले में दख़ल देने से इन्कार कर दिया। अदालत ने कहा कि संविधान में पहले से ही भारत का ज़िक्र है। संविधान में लिखा है 'इंडिया दैट इज भारत।' उच्चतम न्यायालय ने अपने फ़ैसले में यह भी कहा कि इस याचिका को संबंधित मंत्रालय में भेजा जाना चाहिए और याचिकाकर्ता सरकार के सामने अपनी मांग रख सकते हैं। यह कोई नई बात नहीं है कई देश अपना नाम बदल चुके हैं।

इसी वर्ष संसद के मानसून सत्र में 27 जुलाई, 2023 को राज्य सभा में भारतीय जनता पार्टी के एक सांसद श्री नरेश बंसल ने विशेष उल्लेख के माध्यम से यह मुद्दा उठाया। उन्होंने कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद एक में देश का नाम इंडिया दैट इज भारत हटा कर केवल भारत होना चाहिए। आज़ादी के अमृतलाल में अंग्रेज़ी गुलामी के प्रतीक को हटा कर इस पावन पुण्य धरा का नाम केवल भारत किया जाना चाहिए।

संविधान निर्माण काल से ऐसी मांग होती आई है। इस मांग को देर सवेर पूरा करना ही होगा। उल्लेखनीय यह भी है कि भारत के संविधान में केवल यही गुलामी का प्रतीक नहीं हैं जिसका संशोधन किया जाना चाहिए, इससे अधिक भी ऐसे कुछ और प्रावधान हैं जिनकी ओर आमतौर पर किसी का ध्यान नहीं गया है। सबसे बड़ा प्रावधान जिसका संशोधन ज़रूरी है वह है देश के शासन की भाषा केवल भारत भाषा ही हो, अंग्रेज़ी अब बिल्कुल नहीं रहनी चाहिए। दूसरा, देश की जनता को उसकी भाषा में न्याय दिलाने के लिए देश की विधि और न्याय भाषा अब अंग्रेज़ी नहीं रहनी चाहिए। ऐसा तभी संभव है जब अनुच्छेद 348 में संशोधन किया जाए। यही वह प्रावधान है जो देश की जनता को उसकी भाषा में न्याय दिलाने में बहुत बड़ी बाधा बना है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी तक किसी राजनीतिक दल का इस ओर ध्यान ही नहीं गया है। क्या कोई इस बात पर शोध करके बतायेगा कि कभी किसी राजनीतिक दल ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में कभी यह मुद्दा रखा है? वैसे भी हमारे देश में जितने भी सरकारी और गैर-सरकारी विधि स्कूल और विश्वविद्यालय हैं उसमें कानून की शिक्षा अनिवार्यतया अंग्रेज़ी में दी जाती है और इस तरह जो वकील और न्यायाधीश तैयार होते हैं वह अंग्रेज़ी में तैयार होते हैं मानों वह स्वयं को इंग्लैंड अमरीका के लिए तैयार कर रहे होते हैं। भारत के संविधान का अनुच्छेद 348 सबसे बड़ा औपनिवेशिक मानसिक गुलामी का प्रतीक है। उसमें तत्काल प्रभाव से संशोधन होना चाहिए। यह तभी संभव होगा जब इसके लिए देश की जनता आवाज़ उठायेगी।

वैसे भारत के बारे में यह जान लेना भी आवश्यक है कि प्राचीनकाल से भारतभूमि के अलग-अलग नाम रहे हैं मसलन जम्बूद्वीप, भारतखण्ड, हिमवर्ष, अजनाभवर्ष, भारतवर्ष, आर्यावर्त, हिन्द, हिन्दुस्तान और इंडिया मगर इनमें भारत सबसे ज़्यादा लोकमान्य और प्रचलित रहा है। इस के बाद देश हिंदुस्थान के नाम से भी जाना जाता है। इसके बारे में एक प्राचीन मंत्र देखिये—

'हिमालयात् समारभ्य यावत् इन्दु सरोवरम्। तं देवनिर्मितं देशं हिन्दुस्थान प्रचक्षते॥" (बृहस्पति आगम)

अर्थात् : हिमालय से प्रारंभ होकर इन्दु सरोवर (हिन्द महासागर) तक यह देव निर्मित देश हिन्दुस्थान कहलाता है। 'हिमालय' संस्कृत के 'हिम' तथा 'आलय' दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ 'बर्फ का घर' होता है। हिमालय को भारत का ताज कहा जाता है। हिमालय की क्रोड़ में कई देश हैं पर मुख्यतः भारत का बहुत बड़ा भाग हिमाचल की क्रोड़ में है। जहाँ तक हिंदूस्थान शब्द का संबंध है दुर्भाग्यवश बहुत सारे लोग इस नाम को भी अब सांप्रदायिक बताने लगे हैं।

डॉ. सन्तोष खन्ना की आलोचकीय दृष्टि

डॉ. शकुन्तला कालरा

आलोचना-साहित्य की दशा-दिशा का एक खुला चित्र दिखाती है। उसकी कमज़ोरियों को बेनकाब कर भविष्य के लिए सच्चाई का काम कर रास्ते को प्रशस्त करती है। बिना आलोचनात्मक दृष्टि का विकास किए हम किसी भी कृति और कृतिकार की खूबियों और कमज़ोरियों को नहीं समझ सकते। इसलिये आलोचना आज के साहित्य की सही तस्वीर खींच कर अप्रत्यक्ष में उसका विश्लेषण करती है। नई दृष्टि के साथ युगानुरूप साहित्य-लेखन की भूमिका आलोचना द्वारा ही निर्मित होगी।

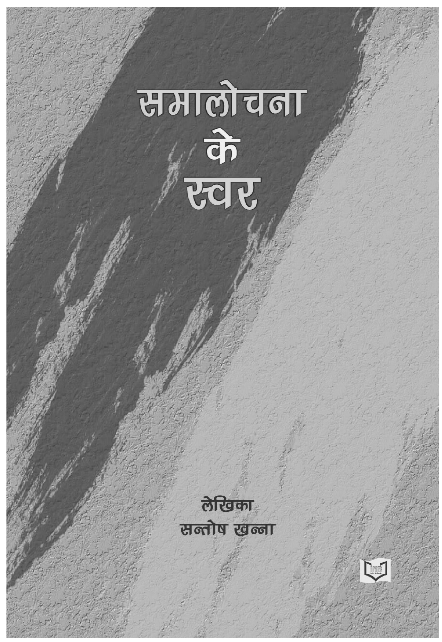

यह एक अच्छे आलोचक का काम है कि वह अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए उत्तम साहित्य की कसौटी को उसके प्रतिमानों को व्याख्यायित करे। सन्तोष खन्ना जी ने अपनी पुस्तक 'समालोचना के स्वर' में इस काम को बखूबी निभाया है। पुस्तक के आरंभ में अत्यंत सारगर्भित भूमिका है, जो न केवल आलोचना को परिभाषित करती है अपितु उसकी दशा और दिशा को इन शब्दों में संकेतिक करती चलती है "समालोचना साहित्य की सृजनात्मकता, सरोकार और भाषा-शैली का विवेचन, अन्वेषण और मूल्यांकन करने वाली एक महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा है जो साहित्य के पीछे नहीं उसके समानांतर चलती है।

सृजनात्मक साहित्य की तर्ज़ पर समालोचना में भी मौलिक साहित्य-सी सृजनात्मकता और संवेदनशीलता की अपेक्षा रहती है। साहित्य कब कौन-सी दिशा पकड़ेगा अथवा साहित्य में वैचारिकता और प्रभविष्णुता कितनी प्रभावी या बदलावकारी होगी, कभी-कभी समालोचना इसे भी तय करती है। समालोचना तटस्थ, निष्पक्ष और पूर्वाग्रहों से मुक्त हो।"

लेखिका ने अपनी इस भूमिका में ही आलोचना के साथ साहित्य और साहित्य के उद्देश्य को भी परिभाषित किया है। लेखिका की दृष्टि में साहित्य का उद्देश्य एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना और उसे संस्कार देना होता है। उनका मानना है कि– "साहित्य पशुता से सभ्य होने की' तमीज सिखाता है और साथ ही वह जीवन के रास्तों में पड़ने वाले गड्ढों के प्रति सावधान भी करता चलता है। किसी विद्वान ने सही कहा है कि मनुष्य और समाज के लिए हितकारी रचना ही साहित्य है।

यथार्थ के नाम पर रचा जाने वाला साहित्य मनुष्य में क्रूर प्रकार की भावनाओं का उद्दीपन तो कर सकता है, उसकी भावनाओं का विरेचन नहीं करता जिससे साधारणीकरण की क्रिया घटित होती है।''

पुस्तक में ग्यारह आलेख, लेखिका द्वारा समीक्षित दस पुस्तकें और जयप्रकाश मानस के सौजन्य से एक लंबा साक्षात्कार है, जिसमें प्रौद्योगिकी क्रांति/संचार क्रांति, जनतंत्र का स्वरूप, भारतीय धर्म एवं संस्कृति, न्याय एवं सुरक्षा, जनप्रतिनिधियों का आदर्श मापदंड, भारतीय राजनीति और सत्ता व्यवस्था में वंशवाद, देश के विकास की प्रमुख चुनौतियाँ या समस्याएँ, देश में शासकीय सेवाओं में आरक्षण, हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, पर्यावरण संतुलन और विकास, ईश्वर की उपस्थिति/अनुपस्थिति, हिन्दी भाषा द्वारा सम्पूर्ण भारत को किस प्रकार एक सूत्र में पिरोया जाए, साहित्य और साहित्यकार के सम्मुख आज क्या-क्या चुनौतियाँ,

आदि विविध विषयों पर सारगर्भित एवं सटीक आलोचनात्मक टिप्पणियाँ हैं। पुस्तक में संग्रहीत प्रथम आलेख—

'समालोचना के स्वर' सर्वाधिक महत्वपूर्ण आलेख है, जिसमें लेखिका ने उन विद्वान आलोचकों एवं मनीषियों के योगदान को भी रेखांकित किया है जिनके द्वारा हिंदी साहित्य के उन्नयन को एक गरिमामय दिशा मिली है— हिंदी साहित्य और हिंदी समालोचना में रामचंद्र शुक्ल का अद्वितीय स्थान और उनका प्रभूत अवदान है। उन्होंने साहित्य में नैतिकता और लोक-मंगल की भावना का पक्ष लिया। उन्हें हिंदी समालोचना का शिखर विद्वान माना जाता है। शुक्लकालीन हिंदी समालोचना में कई प्रकार के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है जिसमें शुक्ल जी का प्रमुख अवदान रहा है। वे इस युग की समालोचना के प्रवर्तक माने जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के पश्चात् हिंदी समालोचना कई दिशाओं में आगे बढ़ी है और डॉ. रामविलास शर्मा जी की न केवल हिंदी साहित्य बल्कि समीक्षा को भी और आगे बढ़ाने में निर्णायक भूमिका रही है। भारत में बीसवीं शती में प्रगतिवादी (मार्क्सवादी) विचारधारा ने साहित्य और समीक्षा को गहरे तक तथा व्यापक आधार पर प्रभावित किया है।

इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा को हिंदी साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा का पितामह कहा जाता है। उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन और सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया और उन्हें व्यावहारिक आधार पर हिंदी साहित्य पर लागू किया। इस मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार उन्होंने माना कि साहित्य का जन-जीवन से सीधा संबंध है।

कवि प्रसाद की **'कामायनी'** पर एक अत्यंत सारगर्भित समीक्षात्मक आलेख है, जिसमें लेखिका ने, उसमें निहित शाश्वत मूल्यों का प्रतिपादन किया है। लेखिका की दृष्टि में—'कामायनी' एक महाकाव्य ही नहीं अपितु यह कवि प्रसाद की एक आध्यात्मिक यात्रा है। 'कामायनी' का प्रेरक तत्व जीवन के अर्थ की खोज है।

'कामायनी' युग-युगीन काव्य का प्रतिनिधित्व करने वाली शाश्वत कृति है। भारतीय साहित्य में रामायण, महाभारत, रघुवंश, अभिज्ञान-शाकुन्तलम् और रामचरितमानस ऐसे ही युगीन साहित्य के प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं। 'कामायनी' इस महत्वपूर्ण परम्परा की अंतिम कड़ी हैं। 'कामायनी' युगीन ही नहीं, अपितु शाश्वत मूल्यों को प्रतिपादन करने वाली शाश्वत कृति है। पुस्तक में दो आलेख सतत् कर्मठ विद्वान साहित्यकार **डॉ. अमर सिंह वधान** के विशिष्ट अवदान पर केंद्रित हैं।

लेखिका पंजाब के सपूत की अथक साहित्य-सेवा से अत्यंत प्रभावित हैं, जिसने अपने कार्यों से, अपने साहित्यिक सृजन और हिन्दी भाषा की अथक सेवा से भारत का नाम रोशन किया हैं। यही नहीं, देश में पंजाब का नाम भी ऊँचा किया है। अपने आलेख में लेखिका लिखती हैं—''डॉ. अमर सिंह वधान, जिन्होंने स्वतन्त्र भारत की राष्ट्र, राज, राज्य, सम्पर्क एवं लोक भाषा का मान-सम्मान बढ़ाया है। उन्होंने हिंदी में अनेक उच्च-कोटि की पुस्तकों का लेखन, सम्पादन और अनुवाद कर इस भाषा को समृद्ध किया है।

स्वतंत्रता वर्ष में पैदा हुआ पंजाब का यह सपूत साहित्य और अन्य भिन्न भिन्न विषयों में अपनी रचनाधर्मिता और प्रतिबद्धता के सहारे अनेक लेखकों का भी पथ-प्रदर्शन करता चला जा रहा हैं। उनकी यात्रा निरंतर जारी हैं।'' **'डॉ. श्याम सिंह शशि का अनुवादक रूप'** शशि जी के इस विधा में उनके उल्लेखनीय योगदान को इंगित करता है। आज इस तथ्य में सर्वत्र स्वीकृति मिल रही हैं कि अनुवाद वस्तुतः मौलिक लेखन से भी कठिन कार्य हैं। सफल अनुवाद सतत् साधना से ही सम्भव हैं।

इसके लिए आवश्यक है कि अनुवादक को मूल तथा लक्ष्य भाषाओं के ज्ञान के साथ-साथ मूल भाषा की कृति के सांस्कृतिक परिवेश की पहचान भी होनी चाहिए। अनुवाद और डॉ. श्याम सिंह की अनुवाद कला इस विषय में लेखिका का कथन पठनीय है-''मूल कथ्य की पूर्ण पकड़ ही अपेक्षित नहीं, अंतर्मन से सम्यक् किया गया अनुवाद ही सफल हो सकता है। ललित साहित्य तथा कथा साहित्य के अनुवाद में इतना ही अन्तर है कि यदि कथा साहित्य में यह महत्वपूर्ण है कि क्या कहना है तो ललित साहित्य में यह महत्वपूर्ण है कि कैसे कहना हैं।

डॉ. शशि ने दोनों ही प्रकार के अनुवाद किए हैं। एक

ओर तो उन्होंने अपनी कविताओं के स्वयं अनुवाद किए हैं तो दूसरी ओर उन्होंने दूसरे कवियों की रचनाओं के अनुवाद भी किए हैं। White Darkne संकलन में डॉ. शशि ने अपनी कविताओं का अनुवाद स्वयं ही किया है। उनके द्वारा अनूदित कविताएँ, मौलिक कविताएँ प्रतीत होती हैं। डॉ. शशि ने अनुवाद के कला, तकनीक एवं सिद्धांत पक्ष पर भी लिखा है।

साहित्यः परम्परा का नवोन्मेष आलेख में लेखिका ने परंपरा को परिभाषित किया है। लेखिका की दृष्टि में—परम्परा जीवन और चिंतन का निचोड़ होती है। प्राचीन भारतीय परम्परा का एक महत्वपूर्ण पक्ष हैं, कि वह कण-कण में अणु, अणु में विराट सत्ता का अस्तित्व मानती है। और उसे आज का विज्ञान भी सिद्ध कर रहा है। गॉड पार्टीकल के रूप में।" **सामाजिक सोच और साहित्य** आलेख में लेखिका लिखती हैं—''साहित्य रचना मानसिक विलासिता का कर्म नहीं, अपितु मानसिक प्रबुद्धता का धर्म है, समाज में पसरी अराजकता, अधर्म, गलाकाट आपराधिक प्रतिस्पर्धा, असंयम और उपभोगवाद की अंधाधुंध आँधी हमारी भावी युवा पीढ़ियों का भविष्य लीलती प्रतीत हो रही हैं। हम अब अधिक देर तक उपेक्षा की भूल-भुलैया में नहीं भटक सकते। सृजन का एक नया सूर्य जगमगाना होगा।''

अपनी इस पुस्तक में लेखिका ने वर्तमान कविता पर भी आलेख लिखे हैं। **'21वीं शती की कविता'** आलेख में लेखिका लिखती हैं—जहाँ तक '21वीं शती की कविता' के तेवर और कलेवर का संबंध है तो अब यह निर्विवाद हो चला है कि पिछले दो दशकों की कविता का फलक काफी विस्तृत और विभिन्नता लिए है।

प्रौद्योगिकी के विकास के कारण हर वर्ष काफी संख्या में काव्य-संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं और पूरे देश में पत्र-पत्रिकाओं में भी कविताएँ प्रकाशित हो रही हैं। सोशल मीडिया की बढ़ती पहुँच के कारण कविताएँ त्वरित गति से पाठकों तक भी पहुँचने लगी हैं।

कविता अपनी समूची सीमाएँ तोड़ती नजर आ रही है और संकुचित वादों और वाद-विवादों के दायरे से बाहर आ जीवन और जगत के हर पल, हर पक्ष और दिशा को स्वयं में समेटती हुई नई परिभाषाएँ गढ़ने लगी है।'' कविता पर एक अन्य आलेख **'वर्तमान कविता का स्वरूप'** में लेखिका ने रमेश रंजक की एक नवगीत की पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए 'वर्तमान कविता के स्वरूप पर रोशनी डाली है— "यह शगूफा है तरल भ्रम सिर्फ उनका/छंद से कतरा रहे जो/दे नहीं पाये समय को एक कविता/रोज लिखते जा रहे जो।" रमेश रंजक के गीत की ये पंक्तियाँ आज की कविता के परिदृश्य पर एक टिप्पणी है। पर क्या छंदहीन कविता में कोई शक्ति, सामर्थ्य या काव्य-तत्व नहीं होता कि उसे यों ही खारिज किया जा सके? विचार कविता भी अपने आप में ऐसी उद्वेलित कर देने वाली लहरों सी समुन्नत है, कि उसे हाशिए पर नहीं डाला जा सकता है।

फिर कविता के क्षेत्र में गीत और नवगीत की अपनी सत्ता है। जिसे किसी भी कीमत पर नकारा नहीं जा सकता। यह सब होते हुए भी यह सत्य हैं कि आज कविता को वह महत्व नहीं मिल रहा हैं जो उसका देय और श्रेय है। आज के तीव्रगामी इलेक्ट्रानिक युग में कविता में कम हो रही रुचि से स्वाभाविक रूप से जीवन में मरुस्थल की रेत का प्रकोप फैलता जा रहा है जबकि इंसान को पाषाणवत् बनाते आज के माहौल में कविता की सबसे अधिक जरूरत है।''

पुस्तक में लेखिका द्वारा चुनी हुई कुछ समीक्षित पुस्तकें भी हैं, जो पाठकों का ज्ञान बढ़ाती हैं, विवेक जाग्रत करती हैं। साहित्य के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, राजनीति, विज्ञान आदि विभिन्न विषयों की विशिष्टताओं से तो अवगत कराती ही हैं, हमारी पूर्व जानकारी को भी नए ढंग से सामने रखती हैं।

समीक्षा के महत्व को दर्शाते हुए लेखिका ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि साहित्य-समीक्षा द्वारा साधारण और उच्चकोटि की पुस्तकों को चुना जा सकता है। लेखिका ने जिन रचनाकारों की कृतियों को लिया है, वे इस प्रकार हैं—**विष्णु प्रभाकर जी का एक काव्य-संग्रह "चलता चला जाऊँगा"** प्रकाशित हुआ है जिसका संपादन उनके मरणोपरांत उनके सुपुत्र श्री अतुल कुमार ने किया।

लगभग आठ दशकों में फैले हुए विष्णु प्रभाकर जी के रचनाकाल का विपुल साहित्य एक ऐसी अनन्त कविता है,

जिसमें उनके हर काल की परिस्थितियाँ और प्रवृतियाँ स्पष्ट रूप से मुखर हुई हैं।

उनकी रचनाओं में युग-चेतना का सर्जनात्मक उद्घोष हुआ है। विष्णु प्रभाकर जी के कवि रूप और उनकी कविताओं के विषय में लेखिका की टिप्पणी है कि– "विष्णु प्रभाकर जी के लिए यह कविताएँ चाहें थके मन का टॉनिक रही हों किंतु इन सभी कविताओं में उनके अन्तस् की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली थी। विष्णु जी ने अपने साहित्य और व्यक्तिगत जीवन में उच्च कोटि के मानव-मूल्यों की केवल पक्षधरता ही नहीं, उन्होंने उन्हें जिया भी है। वास्तव में उनकी यह सभी कविताएँ एक संवेदनशील, सजग सतर्क एवं देश के सरोकारों के प्रति पूर्णतया प्रतिबद्ध रचनाकार के चिंतनपरक एवं व्याकुल उद्गार हैं। अगली पुस्तक **श्री प्रदीप कुमार अग्रवाल "प्रदीप्त" का सद्य प्रकाशित 'अनुगूंज'** काव्य-संग्रह है, जिसे खन्ना जी ने रचनाधर्मिता का अद्वितीय दस्तावेज कहा है। अपनी आलोचनात्मक टिप्पणी में वह लिखती हैं–''उनमें व्यक्त सूक्ष्म, सुंदर और मार्मिक अनुभूति -प्रवण संवेदनायें विमुग्ध कर देती हैं। गीतों के रेशे-रेशे में संगीतमय लय और सघन संवेदना हृदयतल को पूरी शिद्दत के साथ उद्वेलित कर देती है।

उनकी कवितायें भाषीय सहजता, सरलता, संवेदनशीलता और संप्रेषणीयता का एक सुंदर दस्तावेज है।" सन्तोष खन्ना जी ने स्थापित गीत-गज़लकार **अवघोष का काव्य संग्रह "गौरया का घर खोया हैं"** की भी सारगर्भित रूप से समीक्षा 'सामाजिक सरोकारों का पारदर्शी आइना शीर्षक के अंतर्गत की है।

रोशनी और चेतना की प्रतीक गज़लें मानवीय भावबोध और विचारबोध का पूरी संवेदनशीलता एवं संरचनात्मकता एवं कलात्मकता का सशक्त शास्त्र बन गई हैं। इनमें कवि के सरोकार सीधे जनता से जुड़े हैं। इनमें भी महँगाई, बेरोजगारी, गरीबी, भूख, रोटी, परस्पर रिश्तों में आया अलगाव, बाजारवाद, राजनीति की अनीति आदि सभी भाव इन गज़लों के विषय बने हैं। **डॉ. सुनील परीट कृत 'माँ और ईश्वर'** काव्य-संग्रह की समीक्षा करते हुए लेखिका ने उसे प्रामाणिक जीवनबोध की सार्थक कविता कहा है। खन्ना जी ने डॉ. सुनील के 'माँ और ईश्वर' काव्य-संग्रह की सबसे बड़ी उपलब्धि उनकी माँ के संबंध में रचित कविताओं को माना है। डॉ. सुनील परीट की दृष्टि में माँ की भूमिका ईश्वर से भी बड़ी है। वह महान हैं क्योंकि जबकि मेरे दर्द को/कभी ईश्वर ने/समझा नहीं/ऐसा होता तो/मैं दुःखी नहीं होता/मेरे पल-पल के/सुख-दुःख/सिर्फ मेरी माँ समझती है। लेखिका द्वारा कई समीक्षित कहानी-संग्रह भी पुस्तक में रखे गए हैं। वर्तमान समय में रची जा रही हिंदी कहानी अपनी विविधता, प्रचुरता, प्रखरता एवं प्रभविष्णुता के कारण साहित्य की एक ऐसी सशक्त विधा है, जो जीवन के विविध रूपों, आज के मानव के तनावों और अभावों एवं जड़ताओं तथा भटकावों को यथार्थ एवं प्रमाणिकता के धरातल पर रेशा-रेशा उधेड़ती और उकेरती हुई पारदर्शी आईने में सजीव कर नए समाधानों की संभावनाएँ तलाशने का उपक्रम करती है। रचनाकार अपनी संवेदना, अपने अनुभव एवं वैचारिकता से अपनी जीवन-दृष्टि के माध्यम से जीवन के सनातन सत्य और मूल्यबोध का एक नया व्याकरण रचता हैं। **डॉ. उषा देव का कहानी संग्रह "कजरी''** उनकी दृष्टि में प्रामाणिक अनुभूतियों का दस्तावेज है। नई उभरती लेखिका सरिता गुप्ता के 'अहसास के पल' कहानी संग्रह को जीवन समाज में महिलाओं के उत्पीड़न, शोषण, अभाव, तनाव और अधूरी आकांक्षाओं का एक चलता-फिरता परिदृश्य माना है। उनकी कहानियाँ बने बनाए स्थापित खांचों के बजाय

कहानी के अपने मानदंडों और प्रतिमानों का सृजन कर वर्तमान समय के समाज के सरोकारों और चिंताओं को सहज और सरल शैली में पिरोकर नई दिशा और नए समाधान प्रस्तुत करती हैं।

डॉ. अनीता प्रभाकर के कहानी संग्रह की कहानियों के विषय में वह लिखती हैं—''वे अपने जीवन के अर्जित समृद्ध अनुभवों को अपनी प्रबुद्ध वैचारिकता एवं वास्तविक यथार्थ के आधार पर समकालीन चेतना की चाशनी में लपेटकर सच्चे साँचों में ढालती चलती हैं।

अनीता प्रभाकर समाज में सदियों से पसरी पितृ सत्तात्मक प्रवृत्तियों के चलते औरत के प्रति शोषण, उपेक्षा, उत्पीड़न, अत्याचार को रेखांकित करते हुए उसके विरुद्ध प्रतिरोधात्मक स्वरूप संघर्ष करने के लिए उसे आगे बढाती हैं। हिंदी के प्रतिष्ठित प्रवासी हिंदी साहित्यकार **डॉ. कृष्ण कुमार द्वारा संपादित 'अपनी उम्मीदों के साथ'** कहानी संग्रह में प्रवासी साहित्यकारों की कहानियाँ हैं। इस कहानी संग्रह की समीक्षा करते हुए लेखिका इस कहानी संग्रह के बारे में लिखती हैं कि इसकी अधिकांश कहानियाँ या तो भारतीय परिवेश की हैं या कुछ कहानियों में यू.के. और भारत दोनों देशों का परिवेश लिया गया है।

'समालोचना के स्वर' पुस्तक से आद्योपांत गुज़रने के बाद यह विश्वास से कह सकती हूँ कि समीक्षक ने पूर्वाग्रह से मुक्त हो तटस्थ भाव से कृतियों का गुण-दोष सहित मूल्यांकन किया है। आलोचक के लिए निष्पक्ष होना आवश्यक माना गया है। संतोष खन्ना जी ने इसी नियम को अपनाते हुए सर्वत्र अपनी निरपेक्ष दृष्टि, पूर्वाग्रह-विहीन तटस्थता को अपनी आलोचना का आधार बनाया है।

आलोचक को रचनाकार के प्रभाव से सर्वथा दूर रहकर आलोचना करनी चाहिए। रचनाकार के दृष्टिकोण को समझकर उसकी कृति की व्याख्या करनी चाहिए यानी रचनाकार की कृति के साथ आलोचक को तदाकार होना चाहिए। मैथ्यू आर्नल्ड ने आलोचना की निष्पक्षता पर बहुत बल दिया है।

उनके अनुसार—"आलोचक कभी-कभी अपनी वैयक्तिक रुचि, संबंधों तथा परिस्थितियों के कारण बहक सकता है और ऐसी स्थिति में किसी कृति को अनावश्यक महत्व दे सकता है या उसकी व्यर्थ निंदा कर सकता है।" मैथ्यू आर्नल्ड के इस सिद्धांत को सन्तोष खन्ना जी ने सदा अपनाने का प्रयास किया है। मैथ्यू आर्नल्ड मानते हैं—"आलोचक का कर्त्तव्य है कि वह संसार के सर्वोच्च ज्ञान और सर्वोत्तम विचारों को जानें, उन्हें सोचे-समझे और फिर उनका सर्वत्र प्रचार करें।" यही कार्य सन्तोष खन्ना जी ने अपने आलोचना-कर्म के द्वारा किया है। कहीं उन्होंने अरस्तू, प्लेटो, विलियम वर्डसवर्थ वेदव्यास अरविंद आदि के विचारों को यथास्थान उद्धृत किया है।

आलोचक के तीन गुण होने चाहिए— आलोचक पढ़े, समझे और वस्तुओं का यथार्थ रूप देखें। सन्तोष खन्ना ने यह कार्य तटस्थ भाव से पूर्वाग्रह से मुक्त रहकर किया है। लेखिका की जो बात मुझे सबसे अच्छी लगी, वह है उनके द्वारा किए गए आलोचना-कर्म में उनकी उदार एवं न्यायपूर्ण सम दृष्टि है। लेखिका द्वारा ली गई समीक्षित पुस्तकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे महान लेखकों को ही प्रकाश में नहीं लाईं हैं, नई उभरती प्रतिभाओं और उनकी कृतियों से भी पाठकों को परिचित कराया है। एक अच्छे आलोचक का यह भी कर्तव्य माना गया है कि उसने जो कुछ पढ़ा अथवा सीखा है उसे दूसरों को हस्तांतरित करे। यानि वह रचनात्मक प्रतिभा के लिए उपयुक्त उपजाऊ भूमि तैयार करे। संतोष खन्ना जी बहुपठित, बहुत साहित्यकार हैं। उन्होंने इस आलोचक-कर्म को भी बखूबी निभाया है।

ध्यातव्य है कि सन्तोष खन्ना जी सृजनात्मक प्रतिभा-सम्पन्न भी हैं और उनमें आलोचनावृत्ति भी है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 'समालोचना के स्वर' यद्यपि सन्तोष खन्ना जी की आलोचना-क्षेत्र की पहली पुस्तक है, तथापि एक अच्छे आलोचक के गुण इनमें देखे जा सकते हैं। उनके आलेखों में अन्वेषण की नई मौलिकता है। उसमें सतहीपन नहीं है, गंभीरता है। वह रूढ़िबद्ध नहीं ताज़ापन लिए हैं। प्रस्तुत पुस्तक में सभी समीक्षित पुस्तकें आलोचना-विषयक जानकारी तो बढ़ाती ही हैं, हमारी बोध-शक्ति को भी जागरूक रखती हैं। आलोचना के क्षेत्र में उनका प्रथम प्रदेय स्तुत्य है।

रूकना नहीं है मेरा नाम

रमेश चन्द्र

"आओ भाई, कथा सुनाएँ महिला एक महान की।
इस देवी को तिलक करो, यह पात्र बड़े सम्मान की।"

जी हाँ, हम आपकी मुलाकात ऐसी ही एक महान महिला हस्ती से कराने जा रहे हैं। वह जो सबके लिए आदरणीय, सबके लिए अनुकरणीय, सबके लिए पूजनीय और सबकी आराध्या हैं। इनकी महिमा सुनकर आप दाँतों तले उंगली दबाकर रह जाएँगे, सोचते रह जाएँगे कि आखिर ये किस धैर्य, किस जीवट, किस लगन और किस दृढ़ इच्छा-शक्ति से बनी हैं, जो रुकने का नाम ही नहीं ले रही हैं, नदी की तरह बहती ही जा रही हैं, सबके लिए प्रेरणा और प्राणों का संचार करती ही जा रही हैं और कोमल कांत काया तथा मधुरता की माया से इस संसार को अपने स्नेह रस से सम्मोहित करती ही जा रही हैं?

तो मेरे भाइयो! हम आपको और अधिक इंतजार नहीं कराएँगे। अब आप बस उनके महात्म्य को पढ़ने के लिए तैयार हो जाइए। हाँ, बस यह जरूर है कि इसके लिए आपको धैर्य रखना होगा, क्योंकि जब कोई विभु की इतिश्री के बाद विभूति बनता है, तो रातों-रात नहीं बनता, उसके पीछे उसके जीवनभर का श्रम होता है और जीवनभर के उस श्रम की गाथा को पढ़ने के लिए धीरज तो धारण करना ही होता है। यदि जीवन में कुछ पाना चाहते हैं, कुछ सीखना चाहते हैं, जीवन में उद्योगरत रहना चाहते हैं, माधुर्य के वाहक बनना चाहते हैं, उनकी तरह प्रेरणा का स्रोत बनना चाहते हैं, तो पढ़िए एकाग्र मन से परिश्रम की इस गाथा को।

भाइयो! भारत में ब्रह्मा द्वारा अवतरित और विष्णु द्वारा पोषित सरस्वती की यह वरद् पुत्री, परिश्रम की साक्षात् देवी और संसार को, विशेषकर महिला जगत को, नाना प्रकार के बंधनों से मुक्त कराने वाली अप्रकट, वरन् प्रकट, शक्ति का नाम है सन्तोष खन्ना!

सन्तोष खन्ना जी मेरे लिए आदरणीय और अनुकरणीय हैं। मुझे इनके महान, विपुल कार्यों का गान करने का अवसर मिला, इसके लिए मैं ईश्वर के प्रति कृतज्ञ हूँ। श्रीमती सन्तोष खन्ना जी इस समय 86 वर्ष की हैं। मैं क्या, उनकी वय और उनका कार्य स्वयं ही वर्णन कर देते हैं कि उनका जीवन एक दीर्घ साधना है और वह सबको छाया प्रदान करने वाला एक विशाल वट वृक्ष बन चुका है। जिन्होंने पुण्य किए हैं, वे ही उनकी इस कथा को पढ़ें। कर्महीन व्यक्ति बेशक न पढ़ें। पर यह जरूर है कि जो उनकी यह जीवन-गाथा पढ़ेगा, वह बढ़ेगा!

तो मैं आरंभ करना चाहता हूँ उनकी उन विद्याओं से, जिन्होंने उन्हें इतना महान बना दिया। उन स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों को उस समय बेशक भान न हो कि उनके यहाँ कोई भावी विभूति पढ़ रही है, परंतु अब उनकी गाथाओं को पढ़-पढ़कर वे जरूर गौरवान्वित हो रहे होंगे। समय अपने अंदर कुछ सच अवगुंठित रखता है और उन्हें धीरे-धीरे खोलता है। जब उसने सुश्री सन्तोष खन्ना की उपलब्धियों के सच खोले तो वे जगती के लिए सम्मोहक बन गए। जिन-जिन लोगों ने उनसे सान्निध्य पाया है, उन्हें देखकर अब उनके कर्मफल ही सामने आ रहे हैं। विश्वविद्यालय स्तर पर दिल्ली विश्वविद्यालय को यह सौभाग्य मिला कि उसे सुश्री सन्तोष खन्ना को हिंदी और अंग्रेजी दो विषयों में स्नातकोत्तर उपाधि तथा एल.एल.बी. उपाधि से विभूषित करने का अवसर मिला। बाद में तो उस संस्था को भी गौरव मिला, जिन्होंने उन्हें संवैधानिक विधि में डिप्लोमा, संसदीय संस्थाओं और व्यवहारों में डिप्लोमा और प्रबंधन कोर्स के रूप में जीवन के नए सोपान दिए।

इस प्रकार सुश्री सन्तोष खन्ना हिंदी, अंग्रेजी, विधि और प्रबंधन में अपनी विशिष्ट योग्यताओं के साथ कर्म-क्षेत्र में उतरीं और प्रशासनिक, विधायी, न्यायिक एवं अध्यापन आदि विभिन्न क्षेत्रों में साहित्य एवं समाज सेवा के माध्यम से इन्होंने इन योग्यताओं को सिद्ध भी कर दिखाया। प्रारंभ में सात वर्ष तक इन्होंने आकाशवाणी, आल इंडिया रेडियो,

नई दिल्ली में कार्य किया और उसके बाद भारत की संसद के सदन लोकसभा में विभिन्न पदों पर 30 वर्षों के कार्य के बाद संसदीय अधिकारी के रूप में सेवानिवृत्त हुईं परंतु सेवा निवृत्ति इनकी काम से निवृत्ति नहीं थी। उसके बाद तो इन्होंने आसमान से तारे तोड़ लाने का व्रत धारण कर लिया। उसके बाद इन्होंने राष्ट्रीय महिला आयोग में एक वर्ष तक कंसल्टेंट और जिला उपभोक्ता फोरम, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली में पाँच वर्षों तक न्यायधीश के पद पर भी सेवाएँ दीं।

अध्यापन के क्षेत्र में इन्होंने भारतीय अनुवाद परिषद्, नई दिल्ली में एक वर्षीय स्नातकोत्तर वाक्सेतु पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों को स्थायी संकाय अध्यापक के रूप में 33 वर्षों के लंबे काल तक सेवाएँ दे रही हैं तथा कोरोना काल में भी ऑनलाइन माध्यम से अध्यापन कार्य किया। इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली में 18 से भी अधिक वर्षों तक काउन्सलर के रूप में कार्य किया और मानव अधिकार, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम और अधिकार, श्रमिक कानून, अनुवाद आदि विषयों का अध्यापन कार्य किया। इतना ही नहीं, ये इंटरनेशनल रोमा कल्चरल यूनिवर्सिटी एवं रिसर्च फाउंडेशन के सामाजिक कार्य में आठ वर्षों तक एक वर्षीय मानव अधिकार डिप्लोमा की प्रोफेसर के रूप में अध्यापन कर रहीं हैं। साथ ही इन्होंने दिल्ली सरकार की हिंदी अकादमी में अनुवाद पाठ्यक्रम की भी 3 वर्षों तक कक्षाएँ लीं और दिल्ली विश्वविद्यालय के कई महाविद्यालयों में भी लघु अवधि के अनुवाद कोर्सों में अध्यापन कार्य कर रही हैं।

हिंदी के प्रति इनकी विशेष लगन रही। वह लगन इतनी थी कि दिल्ली सरकार के जिला उपभोक्ता मंच की सदस्य (न्यायाधीश) रहते हुए इन्होंने अपने अनेक फैसले हिंदी में ही लिखे।

इस प्रकार सुश्री सन्तोष खन्ना विधि की एक जानी-मानी हस्ताक्षर हैं। इन्होंने भारतीय हिंदी साहित्य, अंग्रेजी एवं अमेरिकी साहित्य, अनुवाद विज्ञान एवं व्यवहार, अनूदित साहित्य, राजनीति विज्ञान, विधि विज्ञान विषयों महिला विषयों पर गंभीर चिंतन-मनन किया और उस चिंतन को समाजोपयोगी बनाने के लिए विपुल लेखन कार्य भी किया। विधि विषयों पर समय-समय पर हिंदी में अनगिनत संगोष्ठियों, सम्मेलनों का आयोजन किया और कोरोना काल में भी वेबिनारों का आयोजन किया। हाल ही में इन्होंने महिला सरोकार और अधिकार, भारत में चुनाव, हिंदी और चुनाव सुधार, हिंदी में विधि लेखन, युवा भारत और स्वामी विवेकानंद, महारानी लक्ष्मीबाई : वर्तमान राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य, सूचना का अधिकार, हिंदी हो स्वाभिमान की भाषा, कोरोना काल में प्रवासी श्रमिकों की समस्याएँ, लड़कियों के विवाह की आयु क्या हो, समान नागरिक संहिता : समय की मांग, विश्व गुरु भारत और हिंदी विषयों पर एक दिवसीय संगोष्ठियाँ आयोजित कीं।

इनके साहित्यिक ग्रंथों का प्रकाशन 32 वर्ष पहले 1991 में आरंभ हो गया था, जब "साक्षी" नाम से इनका पहला काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। 1998 में संत जोन नाम से नाट्यानुवाद प्रकाशित हुआ, जिसका राष्ट्रीय नृत्य विद्यालय द्वारा 2005 में दो बार मंचन भी हुआ। 1998 में 'भारत का संविधान : अनुचिंतन के नए क्षितिज' और 2002 में 'इक्कीसवीं सदी में मानवाधिकार : दशा और दिशा' संपादित ग्रंथ प्रकाशित हुए। 2003 में भावी कविता, 2004 में 'उपभोक्ता संरक्षण कानून और न्याय' तथा 'पर्यावरण एवं पर्यावरण संरक्षण कानून' संपादित ग्रंथ प्रकाश में आए। 2005 में 'तुम कहो तो' मौलिक नाटक प्रकाशित हुआ। 2008 में अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार पर अनुवाद के नए परिपेक्ष्य पुस्तक का प्रकाशन देखने को मिला। 2008 में 'इक्कीसवीं शती में नारी : कानून और सरोकार', 2011 में 'भारत की संसद और सामाजिक सरोकार' पुस्तक सामने आई। 2012 में उपभोक्ता सरोकारों से संबंधित 'नानक के जूते' एकांकी नाटक प्रकाश में आया, जो भारत सरकार की बाल भारती पत्रिका में प्रकाशित हुआ।

वर्ष 2013 में 'रोशनी' नाम से एक मौलिक उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसका लोकार्पण संसद भवन के केंद्रीय कक्ष में राष्ट्रभाषा हिन्दी उत्सव के अवसर पर दिल्ली की तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित ने किया। इस उपन्यास पर पंजाब के केंद्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा में शोधकार्य भी हुआ। 2016 में 'हिंदी और भारतीय साहित्य

में महिला सरोकार' पुस्तक की रचना हुई। 2017 में समय का सच काव्य-संग्रह आया जिसका लोकार्पण 2018 में हुआ। इसी काव्य संग्रह पर भी पंजाब के केंद्रीय विश्वविद्यालय में वधु शोध प्रबंध लिखा जा चुका है। 'भारत में चुनाव, हिंदी की भूमिका और चुनाव सुधार' पुस्तक प्रकाशित हुई।

सन् 2018 में इनका अनुवाद पर आधारित एक अनूठे विषय पर नाटक 'सेतु के आर पार' प्रकाशित हुआ। ऐसे विषय पर रचित यह नाटक अपनी किस्म का प्रथम एवं शक्तिशाली नाटक है। इसके साथ ही इसमें इतिहास, राजनीति, धर्म, न्याय व्यवस्था, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, भारत विभाजन की त्रासदी का दंश, शिक्षा व्यवस्था तथा अन्यो विषयों की झाँकियों की भरमार है। इसमें हास्य रस सरल, सरस भाषा में स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित होता नजर आता है। वीर रस का भी समावेश हुआ है। इस नाटक की अभी तक कई समीक्षाएँ लिखी जा चुकी हैं, जिनमें डॉ. पूरन चंद्र टंडन, डॉ. सुरेश सिंहल, डॉ. प्रवेश सक्सेना, श्री रमेश चन्द्र, श्री प्रदीप अग्रवाल 'प्रदीप्त', डॉ. रिचा शर्मा, डॉ. साधना गुप्ता की समीक्षाएँ प्रमुख हैं और सभी का एक ही मत है कि यह नाटक अन्य नाटकों की श्रेणी में मील का पत्थर है और इसे मंचित भी किया जा सकता है। ये समीक्षाएँ 'अनुवाद', 'भाषा', 'विधि भारती', 'गर्भनाल', राजस्थान की दो पत्रिकाओं तथा राष्ट्रीय सहारा आदि में प्रकाशित हुईं। उल्लेखनीय यह है कि इस नाटक का लोकार्पण रूस की राजधानी मास्को में दिनांक 1 से 8 जून, 2018 तक आयोजित 15वें अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन के अवसर पर और दिनांक 16 नवंबर, 2018 को संसद भवन के केंद्रीय कक्ष में हुआ।

सन् 2020 में इनकी 'भारत का संविधानः वर्तमान परिप्रेक्ष्य' पुस्तक प्रकाशित हुई। 2021 में 'फुंगियों पर धूप' और वर्ल्ड रिकॉर्ड्स, यू.के. द्वारा मान्यता प्रदत्त अंतरराष्ट्रीय काव्य संग्रह 'काव्य सलिला' का इंडिया नेटबुक्स द्वारा प्रकाशन हुआ। विधि भारती परिषद् की ओर से 23 जुलाई, 2022 को हिंदी भवन, नई दिल्ली में सम्मान समारोह एवं इस पुस्तक के लोकार्पण का भव्य समारोह आयोजित हुआ।

इसी वर्ष 'मुट्ठी में सूरज' काव्य-संग्रह का प्रकाशन हुआ। इनकी 'भावी कविता' काव्य-संग्रह का नेपाली भाषा में अनुवाद भी हुआ। उसी वर्ष आज का दुर्वासा कहानी-संग्रह आया, जिसका लोकार्पण साहित्य अकादमी, भारत के कार्यालय रवींद्र भवन में हुआ। साथ ही इस पर गोष्ठी भी हुई। इस कहानी-संग्रह का लोकार्पण भारत सरकार में मंत्री और बाद में उत्तराखंड के मुख्यमंत्री रहे श्री हरीश रावत, प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. महीप सिंह, भारत सरकार की पूर्व विधि मंत्री डॉ. सरोजिनी महिषी द्वारा किया गया। राजधानी के प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने विचारगोष्ठी में भाग लिया तथा इसमें राजपाल एंड सन्स से पद्मश्री सम्मान से अलंकृत श्री दीनानाथ मल्होत्रा जी और विश्वनाथ जी भी उपस्थित थे, जो आर्य समाज के शहीद राजपाल जी के सुपुत्र हैं। 2021 में इंडिया नेटबुक्स द्वारा इनकी एक अन्य पुस्तक 'समालोचना के स्वर' का प्रकाशन हुआ।

इनकी पुस्तक 'भारतीय क़ानूनों का समाजशास्त्र' का प्रकाशन हुआ, जिसे भारत सरकार के विधि मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत भी किया गया। वर्ष 2006 में भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम और उपभोक्ताओं के अधिकार' पुस्तक प्रकाशित की, जिसके तीन संस्करण आए।

फिर इतिहास बनता समय (सामाजिक विधिक निबंध), सामाजिक विधिक सरोकारों की संस्कृति, और 'भारत का संविधान, संस्कृति और क़ानून पुस्तकें सामने आईं। 'भारत का संविधान,' 'संस्कृति और कानून' पुस्तक का विद्वानों ने ऑनलाइन लोकार्पण किया। इनके अतिरिक्त 'सूचना का अधिकार अधिनियम : कार्यान्वयन और चुनौतियाँ' पुस्तकें भी प्रकाशित हुई।

केवल हिंदी में ही नहीं, इन्होंने अंग्रेजी में Human Rights Today', 'The Reappirsail of the Constitution', तथा The Consumer ProtectionActAnd The Rights of The Consumers', तथा The EnvironmentAnd The Environment Law तथा 'The Flight for The Skylark: पुस्तकें का संपादन और प्रकाशन किया। इस प्रकार, श्रीमती सन्तोष खन्ना 40 समाजोपयोगी पुस्तकों की रचयिता बन गईं। इन साहित्यिक कृतियों के अलावा इनकी अनेक पुस्तकों में आलेख, कविताएँ एवं प्राक्कथन और भूमिकाएँ भी छपीं। इन्होंने अनेक साहित्यिक पुस्तकों, कविताओं, कहानियों, उपन्यासों तथा अन्य विषयों की पुस्तकों की समीक्षाएँ भी कीं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। प्रकाशित पुस्तकों तथा अन्य साहित्य का विपुल अनुवाद भी सम्पन्न हुआ। पत्र-पत्रिकाओं एवं समय-समय पर निकलने वाले कुछ संयुक्त काव्य संग्रहों में कविताएँ भी प्रकाशित हुईं, जिनमें साहित्यपीडिया भी एक है। इन्होंने कई काव्य संगोष्ठियों का आयोजन भी किया और अनेक काव्य संगोष्ठियों सम्मेलनों में कविता-पाठ करने के अतिरिक्त रेडियो पर भी कविता पाठ किया।

अब साहित्यिक और संस्थागत क्षेत्र में इनके पेशेवर दृष्टिकोण की बात करते हैं। जन मानस को अपनी योग्यताओं और क्षमताओं का लाभ पहुँचाने के लिए इन्होंने 1993 में विधि भारती परिषद् नामक संस्था की संस्थापना की तभी से ये उसकी महासचिव हैं। वर्ष 1994 में परिषद् के तत्वावधान में 'महिला विधि भारती' नाम से हिंदी की त्रैमासिक विधि पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया और तभी से उसकी प्रधान संपादक भी हैं। तीसवें वर्ष में पदार्पण के साथ इस पत्रिका का अब 117वाँ अंक प्रकाशित है। पत्रिका ने बहुत लंबा सफर तय कर लिया है। इस दौरान इसे अनेक गणमान्य व्यक्तियों का सहयोग मिला। इसी दौरान पत्रिका ने भारतीय संविधान विशेषांक (250 पृष्ठ), मानव अधिकार विशेषांक (425 पृष्ठ), महिला सशक्तीकरण विशेषांक (150 पृष्ठ), पर्यावरण संरक्षण विशेषांक (250 पृष्ठ), उपभोक्ता अधिकार कानून विशेषांक (320), सूचना प्रौद्योगिकी विशेषांक (150 पृष्ठ), सूचना का अधिकार विशेषांक (125), संसदीय विशेषांक, शिक्षा कानून विशेषांक, हीरक जयंती विशेषांक, डॉ. सरोजनी महिषी विशेषांक, महिलाओं के सरोकार और अधिकार विशेषांक, हिंदी और चुनाव सुधार विशेषांक आदि अनेक विशेषांक निकाले, जिनमें इन्होंने राजभाषा के माध्यम से महिलाओं के सरोकारों और अधिकारों से संबंधित विपुल साहित्य प्रकाशित किया। विधि भारती परिषद् संस्था का कार्य इन्होंने पत्रिका के प्रकाशन तक ही सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि विधि और न्याय क्षेत्र में कार्य कर रही विभूतियों को सम्मानित करने के लिए 2001 में भारत में पहली बार 'राष्ट्रीय विधि भारती' सम्मान की स्थापना कर विधि और न्याय क्षेत्र की अनेक विभूतियों को इस सम्मान से विभूषित किया, जिनमें न्यायमूर्ति एच.आर.खन्ना, पूर्व न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय प्रो. लोतिका सरकार, दिल्ली विश्वविद्यालय न्यायमूर्ति एम.एन. वैंकपचलैया, भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीशय डॉ. वी.एस. रमादेवी, पूर्व राज्यपाल, कर्नाटक श्री एच.डी. शौरी, कॉमन काज़ के अध्यक्ष न्यायमूर्ति, पी.एन. भगवती, पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति लीला सेठ, हिमाचल प्रदेश की पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी.पी, जीवन रेड्डी, उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, प्रो. एस.के. वर्मा, विधि संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रो. डॉ. स्वामीनाथन, हरित क्रांति के जन सुश्री अनुराधा मोहित, निदेशक, राष्ट्रीय दृष्टिबाधित संस्थान, देहरादून श्री ब्रज

किशोर शर्मा, विधिविद् श्री अरविन्द जैन, उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता, डॉ. सुभाष कश्यप, लोक सभा के पूर्व महासचिव और जाने-माने संविधान विशेषज्ञ डॉ. देव दत्त शर्मा, विधि विशेषज्ञ इत्यादि शामिल हैं। इन्होंने विधि भारती परिषद् के अनेक सेमीनारों/सम्मेलनों/संगोष्ठियों का आयोजन/संचालन/प्रबंधन आदि भी सम्पन्न किया।

इन कार्यों के अतिरिक्त हिंदी में विधि लेखन पुस्तकों को बढ़ावा देने के लिए इन्होंने 2005 में हिंदी में लिखी विधि की पुस्तकों पर पुरस्कार देने की योजना भी शुरू की, जिसके अंतर्गत भी इन्होंने अनेक लेखकों को पुरस्कार दिए, जिनमें डॉ. प्रेम लता (उपभोक्ता अधिकारों के लिए), श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल (विधिक अनुवाद के लिए), डॉ. ममता चतुर्वेदी (बीमा विधि के लिए), डॉ. कला मुनेत (राजस्थान भूमि विधि के लिए), सुश्री सुधा अवस्थी, प्रयागराज (जनहित याचिकाओं के लिए), सुश्री नम्रता शुक्ल (महिला अधिकारों के लिए) के नाम शामिल हैं।

इतना ही नहीं, वर्ष 2008 में इन्होंने राष्ट्र भारती सम्मान की स्थापना भी की और उसके अंतर्गत भी देश के कई प्रतिष्ठित साहित्यकारों तथा अन्य विभूतियों को सम्मानित किया। इस प्रकार इनका कार्य निष्काम भाव से प्रकृति की भाँति देते ही चले जाना है।

कई वर्षों से ये भारतीय अनुवाद परिषद् की उपाध्यक्ष भी हैं। इससे पूर्व ये कई वर्षों तक परिषद् की अवर सचिव और कार्यकारिणी की सदस्य रहीं। भारतीय अनुवाद परिषद् की हिंदी पत्रिका 'अनुवाद' की कई वर्षों तक उप-संपादक, सह-संपादक रहीं और अब कई वर्षों से संपादक मंडल की सदस्य हैं। इस परिषद् द्वारा वर्ष 1979 में आरम्भ किए गए 'अनुवादक से संवाद' मासिक कार्यक्रम की 2010 तक संयोजक भी रहीं। इसी परिषद् द्वारा 1979 में आरम्भ किए गए एक वर्षीय पी.जी. वाक्सेतु अनुवाद डिप्लोमा पाठ्यक्रम की सह संस्थापक रहीं और तभी से इस कोर्स की संकाय सदस्य हैं। यह परिषद् अनुवाद पर हर वर्ष कार्यशाला आयोजित करती है, जिसके आयोजन में भी ये सक्रिय रूप से सहभागी रहती हैं। वर्ष 1964 से भारतीय अनुवाद परिषद् की सभी गतिविधियों, यथा गोष्ठियों एवं कार्यक्रमों के आयोजन, स्मारिकाओं/पुस्तकों के संपादन इनकी भागीदारी रही।

फिर 1998 में एक अन्य संस्था भारत एशियाई साहित्य अकादमी की भी स्थापना कर उसकी सह-संस्थापक एवं संस्थापक/निदेशक रहीं। तभी से ये अकादमी की हिंदी पत्रिका 'भारत एशियाई साहित्य' की सह-संस्थापक और संपादक/सह-संपादक हैं। 1998 से ही ये इसी अकादमी की अंग्रेजी पत्रिका Indo-Asian Literature की संस्थापक संपादक/सह-संपादक हैं। इनकी इस अकादमी की सभी प्रकार की गतिविधियों, यथा राष्ट्रीय सेमिनारों/सम्मेलनों आदि के संचालन, उनकी अध्यक्षता, आलेख वाचन आदि में सहभागिता रहती है।

इसके अतिरिक्त ये पिछले तीन वर्षों से गोरक्ष शक्तिधाम, इंदौर की 'अध्यात्म संदेश' नामक हिंदी की ई-पत्रिका की वरिष्ठ संपादक हैं और वर्तमान में इसकी दिल्ली प्रदेश की अध्यक्ष भी हैं।

इतना ही नहीं, इन्होंने कुछ अन्य संस्थाओं के अनुरोध पर भी उनके सेमिनारों आदि का संयोजकत्व, प्रबंधन, संचालन आदि किया तथा कई राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के सेमिनारों की अध्यक्षता और उनमें आलेख प्रस्तुति की। भोपाल के बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय और जागरण विश्वविद्यालयों में सत्रों की अध्यक्षता की तथा आलेख वाचन किया।

इनकी एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि यह भी रही है कि

ये हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में भारत की संसद के केंद्रीय कक्ष में 16 वर्षों से संगोष्ठियों/राष्ट्रभाषा गौरव सम्मानों का आयोजन कर रही हैं।

जहाँ तक मीडिया का संबंध है, इन्होंने रेडियो एवं टेलीविजन में कई भेंटवार्ताएँ एवं साक्षात्कार दिए टेलीविजन के कार्यक्रमों में भागीदारी की और रविंद्रनाथ टैगोर के एक फुल लेंथ नाटक में प्रमुख अभिनेत्री की भूमिका भी अदा की। विट्ठलभाई पटेल हाउस, कांस्टीट्यूशन क्लब के मावलंकर हॉल में नाटक की दो प्रस्तुतियाँ कीं। हिंदी के हिंदुस्तान समाचार-पत्र में लम्बे समय तक लेखन कार्य भी किया।

सुश्री सन्तोष खन्ना एक विश्व यायावर भी हैं। इन्होंने आस्ट्रेलिया, चीन, मिस्र, रूस, एथेंस, म्यांमार, मॉरीशस आदि कई देशों की साहित्यिक यात्राएँ भी कीं।

इनकी इन विशिष्ट एवं असाधारण उपलब्धियों के फल के रूप में देश ने इन पर अनेक पुरस्कारों और सम्मानों की बौछार की है। 1973 में इन्हें भारतीय अनुवाद परिषद् का दीर्घ सेवा सम्मान प्रदान किया गया। 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक पत्रिका के श्रेष्ठ संपादन के लिए इन्हें दिल्ली सरकार की हिंदी अकादमी ने भी 1995-1996 और 1998-99 में दो बार पुरस्कार प्रदान किया। 2002 में राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद ने 'काव्य-सुरभि सम्मान' से और 2003 में भारत सरकार के विधि मंत्रालय ने 'भारतीय कानूनों का समाजशास्त्र' पुस्तक पर पुरस्कार से विभूषित किया, फिर 2004 में राष्ट्रीय लोकमंच, भारत ने 'आचार्य नरेन्द्र देव अलंकार' से अलंकृत किया। 2007 में इन्हें अदबी संगम, हरियाणा ने उदंत मार्तंड सम्मान दिया। 2007 में भारतीय कृषि पत्राचार संघ ने लाल बहादुर शास्त्री नेता अवॉर्ड प्रदान किया। 2007 में ही राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद ने भारत शिरोमणि गौरव सम्मान दिया। 2008 में संसदीय हिंदी परिषद् नई दिल्ली ने राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान से विभूषित किया। 2010 में भारत एशियाई साहित्य अकादमी ने इन्हें 'साहित्य-सृजन सम्मान' दिया और 2015 में रिसर्च फाउंडेशन (इंटरनेशनल) ने अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर सम्मानित किया। 2016 में मिस्र की सृजन गाथा डॉट कॉम ने लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड दिया। उसी वर्ष मिस्र से उन्हें गुरु घासीराम सम्मान भी मिला और परिचय परिषद् ने साहित्य सृजन सम्मान दिया। फिर 2016 में गायत्री साहित्य संस्थान ने साहित्य शिरोमणि सम्मान से अलंकृत किया। उसी वर्ष भारत एशियाई साहित्य अकादमी ने इन्हें अपनी फैलोशिप भी प्रदान की। 2018 में इन्हें रूस की नोबल पुरस्कार से सम्मानित लेखिका स्वेटलेना के नाम पर रूस में स्वेटलेना सम्मान दिया गया।

2018 में ही विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, उज्जैन ने इन्हें विद्या वाचस्पति सम्मान से विभूषित किया। 2019 में इन्हें सलेक चंद जैन स्मृति पुरस्कार मिला तथा फिर उसी वर्ष एथेंस की धरती से सुकरात सम्मान मिला। 2019 में इन्हें दो अन्य सम्मानों से विभूषित किया गया अखिल भारतीय साहित्य परिषद् का साहित्य वाचस्पति सम्मान और विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, उज्जैन का विद्या सागर सम्मान। 2020 में इन्हें म्यांमार में भी कई सम्मान मिले। 2021 में इन्हें गोल्डन बुक ऑफ रिकॉर्ड्स सम्मान प्रदान किया गया। इनके अतिरिक्त इंटरनेशनल हूमेन राइट्स आर्गेनाइजेशन, नई दिल्ली मोती लाल नेहरू विधि महाविद्यालय, खंडवा; स्पोर्ट्स अकादमी एसोसिएशन आफ इंडिया, नई दिल्ली, सेज विश्वविद्यालय, इंदौर ने भी समय-समय पर सम्मानित किया।

2021 में इन्हें गोरक्ष सेवार्थ फाउंडेशन, इन्दौर, मध्य प्रदेश द्वारा पुनः रामधारी सिंह दिनकर सम्मान दिया गया। 2021 में ही इन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के विधि भूषण पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 2023 में इन्हें मॉरीशस से सहोदरी रत्न सम्मान तथा भव्य फाउंडेशन, जयपुर द्वारा हिंदी शिरोमणि सम्मान दिया गया। इनके अतिरिक्त श्री मौन तीर्थ पीठ, उज्जैन ने इन्हें विद्या वारिधि सम्मान से विभूषित किया। कतर देश के दोहा शहर से प्रकाशित नवचेतना पत्रिका से कविता में द्वितीय पुरस्कार तथा गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फाउंडेशन इन्दौर से कविता में तृतीय पुरस्कार मिला। अन्य कई राष्ट्रीय संस्थाओं से और भी सम्मान मिले। इन्हें, हार्वर्ड बुक ऑफ रिकॉर्ड्स और किंग्स बुक ऑफ रिकॉर्ड्स से भी सम्मानित किया जा चुका है।

इस तरह देश को श्रीमती सन्तोष खन्ना का योगदान इतना अधिक है कि उसका कहीं अंत ही नहीं दिखाई देता और उसके कुछ अंश के वर्णन मात्र में ही मुझे कई दिन लग गए। ऐसा लगता है, ये रोबर्ट फ्रास्ट की इस उक्ति को सिद्ध करने में लगी हैं–

The woods are lovely, dark and deep,
But i have promises to keep
And miles to go before i sleep,
And miles to before i sleep!

पढ़ते ही जाइए, पढ़ते ही जाइए। इनके कार्यों और इनकी उपलब्धियों का विस्तार अनंत है। हरि अनंत, हरि कथा अनंता! फिर मैं इनकी गाथाओं का सम्पूर्ण वर्णन कैसे कर सकता हूँ। माया ही कुछ ऐसी है कि जितना लिखता जाता हूँ इनकी कथा उतनी ही बढ़ती जा रही है। इनके कृत्यों का आरंभ सरस्वती जी ने स्वयं कराया और उसका वर्णन मुझ पर छोड़ दिया।

भला मैं कैसे इस चुनौती को संभाल सकता हूँ? फिर भी, हे देवी सरस्वती! तुमने मुझमें जो और जैसी सामर्थ्य दी, उसके अनुसार मैंने अपने काम से सदा असंतुष्ट रहने वाली सन्तोष खन्ना जी की महानता का वर्णन तो कर दिया, परंतु मुझे डर है कि इसमें मुझसे कोई कमी तो नहीं रह गई और मैं उनकी पुत्री की महानता को सही अर्घ्य न दे पाने पर उनके कोप का भाजन तो नहीं बन जाऊँगा।

इसलिए मैं सन्तोष खन्ना जी से ही प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी माँ सरस्वती जी से मेरे दोषों को क्षमा करा दें और मुझे भी अपने जैसा बनवा दें! सरस्वती जी तक पहुँच बनाने के लिए मैं उन्हें सबसे अच्छा माध्यम समझता हूँ, क्योंकि तुलसीदास जी ने कहा है कि बरसते बादलों की बूँद पकड़ कर कोई आसमान नहीं चढ़ सकता, किसी के आशीर्वादों से जरूर आकाश कुसुम बन सकता है।

जग में बड़ा सन्तोष तेरे नाम से न कोई, साहित्य से चूँकि बड़ा है काम नहीं कोई।

देश का हर आदमी है तेरा ही ऋणदार, कौन है, एहसान से तेरे उबर पाए आदमी तो पूजता देवों-अदेवों को, देवों ने भी सरस्वती को पूज्य बनाया है।

राम ने की स्वयं पूजा वृद्ध जटायु की, श्रवण के आगे दशरथ ने शीश झुकाया है।

हनुमान को रामचन्द्र ने पूज्य ही माना, कपियों के भी मित्र भाव का मोल चुकाया है।

नेता या विद्वान कोई या महामहिम इन्सान, साहित्य का सेवन समझते सबसे अच्छा काम।

सन्तोष! तुम महा तोष हो, हो देश की खेवक, भगवान भी लांघे नदी पाकर कोई केवट।

तू ही है मार्गदर्शक इस महाकाल में। बस आसरा तेरा बचा इस विकट काल में।

करता रहेगा देश सदा आरती तेरी, ऋणी सदा रहेगी जनता देश की मेरी।

कि तू उसे वरदान से कर महान अपना-सा, उसकी इच्छा रह न जाए कोई सपना-सा।

कोई सके न भूल तुझे, सब तेरे आसरे। वे पुण्य के भागी जो सान्निध्य में तेरे।

अब प्रारंभ की दो पंक्तियों को भी पूरा कर देते हैं
तो भाई सुन चुके कथा तुम महिला एक महान की।
इस नारी को तिलक करो, यह पात्र बड़े सम्मान की।
वंदे मातरम्, वंदे मातरम्, वंदे मातरम्, वंदे मातरम्!

देश की आन और बान को ज्यादा समझा अपनी शान से, उसे गर्व से, बड़े प्रेम से, याद रखें अभिमान से।

अति विभूषित, यह विभूति होगी हिंदुस्तान की।
वंदे मातरम्, वंदे मातरम्, वंदे मातरम्, वंदे मातरम्!
जिसने कोई रोध न देखा, रोध को जो अवरोध बनी,

अविरल मेहनत के बल पर ही जो खुद में एक शोध बनी।

उस नारी को क्यों न पूजें जो मूरत भगवान की
वंदे मातरम्, वंदे मातरम्, वंदे मातरम्, वंदे मातरम्!
तुम चाहे जिस ओर भी देखो, वे ही दिखती जाएँगी।
नया ज्ञान और नई विद्या ही देती दिखती जाएँगी।
देश के कण-कण में छाई, छाया है भगवान की।

समसामयिक समस्याओं के समाधान तलाशता इतिहास बनता समय विधिक विषयों पर सारगर्भित पुस्तक

डॉ. देव दत्त शर्मा

अनेक सम्मानों से सम्मानित, पुरस्कारों से पुरस्कृत, अनेक पुस्तकों की लेखक एवं संपादक, भावपरक नाटकों की रचयिता, संस्कार जगाती अनेक कविताओं और कविता संग्रहों और कहानी संग्रह के माध्यम से प्रबुद्ध समाज में अपने को प्रतिष्ठित कर चुकी श्रीमती सन्तोष खन्ना की महत्वपूर्ण पुस्तक 'इतिहास बनता समय' उनके रचना संसार की एक महत्वपूर्ण कृति है।

'इतिहास बनता समय' शीर्षक से रचित इस पुस्तक में विधि की शोध पत्रिका 'महिला विधि भारती' की संपादक के रूप में वर्ष 1994 से 2009 तक की डेढ़ दशक से अधिक अवधि में विदुषी सन्तोष खन्ना ने जो संपादकीय आलेख लिखे उन्हें सम्मिलित किया गया है। यह संपादकीय आलेख एक ओर तो तत्कालीन विधिक समस्याओं के गहन चिंतन की ओर ले चलते हैं तथा सार्थक समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं, दूसरी ओर उनके अध्ययन से यह सत्य भी उभर कर सामने आता है कि दिए गए समाधानों पर ध्यान न दिए जाने के कारण उस समय की समस्याएँ अब भी वैसे ही मुँह बाएँ खड़ी हैं।

इस संदर्भ में विदुषी लेखिका ने लिखा है कि 20वीं शती के दसवें दशक के बड़े बैंक घोटालो के संबंध में तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा था कि यह बैंक घोटाला व्यवस्था की असफलता का परिणाम है। आज के संदर्भ में 21वीं शती के सबसे बड़े दो घोटाले के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय का ऐतिहासिक निर्णय आ गया है फिर भी तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह यही कहते रहे हैं कि गठबंधन व्यवस्था की कुछ मजबूरियाँ हैं और यह दो घोटाले भी व्यवस्था की असफलता का प्रतीक हैं। उनकी इन स्थापनाओं से बार-बार यही प्रश्न पैदा होता है कि आखिर क्या कभी कोई व्यक्ति अथवा सरकार व्यवस्था की असफलता की ज़िम्मेदारी भी लेगी?

लेखिका की विधि विषयों पर लिखित भारत सरकार के विधि मंत्रालय से पुरस्कृत एक अन्य पुस्तक 'भारतीय कानून का समाजशास्त्र' की विशेष ज्ञाता सन्तोष खन्ना का यह मानना सही है कि भारत की स्वाधीनता के लगभग पांच दशक की अवधि के बाद भी जो परिदृश्य उभर कर सामने आता है वह वस्तुतः सुखद नहीं है हम कहाँ गलत हुए या सही चलकर भी अपने अभीष्ट लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके यह विचारणीय है।

एक ओर जहाँ हम गरीबी, बेरोजगारी और शिक्षा के गढ़ तोड़ने में असफल रहे हैं वहीं दूसरी ओर हमने अपनी समस्याओं को सुलझाने के उपक्रम में जाने अनजाने ऐसी भाव भूमि तैयार की है जिसने हमें परस्पर जोड़ा कम है तोड़ा अधिक है। न्याय, समता, पर दुख करता जैसे मानव मूल्यों की हमारी परिकल्पनाएँ धूल धूसरित हो उठी हैं। हम घोर अवस्थाओं में जीने को बाध्य हैं। देश का प्रत्येक नागरिक स्वयं को छला गया महसूस कर रहा है।

अपनी रचना के प्रेरणा पुंज अपने पति स्वर्गीय श्री नरेंद्र देव खन्ना जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए उन्होंने प्रकृति धर्म को समझते हुए लिखा है कि नश्वरता प्रकृति का धर्म है और काल प्रवाह की एक अमोघ प्रक्रिया। बेशक वे नश्वर शरीर त्याग गये हैं परंतु उनके होने का अहसास सदा बना रहता है।

उस समय की स्थितियों और परिस्थितियों पर टिप्पणी करते हुए सुपरिचित लेखिका का कथन है कि यह सही है कि आज आम आदमी का व्यवस्था से मोह भंग हो चुका है। क्या उसके लिए वर्तमान शिक्षा प्रणाली जिम्मेदार है या उस शिक्षा प्रणाली को चलाने वाले हमारे कर्णधार जीवन के हर क्षेत्र में कैंसर-सा फैलता भ्रष्टाचार क्या व्यवस्था दोष का कारण है? जब तक राजनीति के क्षितिज पर भ्रष्ट, तिकड़मी और अपराधी तत्वों का वर्चस्व कायम रहेगा, बेहतर से

बेहतर शासन प्रणाली का प्रकाश इस अभेद्य जंगल को पार कर आम आदमी तक नहीं पहुँच पाएगा क्योंकि व्यक्तिवादी स्वार्थ के कारण हम समस्याओं का दीर्घगामी समाधान नहीं खोज पाते।

आज देश का वातावरण नित-नित नए उद्घाटित होने वाले घोटालों की दुर्गंध में सड़ रहा है और हमारा दम घुट रहा है। हम असहाय और असंपृक्त हो मूकदर्शक बने हुए इस दुर्गंध को सह रहे हैं। हमारे कर्णधारों ने लोकतंत्र को लूट तंत्र बनाकर रख दिया है। ऐसा लग रहा है हमारी सभ्यता

और संस्कृति, हमारी यह पुण्य धरा किसी धर्म प्रधान पुण्य देश की नहीं रही, बल्कि यहाँ भ्रष्टाचार ही हमारा धर्म है, ईमान है और भगवान है।

क्या हम देश की अधिकांश जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिला सके हैं? राजनीतिक अधिकार के नाम पर देश की जनता को मतदान का अधिकार अवश्य मिल गया किंतु इस अधिकार के नाते जनता का इस्तेमाल अधिक किया गया।

उनके सरोकारों से कम सरोकार रखा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि देश में एक नव राजशाही की अपावन संस्कृति पनपी जिसे बनाए रखने के लिए नव राजाओं ने आदर्शों एवं जीवन मूल्यों को तिलांजलि दे भ्रष्ट व्यवस्था को ही पुख्ता बनाया।

संविधान की उद्देशिका में 'समाजवाद' शब्द का समावेश किया गया है किंतु जिन्होंने इस शब्द को वहाँ सजाया था उन्होंने इस शब्द को पैरों तले रौंद कर रातों-रात उदारीकरण और बाजारीकरण वाली शक्तियों को गले लगा लिया है। क्या इस आर्थिक परिवर्तन के लिए ही संविधान का संशोधन किया गया था?

'इतिहास बनता समय' पुस्तक में राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरे व आतंकवाद पर सचेत करते हुए पुरुलिया में हथियार गिराने की घटना और देश की सुरक्षा का प्रश्न, कारगिल युद्ध और पाकिस्तान, भारत में नक्सली हिंसा और उसका दुष्प्रभाव, भारत की संसद पर आतंकवादी हमला, देश का विभाजन और जिन्ना, आतंकवाद और अफज़ल को मृत्युदंड का प्रश्न, भारत-अमेरिका परमाणु करार, क्या है हाइड कानून भारत में नक्सलवादः एक विहंगम दृष्टि, भारत-चीन संबंधी शीर्षकों पर लिखे गए सभी आलेख पठनीय हैं और कर्णधारों से मांग कर रहे हैं कि आतंकवाद से निपटने के लिए कठोर कानून बनाने की आवश्यकता है।

इस पुस्तक में बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रश्न व 'बाल श्रमिकों की नियति', नामक दो आलेखों में देश में बालकों की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा गया है कि जिस देश में बच्चों की जनसंख्या का छठा भाग कारखाने, खदानों में लगा है, चूड़ी व शीशे, दरियों गलीचों, बीड़ी और पटाखे जैसे ख़तरनाक काम करने के लिए अभिशप्त हैं उस देश को लोकतांत्रिक कहने में हमें जरा भी संकोच क्यों नहीं होता? भारत के संविधान में 6 वर्ष से 14 वर्ष के बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग पाँच दशक के पश्चात हम इस लक्ष्य के समीप भी नहीं पहुँचे हैं।

क्या ऐसी भी कोई पंचवर्षीय योजना बनेगी जिसमें शिक्षा को प्राथमिकता दी जाएगी ताकि भारत के कर्णधार

आज के हमारे सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से निःशुल्क शिक्षा दी जा सके।

इसी पुस्तक में सम्मिलित आलेख श्रेलियों का तिलिस्म 'महिला सशक्तिकरण', मानव मूल्यों के अवमूल्यन के कारण घटित त्रासदियों और जनसंख्या वृद्धि, 'राजनीति का अपराधीकरण', भारत का परमाणु परीक्षण एवं विश्व शक्ति, लोकतंत्र में द्विदलीय प्रणाली का महत्व जैसे महत्वपूर्ण विषयों का विश्लेषण करते हुए इनमें यह भी संदेश दिया गया है कि राजनीति से अपराधी तत्वों को तत्काल हटाया जाना चाहिए। अन्य अनेक आलेख यथा विधि व्यवस्था का यथार्थ, संसदीय सदनों में हंगामे से राष्ट्रीय समय और धन की क्षति, संसद के सदनों में उपस्थिति का प्रश्न, हमारे सांसद के अध्ययन से आप तात्कालिक समस्याओं की नब्ज़ टटोल सकते हैं।

चाहे वे समस्याएँ देश में कानूनों के निष्प्रभावी क्रियान्वयन की हो अथवा संसद की निष्प्रभावी भूमिका की हों। आप देखेंगे कि ये समस्याएँ समसामयिक रुप से भी बनी हुई हैं। एक अन्य आलेख जैसा कि देश कि राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद भूमि क्षेत्र के उत्खनन का मामला नामक आलेख में विदुषी लेखिका ने तब लिखा था कि भारत के प्रबुद्ध वर्ग को समझना चाहिए कि देश की एकता और प्रगति में परस्पर विश्वास का माहौल बनाना बहुत जरूरी है, इस प्रकार की उनकी सोच आज के संदर्भ में भी उतनी ही संगत है जितनी उस समय जिस काल खंड में यह आलेख लिखा गया था।

एक और आलेख 'शिक्षा, शांति और निशस्त्रीकरण का प्रश्न' में अति महत्वपूर्ण सत्य पर जोर दिया गया है तथा कहा गया है कि विकास के अभाव में शांति स्थापित नहीं हो सकती और शांति के अभाव में विकास नहीं हो सकता। मृत्यु दंड के औचित्य आलेख में इस प्रश्न को उठाया गया है कि यदि न्याय व्यवस्था में जघन्य अपराधियों को उनके अपराध का दंड या फाँसी का दंड नहीं मिलेगा तो लोगों का कानून और न्याय व्यवस्था में विश्वास समाप्त हो जाएगा।

वर्ष 2002 एवं 2003 में विधि भारती सम्मान और विधि भारती सम्मान संकल्पना और उद्देश्य में स्पष्ट किया गया है कि सम्मान के अंतर्गत निहित संकल्पना यह थी कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशेष रूप से विधि क्षेत्र में सर्वोत्तम मानव मूल्यों की स्थापना हो।

इस पुस्तक में सम्मिलित किए गए अन्य आलेख भारत के राष्ट्रीय गान में 'सिंध' शब्द और उच्चतम न्यायालय, आत्महत्याओं की व्याधि, आरक्षण और शिक्षा में संपूर्ण क्रांति का प्रश्न, क्या धर्मांतरण पर रोक जरूरी है, आरक्षण और धर्म की राजनीति, न्यायपालिका और सूचना का अधिकार, न्यायपालिका और महाभियोग, भारत-चीन संबंध, गणतंत्र की वर्षगांठ और आम आदमी जैसे विषयों को उठा कर, उनका सही संदर्भ में विश्लेषण कर सभी में अनुकरणीय दिशा दी गई है।

संक्षेप में, यह कहना उचित होगा कि 'इतिहास बनता समय' पुस्तक में सम्मिलित सभी 41 विषय समाज और राष्ट्र की वास्तविक स्थिति और परिस्थितियों का उल्लेख कर रहे हैं और देश की सभी प्रमुख समस्याओं का सार्थक समाधान भी प्रस्तुत कर रहे हैं। इस पुस्तक से यह सिद्ध हो जाता है इतिहास भी समय बनता है और समय भी इतिहास बनता है हम तो यही जानते हैं कि समय ही इतिहास बनता है। इन आलेखों का कालखंड 1994 से 2009 तक का है और उस कालखंड की कोई समस्या लेखिका की लेखनी से नहीं छूटी है।

इस पुस्तक की रचना के बाद अब तक लगभग डेढ़ दशक और बीत गया है और इस बीच देश के धरातल पर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक धरातल पर कई परिवर्तन आ चुके हैं और यह देखना रोचक होगा कि क्या लेखिका ने इस परिवर्तित कालखंड पर भी कुछ लिखा है वास्तव में लेखिका का लेखन निरंतर जारी है और उस बारे में उनकी बाद की पुस्तकों को पढ़कर ही टिप्पणी की जा सकती है।

फिलहाल यहाँ केवल उनकी पुस्तक 'इतिहास बनता समय' को ही समझने का प्रयास किया गया है।

कथाकार सन्तोष खन्ना : कहानी संग्रह 'आज का दुर्वासा'

डॉ. सुधेश

श्रीमती सन्तोष खन्ना को मैं एक कवयित्री, अनुवादविद्, अनुवाद साधिका और विधिवेत्ता के रूप में जानता था पर जब उनका कहानी संग्रह 'आज का दुर्वासा' मेरे सामने आया और मैंने उसे पढ़ा तो पता चला कि वह एक समर्थ कथाकार लेखिका भी हैं। 'विधि भारती' नाम की द्विभाषिक (हिंदी अंग्रेज़ी) शोध पत्रिका की संपादक के रूप में और विधि भारती परिषद् की संचालिका के रूप में भी वे विख्यात हैं। वर्षों से भारतीय अनुवाद परिषद् की प्रत्येक गतिविधि में उनके समर्पित अवदान के लिए भी उन्होंने अच्छा-खासा नाम कमाया है।

वास्तव में मेरा उनसे परिचय भारतीय अनुवाद परिषद् में ही हुआ था जब मुझे वहाँ जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के भाषा विभाग में प्रोफेसर के रूप में पहली बार 'अनुवादक से संवाद' नाम से भारतीय अनुवाद परिषद् के कार्यक्रम में आमंत्रित किया गया था और इस कार्यक्रम में मैंने अनुवाद विषय पर भाषण दिया था। श्रीमती सन्तोष खन्ना उस भाषण शृंखला की संयोजक और उस कार्यक्रम की संचालिका थीं।

उनके कहानी संग्रह 'आज का दुर्वासा' में सन्तोष खन्ना की 17 कहानियाँ संकलित हैं। इनमें से अधिकांश कहानियाँ सामाजिक सरोकार, सामाजिक विसंगतियां, सामाजिक अपराध, पुलिस की क्रूरता, निम्न और मध्य वर्ग के लोगों के जीवन संघर्ष, पारिवारिक त्रासदी, न्यायपालिका की विसंगतियाँ आदि से संबंधित हैं।

इन कहानियों में जहाँ विषयों की विविधता है वहीं विषय निरूपण और पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी कथाकार ने लेखकीय तटस्थता का परिचय दिया है। 'आज का दुर्वासा' कहानी-संग्रह की पहली कहानी है 'आज का दुर्वासा' जिसे इस संग्रह की एक प्रतिनिधि कहानी भी कहा जा सकता है। दुर्वासा ऋषि अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं। इस कहानी में दुर्वासा के मिथक को लेखिका ने नए ढंग से प्रस्तुत किया है। नरेन नाम का एक युवक आर्थिक बदहाली के कारण अपराधी बनने पर मजबूर हो जाता है और वह जेल पहुँच जाता है। वहाँ पुलिस की क्रूरता उसे पागल बना देती है। नरेन का अपराधी बनने का कारण मानव की मजबूरी बताया गया है। इस कहानी में पुलिस की दरिंदगी का भी सजीव चित्रण हुआ है। इस संग्रह की 'पंसेरी' एक मार्मिक कहानी है।

इसमें निम्न वर्ग की एक नारी रामो का संघर्ष दिखाया गया है। पेट पालने के लिए परिश्रम के साथ उसे अपनी इज्जत बचाने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। किसना और लाला की नीचता का यथार्थ चित्रण कहानी को मार्मिक बना देता है। रामो अपनी बेटी की इज्जत बचाने के लिए लाला की हत्या दुकान में रखी पंसेरी मार कर देती है। कहानी का अंत बड़ा नाटकीय है और कहानी का शीर्षक 'पंसेरी' भी बड़ा सार्थक है।

'गायत्री' शीर्षक की कहानी नारियों को जला कर मारने की अमानवीय क्रूर घटनाओं की क्रूरता को उजागर करती हैं। इसमें भी गायत्री का पति विभु अपनी पत्नी गायत्री को जलाकर मारने की कोशिश करता है जिसमें वह सफल हो जाता है।

जब पुलिस के सामने बयान देने की बात आती है तो पति-पत्नी पर दबाव बनाते हुए उसे कहता है कि पुलिस बयान में वह यह कहे कि स्टोव फटने से उसे आग लगी क्योंकि अगर वह सच बोलेगी तो विभू को जेल में रहना पड़ेगा और तब बच्चों की देखभाल कौन करेगा वह गायत्री को बच्चों की ममता के आधार पर ब्लैकमेल करना चाहता है। इस आधार पर लेखिका ने गायत्री के मानसिक द्वंद्व का जो चित्रण किया है वह वस्तुतः मनोवैज्ञानिक आधार लिए है। जलने से अंतहीन शारीरिक वेदना और पुलिस के सामने बयान के संबंध में मानसिक द्वंद्व का नरक झेलती गायत्री ने जो बयान दिया वह विभू के कहे अनुसार नहीं दिया,

बल्कि सच्चा बयान दिया जिससे विभु का दंडित होना निश्चित हो गया पर लेखिका ने कहानी का अंत खुला रखा है, जिससे उसके कहानी कौशल का पता चलता है। यह एक मनोवैज्ञानिक कहानी भी है जिसमें पीड़ित नारी का मनोविज्ञान खूब उबारा गया है। कानून और नियम व्यवस्था पर भी यह कहानी एक व्यंग्य है यहाँ पत्नी को जलाकर मारने के बाद भी पुरुष छूट जाना चाहता है इस कहानी का अंत खुला है जिसमें यह गुंजाइश है कि पत्नी का हत्यारा अंत में छूट भी जाता है अक्सर हत्यारे छूट ही जाते हैं।

'प्रायश्चित' कहानी न्यायपालिका के कटु सत्य को उजागर करती है। समीर नाम का जज अपनी पत्नी शीतल से कहता है हमारी न्यायपालिका में कई निर्दोष भी कष्ट सह रहे हैं जीवनभर मुकदमा लड़ने के बाद अंत में यदि वह निर्दोष सिद्ध होते हैं तो उनका जीवन तो बर्बाद हुआ ही ना (पृष्ठ 46)। इसी कहानी में समीर जज को रखालदास नामक एक सेठ अपने पुत्र को सज़ा से बचाने के लिए दस लाख रुपए की रिश्वत देने की कोशिश करता है किंतु जज अपनी पत्नी शीतल के विरोध के कारण रिश्वत की राशि वापस कर देता है पर पति-पत्नी के बीच एक दूरी आ जाती है। शीतल के मन मंदिर में स्थित पति परमेश्वर की मूर्ति खंडित हो जाती है।

यद्यपि समीर अंत में प्रायश्चित करता है पर शीतल मानसिक धरातल पर उससे दूर चली जाती है। शीतल की प्रतिक्रिया यहाँ कुछ अस्वाभाविक सी हो जाती है जब वह अपने बेटे तन्मय को पिता के साये से दूर रखने के लिए हॉस्टल में भेजने का निश्चय करती है और नए गर्भस्थ शिशु का गर्भपात द्वारा अंत कर देती है क्योंकि उसकी सोच यह है कि समीर ने यद्यपि रिश्वत की राशि उसके कहने पर लौटा दी परंतु उस राशि को आरंभ में स्वीकार करना उसके चरित्र का स्खलन है और वे अपने बेटे को ऐसे पिता के सान्निध्य में नहीं रखना चाहती और न ही ऐसे दुर्बल चरित्र वाले पति के बच्चे की पुनः माँ बनना चाहती है। वैसे जो रिश्वत जज समीर ने अंतत नहीं ली उसकी पत्नी उसके लिए भी उसे दंडित करती है।

शीतल और समीर दोनों आदर्शवादी पात्र हैं पर शीतल को अपने पति का आदर्शवाद खोखला लगता है जो रिश्वत की संभावना मात्र से धराशायी हो जाता है यह कहानी सुखांत है पर शीतल का अपने पति के प्रति व्यवहार अस्वाभाविक और गलत है। इसके बाद बावजूद 'प्रायश्चित' कहानी संग्रह की श्रेष्ठ कहानी है। न्याय व्यवस्था की पोल खोलने के साथ यह पति-पत्नी के नाजुक रिश्ते में आये ऐसे अप्रत्याशित तनावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी करती है।

'भवानी' शीर्षक कहानी दफ्तर में प्रचलित भ्रष्टाचार एवं अपराधिक गतिविधियों पर प्रहार करती है। भवानी के हाथों सरकारी कर्मचारी शर्मा की अचानक हत्या के आरोप में भवानी को जेल हो जाती है। शर्मा ने भवानी पर चाकू से वार किया था पर उसका वह खुद शिकार हो गया। निरापराधी भवानी जेल पहुँच गया। इसमें न्याय व्यवस्था की असंगति दिखाई गई है।

'दर्द का रिश्ता' भी एक मार्मिक कहानी है। इसमें बलात्कार की शिकार नारी का संघर्ष बखूबी दिखाया गया है। प्रेमिका से पत्नी बनी एक स्त्री बलात्कार के बाद पति द्वारा छोड़ दी जाती है पति यह नहीं देखता कि दोष पत्नी का नहीं, बलात्कार करने वाले का है। उसे सहानुभूति देने के बजाय वह उससे दूर चला जाता है ताकि समाज में उसकी झूठी प्रतिष्ठा बनी रहे। बलात्कार के परिणाम किस प्रकार परिवार को तोड़ने वाले होते हैं और किस प्रकार नारी के लिए ऐसी दुर्घटना उसके हँसते-खेलते जीवन को त्रासदी में परिवर्तित कर देती है, यह कहानी बड़ी मार्मिक बन पड़ी है।

'सवाब' कहानी में साम्प्रदायिक दंगों के दौरान एक मुस्लिम माँ एक हिंदू नौजवान को कुरान की झूठी शपथ उठा कर बचा लेती है। उसका पति बहुत पहले हुए दंगों में मारा गया था और उसका नौजवान बेटा अब हो रहे दंगों में हिस्सा लेने घर-बाहर गया है और उसकी बूढ़ी माँ उसका इंतजार करती उसकी सुरक्षा के लिए चिंतित बार-बार द्वार खोल कर देख रही है तभी एक हिंदू नौजवान दौड़ता हुआ उसके घर में घुस वहाँ छिपने की कोशिश करता है क्योंकि बहुत सारे दंगाई उसका पीछा कर रहे होते हैं और जब वे वहाँ आते हैं

और बुढ़िया से उस युवक के बारे में पूछते हैं, वह कहती है कि वहाँ कोई नहीं आया तो दंगाई उस पर विश्वास नहीं करते और उसे मारने तक की धमकी देते हैं।

पर उस युवक ने नसीबन को माँ कहकर शरण माँगी तो उसका मातृत्व जाग उठा था। उसने दंगाइयों से हिंदू युवक को कुरान की झूठी कसम खा कर भी बचा लिया। मूर्ख समझते हैं कि काफिर को मार कर उन्हें सवाब यानी पुण्य मिलेगा पर नसीबन ने एक हिंदू की प्राण रक्षा कर सच्चा धर्म निभाया। इस मायने में यह एक उत्कृष्ट कहानी है। इस कहानी में जिस मानवीयता की मिसाल कायम की गई है वह इसे एक कालजयी कहानी बना देती है।

इस संग्रह की अगली कहानी 'आँखें' शीर्षक से है। सुधीर और सलमा रहमान के बीच पनपने वाले प्रेम की करुण कहानी है जो देश विभाजन की त्रासदी से जुड़कर सांप्रदायिक दंगों में होने वाले खून-खराबे की कहानी बन गई। आँखें चार होने पर दो प्राणियों में प्रेम का जो अंकुर फूटा, वह सुधीर की आत्महत्या के कारण पल्लवित नहीं हुआ, फिर 'आँखें' शीर्षक की क्या सार्थकता रही। इस दुखांत कहानी का यह शीर्षक अटपटा लगता है। कहानी का अंत स्वाभाविक और विश्वसनीय नहीं लगता।

यदि सुधीर ने सांप्रदायिक उन्माद में सलमा को तलवार से काट डाला था तो वह अंत में होटल में कैसे प्रकट हो गई। यदि वह बच गई थी और सुधीर को ढूँढ़ते हुए होटल में उससे मिलने आई थी तो उसे होटल के मुंडेर तक ले जाकर अपनी और सुधीर की मृत्यु का कारण क्यों बनी। इसलिए मुझे लगता है कहानी का अंत विश्वसनीय नहीं है। उसका शीर्षक आँखें तब उचित होता जब प्रेमी युगल का प्रेम सांप्रदायिक घृणा के वातावरण को चीर कर स्वयं को सिद्ध करता।

अथवा क्या शायद लेखिका इस कहानी में आलोकिकता के तत्व का समावेश करना चाहती थी।

सलमा तो सुधीर के हाथों मारी जा चुकी थी और होटल में जो सलमा प्रकट हुई, वह सलमा नहीं, बल्कि सलमा की रुह थी जो सुधीर को होटल की मुंडेर की तरफ ले जाती है और सुधीर किसी सम्मोहन से मुंडेर से छलांग लगा देता है और दोनों प्रेमी जीते जी नहीं मिल सके परंतु मृत्यु ने उन्हें एक कर दिया। इसे पढ़ कर मुझे हिंदी की फिल्म मधुमति याद आ गई जिसमें दिलीप कुमार और वैजयंती माला ने अभिनय किया था और उस फिल्म का भी कुछ कुछ ऐसा ही अन्त था। अस्तु!

"सदी का सबसे बड़ा सच" की कहानी दहेज की मांग के कारण शादी से इनकार करने वाले युवती की कहानी है तो 'आखिर कब' दहेज दिए जाने के बाद भी पति द्वारा प्रताड़ित नारी की करुण कथा है। यह दहेज एक ऐसा राक्षस है जिसका पेट कभी भरता नहीं। दहेज की पूर्ति के बाद भी विवाहिता ससुराल में सुखी नहीं रहती क्योंकि दहेज मांगने वाले माँगते ही रहते हैं। शिक्षा के प्रसार के बावजूद और दहेज विरोधी कानून के बावजूद असंख्य परिवार दहेज की मांग से पीड़ित हैं। अन्य कहानियाँ सामान्य हैं।

समग्र दृष्टि से इस संग्रह की कहानियों के बारे में निःसंकोच कह सकता हूँ कि यह सामाजिक सरोकारों की यथार्थ कहानियाँ हैं जिनमें से कई बड़ी मार्मिक और उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। इनमें पंसेरी, प्रायश्चित, दर्द का रिश्ता, सवाब और तीसरा विकल्प शीर्षक कहानियों को रख सकता हूँ। सामाजिक यथार्थ की अनेक परतें इनमें कहानी कौशल के साथ खोली गई हैं।

सन्तोष खन्ना की ये कहानियाँ प्रायः वर्णनात्मक शैली में लिखी गई हैं जिनमें कहानी कहने की विविध शैलियों के दर्शन नहीं होते फिर भी इनमें कहानीपन भरपूर है जिसका कारण कथावस्तु और चरित्र-चित्रण को समान महत्व देना है। कथावस्तु को गौण कर भाषिक चमत्कार दिखाकर पाठकों को हतप्रभ करने वाले लेखिका सन्तोष खन्ना नहीं हैं। सन्तोष खन्ना की इन कहानियों में भाषा के बारे में प्रचुर विविधता है।

उसमें परिनिष्ठित हिंदी के साथ-साथ देशज, तद्भव, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी शब्दों के कुशल प्रयोग भी हैं, अतः आज का 'दुर्वासा' कहानी संग्रह एक रोचक, पठनीय एवं जनसरोकारी कहानी संग्रह है जिसमें अनेक सामाजिक सरोकारों की कुशल व्यंजना हुई है।

वे कर्मयोगिनी हैं

संतोष बंसल

'विधि भारती परिषद्' संस्था की ओर से प्रत्येक वर्ष संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता रहा है, जिनमें विभिन्न विद्वानों के वक्तव्य के साथ हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी सेवियों को 'राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान' प्रदान किया जाता है। इसलिए श्रीमती सन्तोष खन्ना से मेरा परिचय लगभग चौदह-पंद्रह वर्ष पूर्व संसद के 'केंद्रीय कक्ष' में आयोजित 'राष्ट्रभाषा उत्सव' के दौरान हुआ, जहाँ संस्था द्वारा सम्मान के साथ ही मेरी पुस्तक का लोकार्पण भी हुआ। यह मेरी उनसे प्रथम मुलाक़ात थी, जिसमें उनके कुशल नेतृत्व और क्षमता के दर्शन हुए। कुल मिलाकर वहाँ एक सहज-सरल व्यक्तित्व से मेरा सामना हुआ, जिनमें लेशमात्र भी दिखावा या प्रदर्शन नहीं था। इसके बाद यद्यपि वे काफी दिनों तक इलाहाबाद में रहीं, लेकिन दिल्ली लौटने के बाद उन्होंने मुझे 'महिला विधि भारती' पत्रिका के लिए लेख भेजने को कहा, तभी हिंदी भाषा में प्रकाशित कानून या विधि सम्बन्धी किसी पत्रिका का विवरण मेरे समक्ष पहली बार आया, क्योंकि अभी तक जब न्याय या विधि सम्बन्धी सम्पूर्ण विधान अंगरेजी में चलता है, ऐसे में कानून सम्बन्धी पत्रिका का हिंदी भाषा में होना मेरे लिए बड़ा सुखद आश्चर्य था, चूँकि 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक पत्रिका है और इसके सम्पादन का कार्यभार श्रीमती खन्ना स्वयं संभालती हैं। तो पत्रिका में उन्होंने ऐसा कोई न्यायिक विषय अछूता नहीं छोड़ा, जो भारतीय व्यक्ति, परिवार, समाज और देश से संबंधित न हो। स्थिति और परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर कानूनों में हुए परिवर्तन और उन पर विचार-विमर्श इस पत्रिका की विशेष प्राथमिकता रही है। इसके अलावा इस पत्रिका में कविताएँ कहानियाँ भी प्रकाशित होती रही हैं, जिससे रोचकता और सरसता बनी रहती है। तथा कभी-कभी विधि विशेषज्ञों के लेख अंग्रेजी भाषा में इसी पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित होते रहे हैं। यही कारण है कि प्रकाशन के दो वर्ष पश्चात ही सन् 1996 में दिल्ली की हिंदी अकादमी द्वारा 'मैडम को श्रेष्ठ सम्पादन पुरस्कार' मिला। वस्तुतः श्रीमती खन्ना ने पत्रिका के कई विशेषांक भी निकाले हैं, जिनमें 100-101 वां संविधान विशेषांक बहुत महत्वपूर्ण अंक रहा। अभी विधि भारती का 'मानव अधिकार विशेषांक' भी दो खण्डों में प्रकाशित हुआ है, जिनमें मानव अधिकारों के सभी महत्वपपूर्ण पहलुओं पर आलेख हैं। बहुत बार मैडम 'विधि भारती' के अगले अंक के प्रकाशन से पूर्व ही समसामयिक कानूनी विषयों और मुद्दों को लेकर विचार विमर्श प्रारम्भ कर देती हैं। जैसे जब धारा 497 में बदलाव की घोषणा हुई या राजद्रोह कानून विषयक चिंतन हुआ, तब उन्होंने मुझे इन विषयों पर लिखने को प्रेरित किया। यद्यपि यह क्षेत्र एकदम नया और कठिन था, किन्तु विषय की गंभीरता को देखते हुए मैंने शोध करके लिखा। मैंने पाया कि मैडम की कानूनी जानकारी सदैव सटीक होती है, जिससे कोई भी नवीन घोषणा या सूत्र छूट न जाए। इसी तरह वन अधिनियम का मामला हो अथवा 'अफ्स्पा कानून' का मसला, किसी भी कानून सम्बन्धी विषय पर उनकी पूरी पकड़ रहती है। ऐसे में सम्पादिका के तौर पर वे लेखक को पूरी छूट देते हुए परामर्श ही देती हैं क्योंकि साहित्य सृजन में जहाँ रचनाकार को कल्पना में उतरने की खुली छूट होती है, वहीं विधि या न्याय सम्बन्धी लेखों में सत्य एवं तथ्यों की पूर्णता होनी अनिवार्य है। अंततः चाहे वह पर्यावरण का मुद्दा हो या महिला सम्बन्धी सामाजिक सरोकार, श्रीमती खन्ना से कोई भी विषय अछूता नहीं रहता। चूँकि वे 'भारतीय अनुवाद परिषद की संकाय अध्यापिका भी हैं, इसीलिए हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इनमें' भारतीय कानूनों का समाजशास्त्र 'नामक पुस्तक' विधि, न्याय मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत हुई। पत्रिका से इतर साहित्य के क्षेत्र में भी उपन्यास, कहानी संग्रह, काव्य संग्रह, नाटक इत्यादि सभी विधाओं पर उनकी किताबें प्रकाशित हुई हैं। पिछले वर्ष उन्होंने रेमन मैग्सेसे अवार्डीज पर आधारित 'काव्य सलिला' नामक अंतर्राष्ट्रीय काव्य संग्रह निकालकर 'वर्ल्ड बुक रिकॉर्ड' स्थापित किया।

‘काव्य सलिला’ में तैरों नहीं बहो

संतोष बंसल

‘काव्य सलिला’ कविता संग्रह भारत के ‘रेमन मैग्सेसे अवार्डीज़’ पर लिखित प्रथम अंतर्राष्ट्रीय कविता संग्रह है, जो ‘वर्ल्ड बुक ऑफ़ रिकॉर्ड’ (गोल्ड एडीशन) लंदन में दर्ज हुआ है। इस पुस्तक पर चर्चा से पूर्व हमें वर्तमान पत्रकारिता पर नजर डालनी होगी, जहाँ सिर्फ ‘नेगेटिव’ या नकारात्मकता के सिवाय कुछ नहीं देखने को मिलता। राजनीति एवं अपराध जगत से सम्बंधित खबरों के अलावा बढ़ा-चढ़ा कर पेश किये गए विज्ञापन ही पन्नों पर पसरे रहते हैं। जिन्हें पढ़-सुनकर घबराहट और बेचैनी के कुछ हासिल नहीं होता और सिर्फ देश-दुनिया का स्याह पक्ष ही उजागर होता है। ऐसे में इस पुस्तक में शामिल पुरस्कृत हस्तियों के जीवन और कार्यों को देखकर यह विश्वास जगता है कि दुनिया में अब भी अपार संभावनाएं और संवेदनाएँ बची हुई हैं। ये वही लोग हैं, जो चुपचाप अपना काम करते रहते हैं। इनका कोई शोर-शराबा नहीं होता, लेकिन जिनके हाथों निर्माण होकर समाज और देश का विकास होता है। कभी जब अचानक से इन महान हस्तियों का नाम इनाम की सूची में घोषित किया जाता है, तब ये अखबारों की सुर्ख़ियों में दिखाई देते हैं। ये सभी लोग जीवन के छोटे-बड़े सभी पहलुओं से जुड़े हुए हैं, लेकिन उसी में अपनी खास उपस्थिति दर्ज कर जाते हैं। जीवन की तरह ये क्षेत्र भी बहुआयामी हैं, जो कला, संगीत, नृत्य, साहित्य, शिक्षा, विज्ञान और राजनीति जैसे तमाम विषयों से जुड़े हैं। इन के अतिरिक्त पत्रकारिता, पर्यावरण, वन्य जीव संरक्षण, श्वेत (दुग्ध) क्रांति, हरित क्रांति, चिकित्सा, मनोरोगों इत्यादि अन्य विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले मनीषी भी हैं, जिन्होंने सुरक्षा और सुधार का विशेष कार्य किया, तो धर्म और अध्यात्म के बल पर देश और समाज में अपना प्रभाव छोड़ने वाले चिंतकों का नाम भी मैग्सेसे पुरस्कार की सूची में सम्मिलित है। गरीबों एवं श्रमिकों के हितों के लिए आवाज उठाने वाले कार्यकर्ताओं और हस्तशिल्पियों तथा कारीगरों के संरक्षण का बीड़ा उठाने वाले उद्योगपतियों को भी इस इनाम से सम्मानित किया गया।

वस्तुतः भय और खौफ के बीच जीती दुनिया में इस तरह के लोग ही सबका सम्बल बनते हैं। तब तमाम बुराइयों के बीच भी अच्छाई की रोशनी कौंधती है, जो हम सबकी राह प्रश्स्त करती है। ‘काव्य सलिला’ कविता संग्रह में ऐसे ही महान महानुभावों पर लिखी गई कविताओं और उनके जीवन परिचय के साथ स्वयं लेखक की खुद की जानकारी भी शामिल है। रेमन मैग्सेसे पुरस्कार से विभूषित शख़्शियतों में कुछ ऐसे नाम थे, जो विभिन्न प्रदेशों के भिन्न-भिन्न भाषी थे। ऐसे में उनके विषय में सही जानकारी उपलब्ध करना, बेहद कठिन काम था। लेकिन हमारे अहिन्दी भाषी हिंदी रचनाकारों ने इसे सरलता और सुरुचि से संपन्न किया। जिसके कारण यह संग्रह बड़ा सरस, रोचक और संग्रहणीय बन गया है। इस एक ही किताब से न केवल उनसठ रेमन पुरस्कृत लोगों के व्यक्तित्व और कृतित्व का ज्ञान मिला, बल्कि सभी रचनाकारों को भी आपस में एक-दूसरे के विषय में जानकारी मिली। कुल मिलाकर हम सब के बीच एक ऐसा सम्बन्ध कायम हुआ, जिससे सभी एक कुटुंब की तरह प्रेम सूत्र में बंध गए। इस तरह कलम से रचनात्मक कर्म करने वाले बहुत से कवि और कवयित्रियाँ ने अपने अनूठे कार्य से, इस सांझे यज्ञ में अपनी-अपनी आहूतियाँ डाली हैं। जिससे हिंदी साहित्य का वातावरण और सम्पूर्ण पर्यावरण उस हवन अग्नि की सुगंध से सुवासित एवं संरक्षित हुआ है। यह महक दोहरे मापदंड पर फ़ैल रही है, एक तो रेमन मेग्सेसे आवार्डीज के कार्यों के कारण, दूसरे उन पर लिखने वाले रचनाकारों की वजह से। क्योंकि कम से कम शब्दों में सबका परिचय और सीमित पंक्तियों में कविता की अभिव्यक्ति, ‘गागर में सागर’ के समान अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य था। किन्तु प्रतिभाशाली रचनाकारों ने इस असंभव काम को संभव कर दिखाया, जिसका प्रमाण ‘काव्य

सलिला' कृति स्वयं है। इस कृति के सम्पादक और प्रकाशक भी बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने भारत के 'रेमन मैग्सेसे अवार्डीज' पर अंतर्राष्ट्रीय काव्य संग्रह निकलकर 'वर्ल्ड बुक ऑफ़ रेकॉर्ड' स्थापित किया।

'काव्य सलिला' पुस्तक में सम्मिलित विजेताओं को हम कई विभागों में विभक्त कर सकते हैं, जैसे भूदान आंदोलन के नायक श्री विनोबा भावे, सर्वोदय समाजवादी श्री जयप्रकाश नारायण, श्री मनीभाई देसाई, श्रीमती कमला देवी चटोपाध्याय आदि गांधीवादी नेता हैं। डेयरी उत्पादकों में श्री दारा खुरोडी, डॉक्टर वर्गीश कुरियन, श्री त्रिभुवन पटेल, सुश्री नीलिमा मिश्रा का दुग्ध क्रान्ति के लिए विशेष योगदान है। तो पत्रकारिता में श्री अमिताभ चौधरी, श्री रवीश कुमार पांडेय, श्री पी साईनाथ, श्री के. वी सुबन्ना, श्री अरुण शौरी, श्री बी.जी.वर्गीज, आनंद बाजार पत्रिका में कॉलम लिखने वाले श्री गौर किशोर घोष के नाम प्रमुख हैं। महान मानवीयता की मशाल मदर टेरेसा, समाजसेवी श्री प्रकाश बाबा आमटे और उनकी पत्नी मंदाकिनी आमटे से सभी पाठक परिचित हैं। इसी तरह डॉक्टर चिंतामणि देशमुख अगर अपनी गवर्नमेंट सर्विसेज के लिए पुरस्कृत हुए तो पुलिस सेवा में साहस की मिसाल किरण वेदी, भारतीय नौ सेना की शान श्री लक्ष्मी नारायण रामदास, भ्रष्टाचारमुक्त प्रशासन की ओर अग्रसर श्री अरविन्द केजरीवाल आदि को भी सभी जानते हैं। विदेशी 'अवार्डीज' में मिसेज वेल्थी हांसिंगर फिशर ने बापू के अनुरोध पर भारत में साक्षरता की नींव रखी, तो मिस्टर हेनरी होलक लार्सन ने स्वतंत्र भारत में उपकरणों की सफल कम्पनी स्थापित की। कुटीर उद्योग के संरक्षण के लिए श्री लक्ष्मीचंद जैन एवं कर्णाटक के ग्रामों में बिजली पहुंचाने वाले श्री हरीश हांडे, झारखण्ड में कचरा प्रबंधन के लिए विख्यात समाजसेवी श्री अंशु गुप्ता, 'ईमानदार अधिकारी' का सम्मान प्राप्त श्री संजीव चतुर्वेदी का भी विशेष योगदान है। विज्ञान में सुदूर लद्दाख के सोनम वांगचुक, चिकित्सा में मनोरोगियों के मसीहा डॉक्टर भरत वातवानी, कैंसर की विशेषज्ञा मैडम विश्वनाथन शांता, स्त्री रोग की डॉक्टर बानू जहांगीर कोयाजी और माबेले एरोल तथा डॉक्टर रजनीकांत अरोल एवं जयपुर फुट के लिए डॉक्टर प्रमोद करण सेठी इत्यादि की सेवाएँ उल्लेखनीय रही हैं।

उपरोक्त महानुभावों के अतिरिक्त कुष्ठ रोगियों की सेवा करने वाले श्री मुरलीधर देवीदास आमटे, बाल अधिकारों के संरक्षण के लिए श्रीमती शांता सिन्हा, रंगमंच के श्री शम्भू मित्रा, महान फिल्मकार श्री सत्यजीत रॉय, संगीतकारों में श्री टी. एम. कृष्णा, श्री रवि शंकर, श्रीमती एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी इत्यादि हस्तियाँ भी नामचीन हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं में श्री संदीप पांडे, सफाई कर्मचारी आंदोलन के संस्थापक बेजवाड़ा विल्सन, मलिन बस्तियों का मसीहा के नाम से विख्यात श्री जाकिन अरपुथम, ग्राम विकास परियोजना के लिए कुलन्देई फ्रांसिस एवं मनीभाई देसाई, हरित क्रान्ति के प्रणेता श्री एम.एस.स्वामीनाथन, कृषि क्षेत्र में दीप जोशी, मजदूर किसान शक्ति संगठन की संस्थापिका श्रीमती अरुणा राय, चुनाव आयुक्त श्री टी. एन शेषन तथा चुनाव अधिकारी श्री जेम्स माइकल लिंगदोह, जल संरक्षण के लिए कार्य करने वाले श्री राजेंद्र सिंह, पर्यावरण के साधक श्री महेश चंद्र मेहता, चिपको आंदोलन के प्रणेता श्री चंडी प्रसाद भट्ट, आदिवासी जीवन की चितेरी प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी, कला पारखी श्री के.वी.सुबन्ना, प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट श्री आर. के.लक्ष्मण, धर्म और अध्यात्म के पुरोधा श्री पांडुरंग शास्त्री आठवले, महामहिम दलाई लामा आदि ये सभी गणमान्य व्यक्ति भारत के सर्वोच्च्य सम्मान भारत रत्न, पद्म श्री, पदम् भूषण, पदम् विभूषण आदि ख्याति प्राप्त उपाधियों से सज्जित हैं। वैसे कोरोना काल में जिस तरह से 'हेल्थ वारियर्स' ने अपना कर्तव्य निभाया था, वह अतुलनीय था। और जिस तरह बहुत सी संस्थाएँ एवं समाज के अन्य लोग भूखे-प्यासे मजदूरों की मदद के लिए आगे आये थे, वह इसी परम्परा का जीता जागता उदाहरण है। इस संग्रह को सबके सम्मुख पुस्तक रूप में लाना चुनौती पूर्ण काम था, लेकिन उन सबसे पार पाते हुए श्रीमती सन्तोष खन्ना ने इस कार्य को संपन्न किया। इसके लिए सम्पादक महोदया के साथ वे सभी लेखक एवं कवि भी बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने इस दुरूह कार्य को कर दिखाया।

प्रेरक व्यक्तित्व आदरणीया सन्तोष खन्ना

डॉ. अलका शर्मा

सन्तोष खन्ना जी हिंदी साहित्य की ऐसी हस्ताक्षर हैं जो किसी प्रकार के परिचय की मोहताज़ नहीं हैं। वह विधि के क्षेत्र में भी दशकों से सक्रिय हैं और कानून की पत्रिका विधि भारती पत्रिका की प्रधान संपादक भी हैं। लगभग तीन दशकों से वह इस पत्रिका का निरंतर प्रकाशन करती आ रही हैं। आदरणीया सन्तोष खन्ना जी एक बहुत ही विदुषी, स्नेही, कर्मठ, परिश्रमी, व सहृदय महिला है। मैं उनके गुणों से बहुत प्रभावित हूँ। जब भी किसी विषय में परामर्श की आवश्यकता होती है और उनसे बात करती हूँ तो उनकी सहृदयता से सुखद साक्षात्कार होता है और उनसे बात कर एक संतुष्टि का भाव संचरित होता है।

साहित्य की प्रत्येक विधा कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास या सामाजिक विधिक विषय पर अपनी लेखनी चलाने वाली वरिष्ठ साहित्यकार सन्तोष खन्ना जी से मेरा परिचय स्वर्गीय डॉ. प्रवेश सक्सेना जी के सौजन्य से हुआ था।

डॉ. प्रवेश सक्सेना दिल्ली यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर थीं और संस्कृत की विदुषी होने के साथ-साथ हिंदी की वरिष्ठ साहित्यकार भी थीं। वह सन्तोष खन्ना और उनकी विधि भारती परिषद् से जुड़ी थीं और उनके आलेख भी विधि भारती पत्रिका में प्रकाशित होते रहते थे। उन्होंने मुझे सन्तोष खन्ना जज से मिलवाया और विधि भारती परिषद् से भी जोड़ा। आज भी प्रवेश जी का स्मरण मुझे भावुक बना रहा है। उनके साथ कई वेबिनारों में भाग लिया और वेद संस्थान के कार्यक्रम आज भी मुझे याद हैं।

विधि भारती परिषद् से जुड़ने का एक सुफल यह भी हुआ कि मुझे 'काव्य सलिला' के सफर से जुड़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन दिनों सन्तोष खन्ना जी भारत के रेमन मैग्सेसे पुरस्कार प्राप्त विभूतियों पर वर्ल्ड रिकॉर्ड ब्रेकिंग प्रोजेक्ट पर भी कार्य कर रहीं थीं। उन्होंने मुझे भी उस प्रोजेक्ट में जोड़ लिया। भारत क्या विश्व भर में ऐसा प्रोजेक्ट पहली बार हाथ में लिया गया था और ऐसा कार्य विश्व की किसी भी भाषा में कभी नहीं हुआ था, यह श्रेय हिंदी को मिला, जिससे विश्व रिकॉर्ड बना। ऐसे सारस्वत कार्य में मुझे जुड़कर बहुत खुशी हुई। इस में भारत के 59 रेमन मैग्सेसे अवार्डी पर किसी न किसी साहित्यकार को हर अवार्डी पर शोध कर न केवल उसका गद्य में प्रोफाइल तैयार करना था अपितु उन पर कविता की रचना कर उसका पोइटिक प्रोफाइल भी लिखना था। यह रचनात्मकता कार्य मुझे इतना रोचक लगा कि मैंने एक नहीं, दो-दो अवार्डीस पर कार्य किया, जो एक बेहद खूबसूरत पुस्तक 'काव्य सलिला' काव्य संग्रह पुस्तक में प्रकाशित हुआ। काव्य सलिला पुस्तक से एक विश्व कीर्तिमान स्थापित हुआ था जिसे वर्ल्ड बुक ऑफ रिकार्ड, यू.के. ने वर्ल्ड रिकॉर्ड के रूप में मान्यता दी और उन्होंने ही मेरे कार्य के लिए मुझे दो-दो प्रमाण पत्र भी दिये।

रेमन मैग्सेसे पुरस्कार विजेताओं पर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त 59 हिंदी साहित्यकारों ने इस सारस्वत कार्य में भागीदारी की थी। इस वर्ल्ड रिकॉर्ड के प्रोजेक्ट पूरा होने पर सन्तोष खन्ना जी ने जुलाई, 2022 में हिंदी भवन में विधि भारती परिषद् के बेनर तले एक भव्य सामान समारोह आयोजित किया जिसमें देश भर से पधारे साहित्यकारों का सम्मान किया गया और सबको विश्व रिकॉर्ड बनने के लिए प्रमाण-पत्र और प्रशस्ति पत्र प्रदान किये गये। इसी सब के दौरान मैंने उन्हें कुशल नेतृत्व के गुणों से युक्त पाया।

सन्तोष खन्ना जी का अनुवाद के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य है और अपनी योग्यता से उन्होंने अनेक पदों को सुशोभित किया है। 30 वर्षो से लगातार बिना रूके वे विधि भारती पत्रिका का कुशल संपादन कर रही है। उम्र के जिस पड़ाव पर लोग थक कर बैठ जाते हैं वे निरंतर लेखन या किसी अन्य कार्य में अपने को व्यस्त रखें हैं। उन्हें अपने लेखन के लिए अनेक मंचों से समय-समय पर सम्मानित किया गया और उत्तर प्रदेश के हिंदी संस्थान ने 2020 में

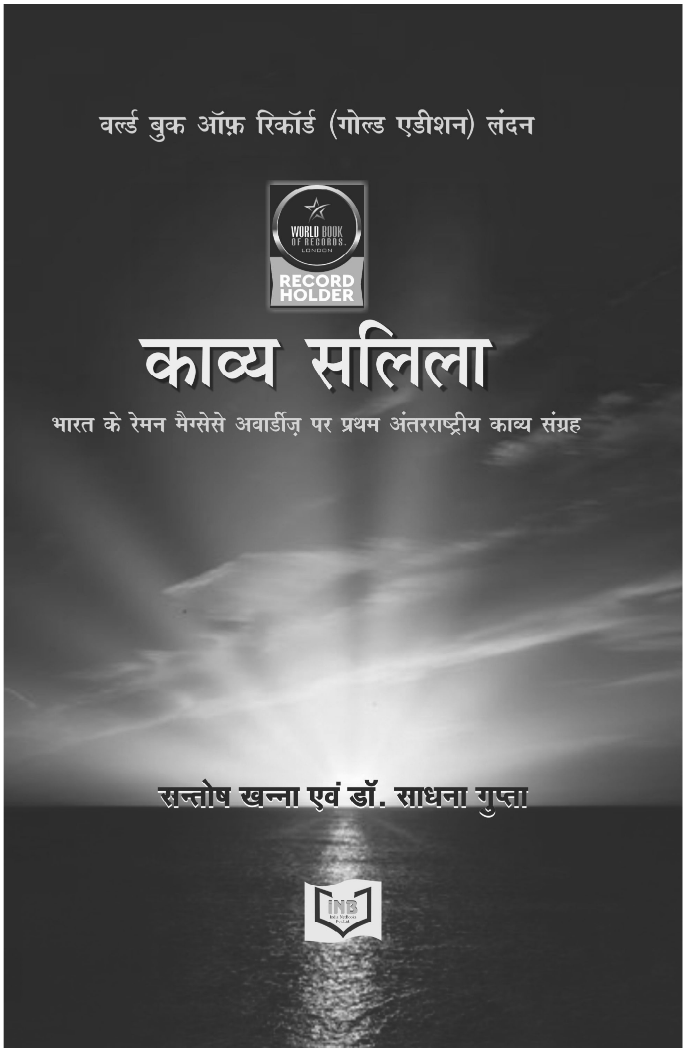

उनकी विधि सेवाओं के लिए उन्हें 'विधि भूषण' पुरस्कार से सम्मानित किया जिसमें अंग वस्त्रम् के साथ उन्हें ढाई लाख की पुरस्कार राशि प्रदान की गई।

ईश्वर उनको स्वस्थ रखें। एक अच्छी लेखिका होने के साथ-साथ वे एक अच्छी माता, एक अच्छी सास, एक अच्छी दादी भी हैं और परिवार पर स्नेह की वर्षा करती रहती हैं। वास्तव में अपने परिवार की धुरी हैं जिसके इर्द-गिर्द पूरा परिवार घूमता है।

हम दोनों ही "योग संस्कृति उत्थान पीठ" संस्था से जुड़े है संतोष खन्ना जी उनकी सलाहकार समिति में है और मैं उनकी पत्रिका वेलनेस केयर की सह-संपादक हूँ इस नाते हम बहुत से विषयों पर वेबिनार के माध्यम से अपने विचारों का आदान प्रदान व कार्यक्रम संचालन का कार्य करते हैं। वह भारतीय अनुवाद परिषद् से आरंभ से ही जुड़ी हैं और इस संस्था की उपाध्यक्ष हैं। हममें काफी निकटता हो गयी है। इसके अलावा सन्तोष खन्ना जी इंदौर की एक संस्था गोरक्ष सेवार्थ फाउंडेशन से भी जुड़ी है वहाँ से प्रकाशित होने वाली "अध्यात्म संदेश" की पिछले लगभग दो वर्ष से वे वरिष्ठ संपादक हैं और मैं भी उस पत्रिका से संपादक के रूप में जुड़ी हूँ और संतोष खन्ना जी वहाँ की दिल्ली राज्य की अध्यक्ष भी हैं।

उनमें दृढ़ निश्चय व लगन बहुत है इसी कारण वे कठिन से कठिन कार्य को भी सरलतापूर्वक कर लेती हैं और लोगों के लिए भी प्रेरणा का स्त्रोत हैं। बहुमुखी प्रतिभा की धनी आदरणीया सन्तोष खन्ना जी वास्तव में हम सब की प्रेरणा है।

सन्तोष खन्ना जी से मिलना ऐसा संयोग है जो देव कृपा से ही होता है। और भी काफी मंचों से हम साथ-साथ जुड़े हैं। ईश्वर से यही प्रार्थना है वे स्वस्थ रहे और ऐसे ही सदा मुझ पर स्नेह की वर्षा करती रहें। अंत मे उनके लिए दो पंक्ति कहना चाहूंगी।

जिसको भी हमने अपना माना।
उसको बड़ा ही संभाल के रखते हैं।
माला बड़ी छोटी-सी है दोस्तों की,
पर उनमें केवल बेशकीमती गुलाब ही रखते हैं।

अंग्रेजी के मोहपाश में हिंदी भाषी

डॉ. जवाहर कर्णावट

हिन्दी भारतीय लोकतंत्र के व्यापक व्यवहार की भाषा है स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जागृति और एकता हेतु महात्मा गाँधी ने हिन्दी को अमोघ शस्त्र बनाया। भारत के अलावा दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, फ़िजी, गयाना आदि देशों में भी जन-जागरण में हिन्दी की सक्रिय भूमिका रही। उस समय हिन्दी का प्रयोग आजादी केन्द्रित था और आज यह राजभाषा और जनभाषा के रूप में लोकतंत्र और मीडिया दोनों का आधार बनी हुई है। आजादी के बाद इन 76 वर्षों में जनसाधारण के बीच आपसी संपर्क, संवाद, सूचना संचार और मनोरंजन की भाषा के रूप में हिन्दी ने एक लम्बी यात्रा तय की है। चूंकि लोकतंत्र की सफलता जन भाषा पर ही निर्भर करती है इसीलिए राजभाषा केवल जनभाषा ही हो सकती है। हमारे संविधान निर्माताओं ने बड़ी दूर अंदेशी के साथ हिन्दी को राजभाषा के रूप में चुना यह स्थान हिन्दी को इसीलिए नहीं दिया गया था कि यह देश की प्राचीन एवं समृद्ध भाषा है, बल्कि इसीलिए दिया गया था कि यह भारत के अधिकतर भागों में अधिकांश लोगों द्वारा समझी और बोली जाती है और इसके माध्यम से हम अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था को अधिक मजबूत बना सकते हैं।

हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि संवाद और मनोरंजन की भाषा से हटकर हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के तीन प्रमुख क्षेत्र शिक्षा, प्रशासन और न्याय व्यवस्था में हिन्दी कितनी फलफूल पाई है। यह किसी से छिपा नहीं है दरअसल देश में अंग्रेजी भाषा के जन-विरोधी शोषणपरक इस्तेमाल को समझने की कभी कोशिश नहीं की गई। हमारे कर्णधार अभी तक यह नहीं समझ पाए हैं कि राजनीति, शासन, प्रशासन, शिक्षा और न्यायिक व्यवस्था आदि में अगर अंग्रेजी का वर्चस्व टूटता है तो निचले तबके के लोग ही आगे आएँगे जिनकी लड़ाई लड़ने का दावा ये लोग कर रहे हैं। लोकतंत्र में आमजन की सहूलियत हेतु सरकारी काम-काज में राजभाषा नीति-नियमों का कड़ाई से पालन करने के प्रयास अवश्य हो रहे हैं किन्तु इस बारे में जनता में कोई जागरूकता नहीं दिखाई देती है। वास्तव में तो हिन्दी को राजभाषा के रूप में सफल न बनाते हुए केवल इसका शोर मचाते रहने के पीछे अंग्रेजी को जारी रखने की मानसिकता ही है।

इससे अन्य भारतीय भाषाओं में हिन्दी के प्रति एक विरोधी वातावरण बनाने में भी सुविधा हुई अगर सचमुच में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को लाना होता तो उसके लिए हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच आपसी समन्वय स्थापित किया जाता ताकि हिन्दी को थोपने जैसी निर्मूल धारणा को राजनीतिक आधार नहीं मिलता किन्तु ऐसा नहीं हो सका और इसका दुष्परिणाम यह भी हुआ कि दक्षिण भारत के विरोध के हवाले अंग्रेजी को एक राष्ट्रीय आवश्यकता बना दिया और सामाजिक जीवन में भी भारतीय भाषाओं को दरकिनार कर अंग्रेजी को महिमा-मंडित कर दिया गया। एक भाषा के रूप में अंग्रेजी का विरोध भले ही उचित प्रतीत नहीं होता है किन्तु उस अंग्रेजियत से विकसित मानसिकता को उखाड़ फेंकना आवश्यक है जो हमारी प्रजातांत्रिक व्यवस्था से मेल नहीं खाती।

इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय में अंग्रेजी की अनिवार्यता का उदाहरण हमारे सामने है। लोकतंत्र में जनता को जनता की भाषा में न्यायिक प्रक्रिया में हिस्सा लेने का अवसर मिलना चाहिए किन्तु हम आज भी सर्वोच्च न्यायालय में अपनी भाषा में न तो अपनी बात कह सकते हैं और न ही चर्चा कर सकते हैं। संसदीय राजभाषा समिति ने जब सर्वोच्च न्यायालय के काम-काज में हिन्दी को सम्मिलित करने की सिफारीश की तो प्रारंभिक स्तर पर ही अनेक बाधाएँ खड़ी कर दी गई। देश के विधि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से दर्शा दिया कि सर्वोच्च न्यायालय की कार्रवाई में हिन्दी को शामिल करना व्यावहारिक दृष्टि से संभव नहीं होगा। यदि आप इस रिपोर्ट को पढ़ेंगे तो आपको स्पष्ट रूप से लगेगा कि आयोग हिन्दी के प्रति कितना पूर्वग्रह से ग्रसित है। मीडिया में हिन्दी की चर्चा करें तो एक

बड़ा तबका इस बात से बेहद खुश है कि बाजार और मनोरंजन की भाषा के रूप में हिन्दी का जबर्दस्त फैलाव हुआ है। टी.वी. रेडियो, फिल्में तथा अखबार इसके बड़े वाहक बने हैं। महानगरीय विकास की धारा छोटे शहरों और कस्बों की ओर बढ़ने से क्षेत्रीय स्तर पर मीडिया को मिला आधार अब अत्याधिक व्यापक हो गया है। इंडियन रीडरशीप सर्वे के हाल ही के आंकड़े बताते हैं कि भारत में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले दस अखबारों की सूची में हिन्ध्दी के अब पांच समाचार पत्र शामिल है। मीडिया में हिन्दी और भारतीय भाषाओं की पकड़ मजबूत होते देख कई मीडिया घरानों ने अपने आर्थिक दैनिक का प्रकाशन हिन्दी में भी प्रारम्भ कर दिया है। इलेक्ट्रानिक मीडिया ने भी, खबरों, मनोरंजन और धारावाहिकों से हटकर बिजनेस चैनलों की सफलता ने भी यह दर्शा दिया है कि लोकतंत्र में आम लोगों तक पहुँचने और व्यवसाय की सफलता के लिए हिन्दी का कोई विकल्प नहीं हो सकता। तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में हिन्दी समाचार-पत्रों की शुरूआत और इसकी बढ़ती प्रसार संख्या ने यह मिथक तोड़ दिया है कि हिन्दी मीडिया केवल उत्तर भारत तक ही सीमित है। विश्व के प्रमुख देशों में भी सेटेलाइट के माध्यम से हिन्दी चैनलों ने अपनी लोकप्रियता बना ली है और स्थानीय स्तर पर भी मारीशस, फिजी, ब्रिटेन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में हिन्दी के कार्यक्रम नियमित रूप से प्रसारित हो रहें। हिन्दी की वैब पत्रिकाओं ने भी सम्पूर्ण विश्व में अपना जाल फैलाया है। इस प्रकार हिन्दी का प्रिंट इलेक्ट्रोनिक और वेब मीडिया का एक दूसरा पक्ष भी हमारे सामने है। विज्ञापन उद्योग ने हिन्दी भाषी समाज का दोहन करने के लिए उसे अलग से लक्षित किया है तथा बहुराष्ट्रीय उपभोक्ता ब्रांड के बाजार में उसे सीधे संवाद की भाषा में बदला है। इसी कारण देश में एक दिलचस्प बदलाव देखने को मिल रहा है नई पीढ़ी अपनी मातृभाषा में लिखने-पढ़ने और यहाँ तक कि उसमें बोलने का काम भी पिछली पीढ़ी की तुलना में अब कम करती जा रही है जबकि हिन्दी का इस्तेमाल ज्यादा फर्राटेदार ढंग से करने लगी है। इस प्रक्रिया में कई प्रकार की नई समस्याएँ भी सामने आ रही हैं। अंग्रेजी की शब्दावली उस पर हावी हो रही है और देवनागरी लिपि का प्रयोग लगातार घट रहा है। हिन्दी के सामने यह जबर्दस्त चुनौती है कि उसे भाषा के स्थान पर बोली बनने की ओर अग्रसर किया जा रहा है। हिन्दी व्यापार-व्यवसाय के लिए बाजार की भाषा अवश्य बने किन्तु बाजारु भाषा नहीं। वैश्वीकरण के इस युग में अंग्रेजी की महत्ता कुछ कार्यो एवं स्थानों पर भले ही हो किन्तु हमारे दैनिक जीवन एवं सामाजिक व्यवहार, जहाँ हिन्दी से बखूबी काम चलाया जा सकता है, अंग्रेजी की गुलाम मानसिकता को त्यागना होगा भारत में हिन्दी क्षेत्रों की शहरी, अर्धशहरी एवं ग्रामीण आबादी भी अंग्रेजी के मोहपाश में अब इस तरह जकड़ती जा रही है जैसे अब देश को उन्नत कृषकों, कुशल कारीगरों और कुशल श्रमिकों की नहीं अपितु केवल इंजीनियर, आई. टी. और मैनेजमेंट गुरुओं की ही आवश्यकता है। हमें चंद अंग्रेजी परस्त लोगों की सुविधा की खातिर बहुसंख्यक हिन्दी भाषी समाज को अपनी भाषा से वंचित रखने के षडयंत्र को बेनकाब करना होगा। लोकतंत्र में जन-जन में अपनी भाषा के प्रति विश्वास और सम्मान की भावना को बरकरार रखने की महती आवश्यकता होती है। इसके लिए सूचना प्रौद्योगिकी में हिन्दी की ढेरों सुविधाओं को लोकप्रिय बनाना होगा।

समूचे विश्व में हिन्दी का परचम लहराने के लिए भारत को हिन्दी के प्रयोग संबंधी उच्च्य आदर्श स्थापित करने होंगे। लोकतंत्र की प्रमुख शक्ति के रूप में आज देश में युवाओं की संख्या देश की आबादी का लगभग 35% है। हमारे युवा शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हिन्दी का इस्तेमाल तुलनात्मक रूप में कितना कर पा रहे हैं। आज हमारी सबसे बड़ी चुनौती नई पीढ़ी को हिन्दी से जोड़ने की है। नागपुर में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के उद्‌घाटन अवसर पर पूर्व प्रधानमंत्री स्व. इंदिरा गाँधी ने कहा था "हिन्दी में निखार और शक्ति तभी आएगी जब व्यापारी अपने व्यापार के लिए, वैज्ञानिक अपनी खोजों को समझाने के लिए तथा सार्वजनिक लोग आशापूर्ण दृष्टिकोण रखने के लिए इसका प्रयोग करें। आज भी यह विचार प्रश्नचिह्न के रूप में हमारे सामने है।

वैश्विक परिदृश्य में उभरती हिंदी

अलका सोनी

इस जगत में सभी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए भाषा का उपयोग करते हैं। फूलों की मुस्कुराहट, भौंरो की गुंजन और पक्षियों का चहचहाना प्रकृति की भाषा है। इसी तरह नदियां अपनी लय में और समंदर अपनी तरंगों के साथ स्वयं को व्यक्त किया करता है। हम सभी इनकी भाषा के साथ तालमेल बिठा कर अद्भुत शांति का अनुभव करते हैं।

इसके बाद बारी आती है हम मनुष्यों की जिसे वाणी का वरदान प्राप्त है। हम शब्दों और लिपियों से सुसज्जित भाषा का प्रयोग करते हैं। प्रायः हम जिस भूभाग में रहते हैं वहीं के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं।

हम अपनी भावनाओं को बोलकर व लिखकर व्यक्त करते हैं। व्यक्त करने की इस शैली को भाषा का नाम दिया गया है।

हमारे देश में प्राचीन समय में संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था। लेकिन कालांतर में संस्कृत का जन-मानस के बीच प्रयोग कम होता चला गया और संस्कृत से निकली देवनागरी लिपि व भाषा 'हिंदी' का प्रयोग होने लगा। यह अत्यंत सहज-सरल भाषा थी। जिसे बोलने व लिखने के लिए अतिरिक्त परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती थी। हमारी भाषा का सम्मान, हमारी संस्कृति के सम्मान के साथ जुड़ा है। हिंदी हमारे देश में सदियों से बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। हिंदी की इसी सुलभता व इतिहास को ध्यान में रख भारत की स्वतंत्रता के बाद 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने एकमत से निर्णय लिया कि देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी ही भारत की राजभाषा होगी। यह घोषणा निःसन्देह भारतीयों के लिए गौरवपूर्ण थी। हिंदी दिवस सर्वप्रथम, 14 सितंबर 1953 को उत्साह और जोश के साथ मनाया गया। इसके बाद से 14 सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाने का प्रचलन शुरू हो गया।

विश्व क्षितिज पर छटा बिखेरती हिंदी :

आज अपने देश भारत के साथ-साथ, विश्व क्षितिज पर भी हिंदी अपनी इंद्रधनुषी छटा बिखेर रही है। उसका प्रयोग बढ़ रहा है। हमारे देश के जननायक वैश्विक मंचों पर हिंदी में भाषण देने में अब हिचकते नहीं हैं। यह सब देख मन को ढांढ़स मिलता है।

आज का समय भूमंडलीकरण का है, जिसका असली चेहरा बाजार के रूप में हमारे सामने उपस्थित हुआ है। तेजी से फैलती बाज़ार-संस्कृति ने हमारी राष्ट्रीय अस्मिता, खानपान, पहनावा, भाषा, संस्कृति आदि को प्रभावित किया है। बच्चों के सपने में बाज़ार का प्रवेश हो चुका है। मनुष्य की अस्मिता सुरक्षित रखने के लिए भाषा एक सशक्त माध्यम है।

आज दुनिया में लगभग साठ हजार भाषाएँ किसी न किसी रूप में बोली और समझी जाती हैं, लेकिन आने वाले समय में नब्बे प्रतिशत से अधिक का अस्तित्व ख़तरे में है। भाषाओं के इस विलुप्तीकरण के दौर में हिंदी अपने को न केवल बचाने में सफल हो रही है, बल्कि उसका उपयोग अनुप्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। यह भाषा लगभग डेढ़ हजार वर्ष पुरानी है और इसमें डेढ़ लाख शब्दावली समाहित है।

संप्रति हिंदी को अंतरराष्ट्रीय दर्जा प्राप्त है, क्योंकि यह अनेक विदेशी भाषाओं को न केवल स्वीकार करती, बल्कि विश्व की समस्त भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता रखती है। हिंदी के विकास के लिए विश्व की पैंतीस सौ विदेशी कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया जा चुका है। यह संख्या भी कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। विश्व हिंदी का केंद्रीय सचिवालय मॉरीशस में बनना और हिंदी को प्रौद्योगिकी से जोड़ने के लिए किए जाने वाले सतत् प्रयास इसे संयुक्त राष्ट्र की भाषाओं में स्थान दिलाने का प्रयास है। बाजार के कारण भी हिंदी का प्रचार-प्रसार व्यापक हो रहा है।

संपर्क भाषा के रूप में स्थापित होती हिंदी :

आज वैश्विक फलक पर हिंदी स्वयं को एक संपर्क भाषा, प्रचार भाषा और राजभाषा के साथ-साथ वैश्विक भाषा

के रूप में स्वयं को स्थापित करती जा रही है। देखा जाए तो विश्व में चीनी भाषा के बाद हिंदी का दूसरा स्थान है। जयंती प्रसाद नौटियाल अपने सर्वेक्षण में तो हिंदी को प्रथम स्थान पर पहुँचने की बात करते हैं। इस क्रम में अंग्रेजी आज तीसरे पायदान पर है। विश्व के लगभग एक सौ चालीस देशों के लगभग पांच सौ केंद्रों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है, जहाँ न जाने कितने विद्वान अपना योगदान दे रहे हैं। कंप्यूटर, मोबाइल और आइ पैड पर हिंदी की पहुँच ने यह बात सिद्ध कर दी है कि आने वाले समय में इंटरनेट की भाषा अंग्रेजी न होकर हिंदी होगी।

छू रही है लोकप्रियता के आयाम :

अगर हिंदी के वैश्विक परिदृश्य पर बात करें तो जापान में हिंदी की पढ़ाई हिंदुस्तानी के रूप में सन् 1908 से प्रारंभ हुई, जिसे ज्यादातर व्यापार करने वाले लोग पढ़ाया करते थे, पर बाद में इसका पठन-पाठन विशेषज्ञ शिक्षकों द्वारा किया जाने लगा।

जापान में हिंदी का पठन-पाठन फिल्मी गीतों के माध्यम से किया जा रहा है। आज वहाँ सात एफएम रेडियो स्टेशन भारतीय संगीत का प्रसारण करते हुए जापान में हिंदी की उपस्थिति को दिखाते हैं। जापान में 1921 में नौ विदेशी भाषाएँ पढ़ाई जाती थीं, जबकि आज इनकी संख्या छब्बीस हो चुकी है, जिसमें हिंदी भी शामिल है। अगर संख्या बल पर ध्यान दें तो पूरे यूरोप की आबादी पैंतीस करोड़ है, जबकि भारत की जनसंख्या लगभग एक सौ करोड़ से ऊपर है। अगर यहाँ की आधी जनता भी हृदय से हिंदी को स्वीकार कर बोले तो यह हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए शुभ संकेत होगा।

अमेरिका में हिंदी फिल्मी गीतों के माध्यम से पढ़ाई जाती है और प्रवासी भारतवंशी हिंदी की अलख और संस्कृति को जगाए रखे हैं। अमेरिका में हिंदी के विकास में चार संस्थाएँ प्रयासरत हैं, जिनमें अखिल भारतीय हिंदी समिति, हिंदी न्यास, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति प्रमुख हैं। अमेरिका की भाषा नीति में दस नई विदेशी भाषाओं को जोड़ा गया है, जिनमें हिंदी भी शामिल है।

हिंदी शिक्षा के लिए डरबन में हिंदी भवन का निर्माण किया गया है और एक कम्युनिटी रेडियो के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। वे सोलह घंटे सीधा प्रसारण हिंदी में देते हैं। इसके अलावा हिंदी के गाने बजाए जाते हैं। मॉरीशस में हिंदी का वर्चस्व है तथा उनका संकल्प हिंदी को विश्व भाषा बनाने का है।

सन 1996 में वहाँ हिंदी साहित्य अकादमी की स्थापना हुई और उसकी दो पत्रिकाएँ बसंत और रिमझिम प्रकाशित हो रही हैं। अब तक हुए ग्यारह विश्व हिंदी सम्मेलनों में से तीन मॉरीशस में आयोजित हुए हैं। हिंदी के प्रयोग को लेकर इसे छोटा भारत भी कहा जाता है। सूरीनाम में भी हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार है।

पत्रिकाएँ बन रही सशक्त माध्यम :

दूर देश से निकलने वाली हिंदी पत्रिकाओं ने भी हिंदी को वैश्विक फलक पर ले जाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को बढ़ावा देने वाली संस्थाओं में अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति (संयुक्त राज्य अमीरात), मॉरीशस हिंदी संस्थान, विश्व हिंदी सचिवालय, हिंदी संगठन (मॉरीशस) हिंदी सोसाइटी (सिंगापुर), हिंदी परिषद (नीदरलैंड) आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आज हिंदी जो वैश्विक आकार ग्रहण कर रही है उसमें रोजी-रोटी की तलाश में अपना वतन छोड़कर गए गिरमिटिया मजूदरों के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता।

गिरमिटिया मजदूर अपने साथ अपनी भाषा और संस्कृति भी लेकर गए, जो आज हिंदी को वैश्विक स्तर पर फैला रहे हैं। मसलन, एशिया के अधिकतर देशों चीन, श्रीलंका, कंबोडिया, लाओस, थाइलैंड, मलेशिया, जावा आदि में रामलीला के माध्यम से राम के चरित्र पर आधारित कथाओं का मंचन किया जाता है। वहाँ के स्कूली पाठ्यक्रम में रामलीला को शामिल किया गया है। हिंदी की रामकथाएँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति का संवाहक बन चुकी हैं। रेडियो सीलोन और श्रीलंकाई सिनेमाघरों में चल रही हिंदी फिल्मों के माध्यम से हिंदी की उपस्थिति समझी जा सकती है।

सोवियत रूस और भारत की दोस्ती जगजाहिर है

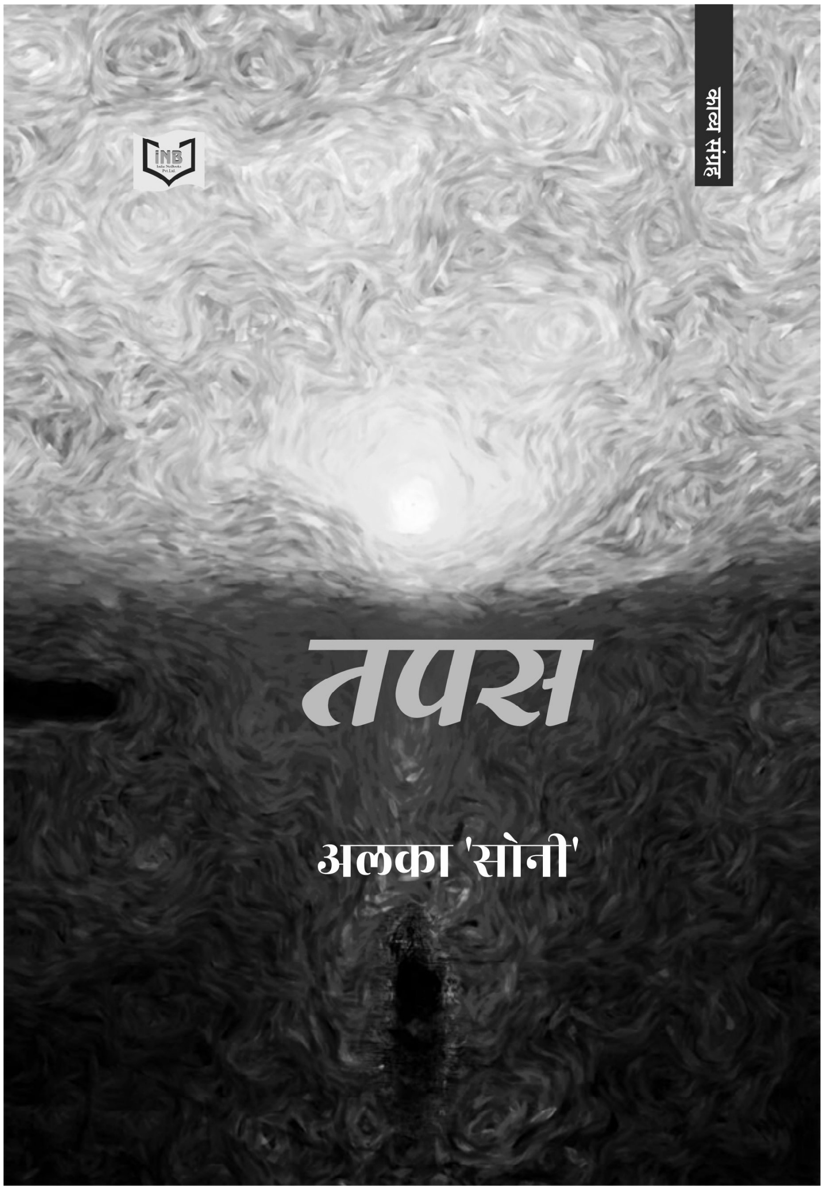

के विद्वान वी. चेरनीगोव, वी. क्रेस कोविन एवं बाबालिन हैं। रूस में हिंदी की एक बोली ताजिकी विकसित हुई है। इन लोगों के द्वारा गद्य एवं पद्य रचनाओं का रूसी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया जाना एक सराहनीय प्रयास है। पिछले कई दशकों से रूस में हिन्दी भाषा में विविध विषयों (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक) पर पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। इसके साथ ही समसामयिक पत्रिकाओं का प्रकाशन/वितरण भी होता रहा है। प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी पढ़ाने की उत्तम व्यवस्था रूस में विघटन के बावजूद आज भी सतत है।

यू.के. के अनेक हिस्सों में बड़ी संख्या में भारतीय रहते हैं, और लन्दन का तो एक हिस्सा ही जैसे भारतीय बहुल भू-खण्ड हो गया है। भारतीय बच्चों को मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाने की सुविधा प्रदान की जाए, इस ओर यू.के. सरकार का शिक्षा विभाग सचेष्ट है और मुझे यह स्वयं देखने का अवसर मिला कि राष्ट्रमण्डल सचिवालय भी इस विषय में रुचि ले रहा है।

क्योंकि इस मैत्री का आधार सांस्कृतिक रहा है। भारतीय लेखकों की रचनाओं के प्रति यहाँ शुरू से लगाव रहा है। यहाँ के सुधीजन सम्पूर्ण साहित्य (आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल) के प्रति रुचि एवं सम्यक ज्ञान रखते हैं। महाकवि तुलसीदास के रामचरितमानस का सफल रूसी अनुवाद वेरन्निकोव ने किया है। अन्य महत्वपूर्ण रूसी हिंदी

लन्दन और बर्मिंघम के इलाकों में बच्चों को हिंदी एवं भारतीय भाषा सिखाने की समुचित व्यवस्था के लिए सभी प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं।

विभिन्न संस्थानों, विद्यालयों में हिंदी भाषा पर आधारित कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इन कार्यक्रमों में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित भी किया जाता है। हम जीवन में कितना

भी आगे बढ़ जाएँ, लेकिन हमारी भाषा, संस्कृति और देश के लिए हमारे अंदर सम्मान होना चाहिए। हमारे देश में अनेक धर्मों को मानने वाले तथा भाषाओं को बोलने वाले लोग हैं।

हर भाषा का अपना इतिहास और साहित्य भंडार है। इन सब भाषाओं का अपना महत्व है लेकिन ये सभी भाषाएँ किसी राज्य विशेष में ही बोली जाती हैं, जबकि राजभाषा हिंदी का क्षेत्र सर्वाधिक व्यापक है।

वैज्ञानिक व सरल है हिन्दी :

इसे बोलने वाले सबसे ज्यादा हैं। साथ ही यह पूर्णतया वैज्ञानिक और सरल भी है। इसे बोलने पर हमें उतनी ही सहजता का अनुभव होता है जितना कि एक बालक को अपनी माँ की गोद में होता है।

इसका कारण यह है कि यह भाषा हमारे श्वास, रक्त और भावों में घुली हुई है, जबकि ऐसा अनुभव हमें अंग्रेजी के साथ नहीं होता है। उसे बोलने के लिए हमें यत्न करने पड़ते हैं। हिंदी के साथ हमारा अनौपचारिक रिश्ता है जबकि अंग्रेजी के साथ औपचारिक। हिंदी दिवस मनाने का तात्पर्य यह नहीं है कि हिंदी अन्य भाषाओं को उनकी कुर्सी पर से उतार स्वयं सिंहासनारूढ़ होना चाहती है। हिंदी की शत्रुता नहीं है किसी भाषा से।

राजभाषा घोषित होने के बाद भी कुछ व्यक्तिगत और राजनीतिक स्वार्थ के कारण हिंदी को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। हिंदी अपने अधिकारों के लिए युगों से संघर्षरत है। आज भी कुछ राज्य हिंदी को अपनाने से कतराते हैं। आखिर क्यों!!!!

जबकि यह घोषित राजभाषा है, फिर किसी को इस पर प्रश्नचिहृन नहीं खड़ा करना चाहिए। हिंदी विश्व में बोली जाने वाली चौथी प्रमुख भाषा है। जो नेपाल, मॉरीशस, पाकिस्तान, सूरीनाम और फिजी सहित अन्य देशों में भी बोली जाती है। हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो दुनिया की हर आवाज को लिखने में सक्षम है और हिंदी अपने आप में एक समृद्ध भाषा है।

हिंदी अपनी आंतरिक चुनौतियों से जूझते हुए आज राजभाषा ही नहीं, बल्कि विश्वभाषा बनने के निकट है। इसमें अन्य भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता है। यह हिंदी की सबसे बड़ी पहचान है। हिंदी में अनेक भारतीय भाषाओं में लिखे गए विद्वानों के ग्रंथों का अनुवाद कर इसे जन-सामान्य के पठन-पाठन के लिए सरल बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

ज्ञान के सभी अनुशासन अपनी ही भाषा में सम्मिलित किए जा सकते हैं। विश्व में हिंदी की उपस्थिति महत्वपूर्ण है। संसार में सभी भाषाओं का मूल स्वरूप खतरे में है और वे अपने लिपि संबंधी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं। ऐसे में इसे स्वस्थ रखने और पालने-पोसने के लिए युवाओं को आगे आना होगा। विदेशी साहित्य का हिंदी में अनुवाद और हिंदी साहित्य का विदेशी भाषाओं में अनुवाद आवश्यक है।

हिंदी आज सिर्फ साहित्य की भाषा नहीं, बल्कि बाजार की भी भाषा है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने विज्ञापनों को जन्म दिया, जिससे न केवल हिंदी का अनुप्रयोग बढ़ा, बल्कि युवाओं को रोजगार के नए अवसर भी मिले। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस बात से भली-भांति अवगत हैं कि भारत उनके उत्पाद का बड़ा बाजार है और यहाँ के अधिकतर उपभोक्ता हिंदीभाषी हैं इसलिए उन्हें अपना उत्पाद बेचने के लिए उसका प्रचार-प्रसार हिंदी में करना पड़ेगा।

बाजार की भाषा के रूप में हिंदी को स्वीकृति भले मिल रही है, लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कि बाजार हमेशा लाभ पर केंद्रित होता है और लाभ केंद्रित व्यवस्था दीर्घजीव नहीं होती। एक समय के बाद उसका पतन निश्चित है, इसलिए हमें हिंदी को ज्ञान और संचार की भाषा के रूप में विकसित करना होगा।

किसी देश के विकास के लिए आवश्यक है कि वहाँ ज्ञान-विज्ञान की भाषा जनमानस द्वारा ग्राह्य हो और वह उसे आसानी से समझ सके इसलिए हिंदी के उपभोक्तावादी रूप के विकास की चुनौतियों को समझना होगा और इसे ज्ञान की भाषा के रूप में विकसित करना होगा, तभी इसका भविष्य सुरक्षित हो सकता है।

हिमाचल साहित्य लेखन और समकालीन व्यंग्य

अशोक गौतम

हमारे विसंगत होते जीवन की सबसे बेहतर कोई साहित्यिक प्रस्तुति है तो वह व्यंग्य है। यह भी तय है कि ज्यों-ज्यों हमारे जीवन में विसंगतियाँ बढ़ती जाएँगी, साहित्य में त्यों त्यों व्यंग्य विधा और भी पुष्ट होती रहेगी। बेहतर व्यंग्य की पहचान यही होती है कि जैस- जैसे समय बदलता जाता है, वैसे वैसे उसकी धार और तेज होती जाती है। व्यंग्य बंद आँखों से देखे सपनों का काल्पनिक सच न होकर खुली आँखों से देखे सपनों का सच होता है जो हममें संघर्ष का हौसला बढ़ाता है।

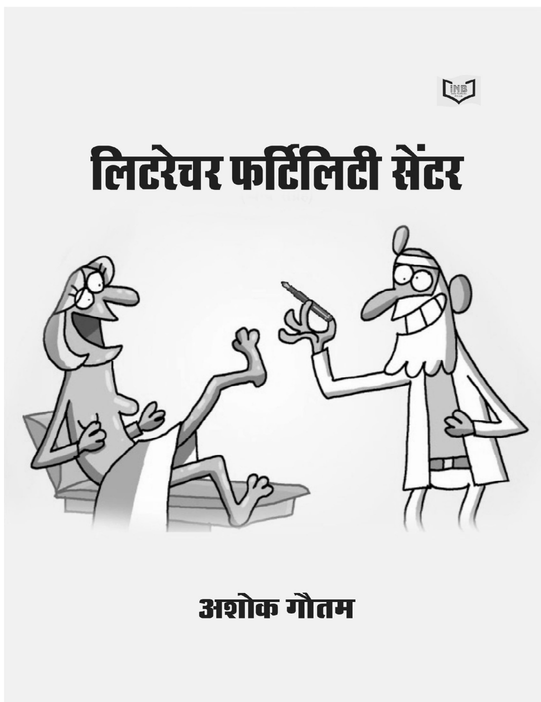

व्यंग्य हमारी मूर्छित सामाजिक चेतना को गुदगुदी करते हुए जगाने का काम करता है। व्यंग्य हमारी सामाजिक विसंगतियों और व्यक्तिगत बदतमीजियों पर हँसाते हुए हमें अपने से रूबरू कराता है। जब तक तथाकथित संभ्रांत जेब में लाख पर दिमाग में खोटी अठन्नी लिए खुद को भरमाते रहेंगे तब तक व्यंग्य पूरे जोश खरोश के साथ लिखा-पढ़ा जाता रहेगा। जब तक शासन प्रशासन जनता की आँखों में बंद करने का सुरमा डालता रहेगा तब तक व्यंग्य जनता की आँखें खोलने का साहसिक दायित्व निभाता रहेगा। असल में व्यंग्य भूमि को हमारा दोगलापन ही उर्वरक बनाता है।

जीवन और साहित्य में समकालीनता अपना विशेष महत्व रखती है। हर युग के साहित्य में समकालीनता में उसके काल खंड के तत्वों का समावेश रहता है। वह अपने समय की संगतियों में छुपी विसंगतियों को ईमानदारी से समेटे रहती है। हर साहित्यकार को अपने समय से बंधे होने के नाते अपने समय के प्रति ईमानदार रहना सही मायने में साहित्यकार होना है।

समकालीनता लेखन के संदर्भ में प्रयोग होने वाला बड़ा प्रचलित शब्द है। जिसका अर्थ है—जो उसी काल में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रह रहे हैं। उस काल खंड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति।

समकालीनता वर्तमान के विभिन्न जीवन संदर्भों की अभिव्यक्ति कही जा सकती है। समकालीनता से अभिप्राय एक समय विशेष से है। इसका प्रमुख आयाम है हमारे आसपास के जीवन के हर पल बदलने वाले रूपों और उनका पूरी ईमानदारी से प्रस्तुतीकरण।

हम सब अपने-अपने समय में जीते हैं। शब्दलिपि होने के चलते साहित्यकार अपने समय को अपने हिसाब से अपनी कलम के माध्यम से अपनी ईमानदारी के साथ अपने आग्रह पूर्वाग्रह से छिपते-छिपाते रचते, शब्दबद्धा करते हैं। हम अपने समय के बुरेपन से न बचते हुए भी बचने की कोशिश करते हुए मने, बेमने उसी में बसने को विवश हैं। ये हमारी विवशता है या आँखें मूंदा सच, कुछ सही सही नहीं कहा जा सकता।

जीवन का हर क्षण परिवर्तनशील है। यही जीवन की सबसे बड़ी विशेषता भी है। जीवन क्रम में निरंतर आने वाले उतार-चढ़ावों पर ही समकालीनता की अवधारणा जन्म ले

विकसित होती है। इसी समकालीनता के चलते जीवन और साहित्य के उद्देश्य बदलते रहे हैं। समकालीनता अपने समय के मूल्यों, संघर्षों, संगतियों, विसंगतियों का विचार के धरातल पर साहित्यिक आकलन है।

जब कोई साहित्यकार अपने बूते सामाजिक और लेखकीय संभावनाओं के द्वार खुले रख वर्तमान को अपनी कलम के माध्यम से बदलने में जुटता है तो सीधे सादे शब्दों में वह उस वक्त केवल समकालीनता का निर्वाह कर रहा होता है, और कुछ नहीं।

इतिहास गवाह है कि जीवन के मूल्यों के साथ साहित्य के प्रसंग भी बदलते रहे हैं। इन्हीं मूल्यों के बदलाव के चलते साहित्य में भी बदलाव आता रहा है। समय के साथ जीवन और साहित्य में बदलाव शाश्वत सत्य है। इसे कोई नहीं रोक सकता। न ये, न वे, न खुद साहित्य और न समय ही।

वर्तमान समय में निरंतर बदल रही राजनीति, समाज और संस्कृति ने जीवन को बेहद संघर्षपूर्ण बना दिया है। इन संघर्षों की असफलताओं से उपजी मानवीय विसंगतियों के आगे हथियार डालने के बाद भी अभी आदमी मरा नहीं है। यही उसके आदमी होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। उसके समाज की खंडित होती विरासतें एक-एक कर पीछे छूटती जा रही हैं पर वह आगे बढ़ना चाहता है पूरी जिजीविषा के साथ। वैसे तो साहित्य की सभी विधाएँ अपने साहित्यिक धर्म को अपने ढंग से निभातीं अपने समाज की संगतियों-विसंगतियों का कच्चा-पक्का चिट्ठा उसके सामने रखती रही हैं ,पर व्यंग्य जिस शिद्दत से समाज के ढोल के पोल उसके सामने उसे हँसाते हुए, गुदगुदाते हुए खोलता है, वह अद्वितीय है। व्यंग्य हास्य के स्तर पर हँसाता है तो वैचारिक स्तर पर भीतर ही भीतर रूलाते हुए सोचने के लिए न चाहते हुए विवश करता है। व्यंग्य का अपनी बात कहने का ढंग अन्य साहित्यिक विधाओं से बिल्कुल जुदा है। बाहर से बात भले ही वह निर्दयतापूर्ण सलीके से करे, पर भीतर से वह रहता दयालु ही है। प्रहार करते हुए भी उसमें धैर्यपूर्वक तटस्थ बने रहने की जो असीम शक्ति होती है ,वही उसे दूसरी साहित्यिक विधाओं से अलग और महत्वपूर्ण कर देती है।

मनुष्य हो या कोई भी साहित्यिक विधा। भले ही उसका उनका एक कदम अतीत पर टिका हो, उसके बाद भी उसमें/उनमें अतीत से स्वतंत्र होने की छटपटाहट होती रहती है। स्वतंत्रता की यही छटपटाहट नए को जन्म देती है। वह नये समाज के लिए कितना सही कितना गलत होता है, यह अलग प्रश्न है। इसी क्रम में समकालीन व्यंग्य भी अपने समय को नए तेवर देता पिछले चरण के व्यंग्य से बहुत कुछ लेने के बाद भी उससे अलग हो रहा है।

व्यंग्यकार के लिए व्यंग्य अब केवल हँसाने-बहलाने के लिए उपयोग किया जाने वाला झुनझुना ही नहीं अपितु जीवन के बदले हुए यथार्थ को वाणी देने का सशक्त हथियार भी है। आज व्यंग्य का कर्तव्य बदल रहा है, दायित्व बदल रहा है, दिशा बदल रही है, दशा बदल रही है और उसे आत्मसात् करते हुए समाज की सोच भी कहीं न कहीं बदल ही रही है। समकालीन व्यंग्य अपने समय के वांछित-अवांछित दबावों से निर्मित मनुष्य और समाज का वह सृजनात्मक, वैचारिक आंदोलन बन गया है जो हास्य, आक्रोश और समझ को एकसाथ जन्म देता है। समकालीन व्यंग्य अपने समय के सामाजिक अध्ययन के साथ ही साथ समाज का विभिन्न कोणों से किया साहित्यिक, वैचारिक चिंतन है। इसी के परिणामस्वरूप आज के व्यंग्य की सामाजिक भूमिका पहले के व्यंग्य की अपेक्षा अधिक विस्तृत हो गई है या पहले से अधिक विस्तृत हो रही है। आज लिखा जाने वाला व्यंग्य जीवन के यथार्थों से दो कदम आगे बढ़ता हुआ जीवन के कटु यथार्थों बड़ी साफगोई से अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। बदलते समय के साथ व्यंग्य की सामाजिक भूमिका तेजी से बदली है। एक समय में मान्य रही पर आज अमान्य हो रही मान्यताओं के टूटने से जीवन में निराशा, संत्रास, अनिश्चितताएँ जन्म ले रही हैं। इन स्थितियों के बीच बेहद अपनेपन से भरे बेगानेपन में हरपल बदलती संस्कृति से उपजती राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजार्थिक विषमताओं के प्रति तीव्र असंतोष में धर्मनिरपेक्षता का मुखौटा ओढ़े अपने अपने धार्मिक और मानवीय स्वार्थों ने पूरे समाज की चूलें हिला कर रख दी हैं। समकालीन व्यंग्य गंभीरता लिए हँसते हँसाते इन्हीं बहुआयामी चिटकते तत्वों

के सत्यों से हमें रूबरू करवाने की कोशिश है।

आज का व्यंग्य कल के व्यंग्य के साथ रहते हुए भी हर स्तर पर उससे अलग होने का माद्दा रखता है, उसमें अतीत के व्यंग्य से रहते हुए उससे अलग होने की छटपटाहट साफ देखी जा सकती है, शिल्प और विचार दोनों स्तरों पर। वह जानता है कि समकालीन परिवेश से गहरे से, मन से जुड़ कर ही अपने होने को सार्थक किया जा सकता है।

निर्विवादित है कि व्यंग्य की विसंगतियों पर मारक क्षमता अन्य साहित्यिक विधाओं के मुकाबले अधिक रही है। यही वजह है कि कल तक जो व्यंग्य कभी मात्र एक शैली हुआ करता था, वह अब सामाजिक मांग, सरोकारों के चलते अपने स्वतंत्र रूप में विकसित हो चुका है। अब वह केवल शैली मात्र नहीं, अपने आप में एक भरी पूरी साहित्यिक विधा है। कारण, उसने अपने समय की कुरूपताओं और दुर्बलताओं को बड़ी शिद्दत से मुस्कुराते हुए समाज के सामने अपनी उस शैली में रखा है जिनकी ओर से मुँह फेर वह अपने होने को मानने लगा था। आज का व्यंग्यकार व्यंग्य को केवल हास-परिहास ही नहीं मानता, वह उससे भी आगे उसे वैचारिक आक्रोश में तब्दील करने का साहित्यिक औजार मानता है।

राष्ट्रीय स्तर के व्यंग्य लेखन के अनुरूप हिमाचल प्रदेश के समकालीन व्यंग्य लेखन ने भी अपने परिवेश के जिस जीवन की हाहाकार, दुत्कार, पाखंडी सत्कार को अपने चारों ओर महसूस किया है, उसे अपने व्यंग्य लेखन के माध्यम से वह पूरी संजीदगी, दम-खम के साथ, खुद पर हँसते हुए, इनको उनको सादर हँसाते हुए वैचारिक आधार दिया है।

1978 में हिमाचल प्रदेश में अपर्णा साहित्यिक मंच के उदय के साथ ही प्रदो में साहित्य लेखन ने नए जोश के साथ जोर पकड़ा था। उस समय इस मंच के साथ बहुत से युवा साहित्यकार जुड़े थे, जिसके चलते हिमाचल प्रदेश के साहित्य लेखन में उस समय एक विशेष हलचल दिखाई दी थी। हिमाचल साहित्य लेखन के संदर्भ में प्रदेश में रचे जा रहे व्यंग्य की बात की जाए तो विगत शताब्दी के सातवें दशक से कविताओं में हास्य व्यंग्य की अभिव्यक्ति दिखनी आरंभ हो गई थी, पर बहुलता हास्य प्रधान कविताओं की ही रही। सही मायने में नब्बे के दशक के आरंभ से हिमाचल प्रदेश के व्यंग्यकार राष्ट्रीय स्तर पर व्यंग्य लेखन के साथ अपने कदम मिलाते दिखते हैं। इसी दशक के अंत में रत्न सिंह 'हिमेश' ने अपने व्यंग्य संकलन 'ठुणियानामा' के साथ (1987) पाठकों के बीच दस्तक दी। वैसे रत्नसिंह हिमेश ने 1955 से नियमित रूप से कहानी, नाटक लिखना आरंभ कर दिया था। 1957 से ही आकाशवाणी शिमला से इनकी कहानी, नाटक, रूपक प्रसारित होने लग गए थे जिनमें कहीं न कहीं हास्य-व्यंग्य का पुट रहता था। इसी दशक में इन्होंने 'मैं भी मुँह में जुबान रखता हूँ' कॉलम के अंतर्गत हिमाचल प्रदेश से निकलने वाले साप्ताहिक गिरिराज में राजनीतिक विसंगतियों से प्रभावित खूब व्यंग्य लिखे। इनका व्यंग्य लेखन जनसत्ता के अंतरीय पेज हिमसत्ता में ठगड़े का रगड़ा कॉलम के रूप में भी अपने समय के पाठकों के बीच बहुत चर्चित हुआ। इस कॉलम को वे ठगड़ाराम बकलमखुद के नाम से लिखते थे जिसकी भाषा हिंदी और उनकी अपनी बोली का मणिकांचन मिश्रण थी। संक्षेप में कहें तो उन्होंने अपने व्यंग्य लेखन के माध्यम से व्यंग्य की एक नई भाषा ईज़ाद की, जिसे पाठकों ने बहुत सराहा।

इसी दौरान डॉ. आत्माराम, ओमप्रकाश शांत, देशराज चैतड़ू, प्रेम पखरोलवी ने ललित निबंधों से हटकर छिटपुट व्यंग्य भी लिखे। डॉ. ओमप्रकाश सारस्वत ने दैनिक ट्रिब्यून से अपनी व्यंग्य-यात्रा आरंभ करते हुए व्यंग्य लेखन की परंपरा को हिमप्रस्थ, गंगा, व्यंग्य यात्रा व्यंग्य की एक मात्र राष्ट्रीय पत्रिका के माध्यम से आगे बढ़ाया। अब तक इनके दो व्यंग्य संग्रह 'महातरू और मेघमन' (2010) 'आशीर्वाद ही आशीर्वाद' (2017), 'हमसे बढ़कर कौन'(2022) 'गई भैंस पानी में' (2023) प्रकाशित हो चुके हैं।

गुरमीत बेदी ने 1985 से दैनिक भास्कर से व्यंग्य लेखन का शुभारंभ करते सरिता, नवभारत टाइम्स, दैनिक जागरण, अमर उजाला में एक से बेहतर एक व्यंग्य पाठकों को दिए। इनकी व्यंग्य-यात्रा आज भी जारी है। अब तक इनके तीन व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'इसलिए हम हंसते हैं' (2007), 'नाक का सवाल' (2007), 'खबरदार जो व्यंग्य लिखा' (2011)। प्रभात कुमार विगत शताब्दी के

अंतिम दशक के मध्य से दैनिक ट्रिब्यून, अमर उजाला, प्रभात खबर, हरिभूमि, सरिता में जमकर व्यंग्य लिख रहे हैं। 2018 में इनका पहला व्यंग्य-संग्रह 'ऐसा देस है मेरा' प्रकाशित हुआ तो 2022 में 'हमारे संज्ञान में नहीं आया है'। सुदर्शन वशिष्ठ हिमाचल प्रदेश के व्यंग्य लेखन में चिरपरिचित हस्ताक्षर हैं। इन्होंने 1972 के आस-पास हास्य व्यंग्य लिखना आरंभ किया। जाह्नवी, हिमप्रस्थ और सरिता, दैनिक ट्रिब्यून में इनके व्यंग्य विशेष रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। अब तक इनके तीन व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं– 'संत होने से पहले' (2003) और 'बेहतरीन व्यंग्य' (2021) बाथरूम में हाथी (2022) और संपादित हिमाचली व्यंग्यकार (2022)। गुरुदत्त शर्मा ने भी बेहतर व्यंग्य लिख हिमाचल की व्यंग्य संपदा में अभिवृद्धि कर महत्वपूर्ण समकालीन व्यंग्य के विकास में योगदान दिया है। अब तक इनके दो व्यंग्य संग्रह– 'विकास जारी है' (2007), 'जनता सोच रही है' (2017) प्रकाशित हो चुके हैं।

सुदर्शन भाटिया विभिन्न साहित्यिक विधाओं को लेकर अब तक सौ से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं। व्यंग्य लेखन के संदर्भ में इनका एक व्यंग्य-संग्रह 'थाली का बैंगन' प्रकाशित हुआ है। अशोक गौतम ने 1982 के आसपास से व्यंग्य लिखना आरंभ किया। पहला व्यंग्य दैनिक वीर प्रताप में प्रकाशित हुआ। गिरिराज, हिमप्रस्थ, सोमसी, विपाशा, दैनिक ट्रिब्यून से होते हुए दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, ब्लिट्ज, नूतन सवेरा, नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान, सरिता, जाह्नवी, अमर उजाला, दिव्य हिमाचल, हिमाचल दस्तक, हरिभूमि, सुबह सवेरे, नई दुनिया, राज एक्सप्रेस, जनसंदेश टाइम्स, वॉयस ऑफ लखनऊ, जनवाणी, नया ज्ञानोदय, विभोम स्वर (कनाडा), ताप्ती लोक, गर्भनाल, तुलसी प्रभा में इनके व्यंग्य नियमित प्रकाशित हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त इनके व्यंग्य ऑन लाइन पत्रिकाओं यथा– प्रवक्ता डॉट कॉम, लेखनी (लंदन), द अम्स्टेल गंगा (नीदरलैंड), साहित्यकुंज (कनाडा) एवं रचनाकार पर सहज ही पढ़े देखे जा सकते हैं। सन् 2015 से 2019 के बीच व्यंग्यकार ने 25 व्यंग्य संग्रह– 'लट्ठमेव जयते', 'गधे ने जब मुंह खोला', 'झूठ के होलसेलर', 'खड़ी खाट फिर भी ठाठ', 'ये जो पायजामे में हूं मैं', 'साढ़े तीन आखर अप्रोच के', 'मेवामय ये देश हमारा', 'फेसबुक पर होरी', 'पुलिस नाके पर भगवान', 'वफादारी का हलफ़नामा', 'नमस्कार को पुरस्कार', 'आओ दलाली खाएं', 'भक्ति बिनु मुक्ति नाहीं गोपाला', 'सदाचार का सैनिटाइजर', 'डुप्लिकेट चाबियों का माहिर', 'श्री श्री एक सौ साठ श्री', 'ओम् व्हाट्स्यपाय नमः', 'ओ तेरी', 'पांव दबा, पांव जमा', 'हवा भरने का इल्म', 'गरम जेबठंडी, रजाई', 'अभी तो मैं जवान हूँ', 'सिंक पर बॉस', 'चिकन शिकन ते हिंदी सिंदी', 'मक्खन जिंदाबाद', हवा भरने का इल्म, पूंछ चमकाने वाला तेल, श्रीजुगाड़मय सब जानी, लिटरेचर फर्टिलिटी सेंटर सहित 46 व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

हिमाचल प्रदेश की व्यंग्य साहित्य संपदा में श्री वृद्धि करने वाले अन्य व्यंग्यकारों में मुकेश विग, अजय पराशर, गंगाराम राजी, डॉ. प्रत्यूष गुलेरी, सतीश चंद्र पाल, कुल राजीव पंत, रत्नचंद रत्नेश, अश्विनी कुमार, राजीव कुमार त्रिगर्ती, मृदुला श्रीवास्तव, पवन चौहान अपने-अपने व्यंग्य लेखन के माध्यम से समाज की दुखती रगों पर हाथ धर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। प्रदेश के इन व्यंग्यकारों ने अपने व्यंग्य लेखन के माध्यम से व्यंग्य की बदलती सामाजिक चुनौतियों के संकट को साहस के साथ स्वीकारा है।

हिमाचल प्रदेश में व्यंग्य लेखन के लिए आधारभूमि तैयार करने का श्रेय गिरिराज और हिमप्रस्थ को जाता है। गिरिराज और हिमप्रस्थ ने जहाँ एक ओर प्रदेश में व्यंग्यकारों की नई पौध तैयार की है वहीं दूसरी ओर उनको व्यंग्य विधा में नए प्रयोग करने के अवसर भी दिए हैं।

इनके अतिरिक्त प्रदेश के अग्रणी दैनिक पत्रों में दिव्य हिमाचल सहित दैनिक जागरण, हिमाचल दस्तक, आपका फैसला, दैनिक भास्कर एवं कुछ हद तक हिमाचल दस्तक ने भी अपने व्यंग्य कॉलम के माध्यम से व्यंग्य विधा को प्रदेश के पाठकों के बीच लोकप्रिय बना उसे नई पहचान देने का स्तुत्य कार्य किया है। आज हर व्यक्ति जिंदगी के विभिन्न मोर्चों पर अपने-अपने अस्तित्व को बनाए/बचाए रखने के लिए कभी न खत्म होने वाली विरोधाभासी लड़ाई पहले से अधिक जुझारू हो लड़ रहा है इस उम्मीद के साथ कि हो सकता है, आने वाले कल उसकी जीत हो। समकालीन

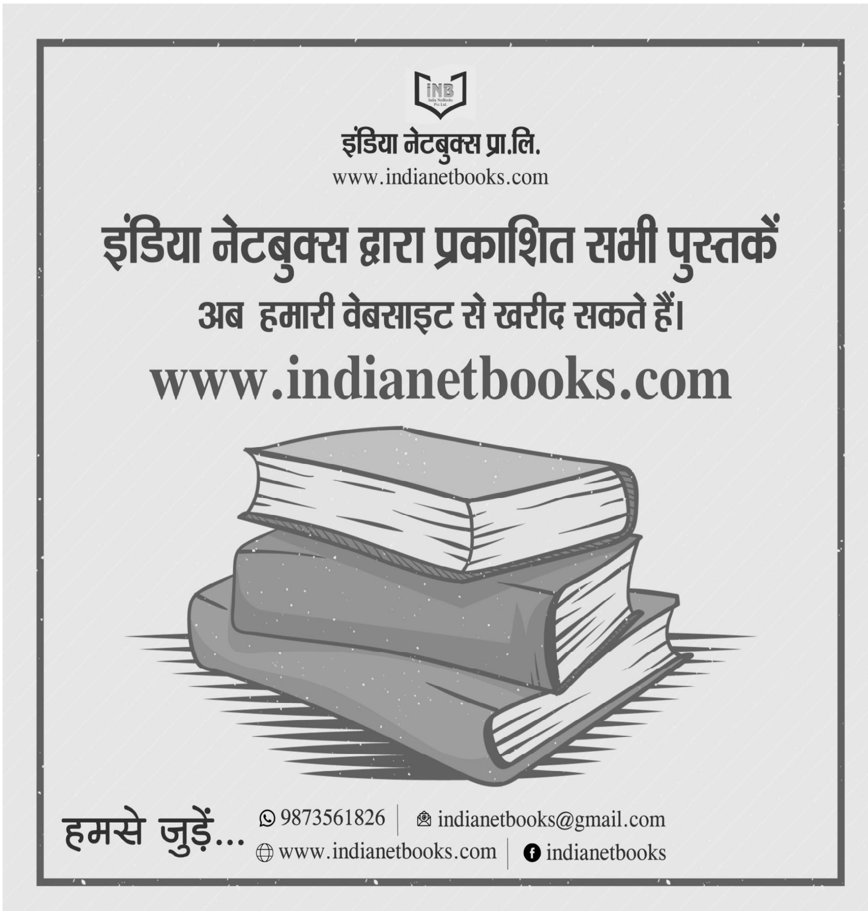

व्यंग्य हर एक की इस विरोधाभासी लड़ाई में सहभागी बना हुआ है। एक मुख्य बात और! आज का व्यंग्यकार चाहते हुए भी राजनीति को अपने व्यंग्य लेखन से इसलिए अलग नहीं कर पा रहा है क्योंकि राजनीति हर तरह के जीवन का केंद्र होकर रह गई है। राजनीति का हर वर्ग को गढ़ने में बहुत बड़ा हाथ है। यही वजह है कि आज व्यंग्यकार चुनावों की धंधेबाजी, राजनीतिज्ञों द्वारा चुनाव में जनता से हवाई वादे करना, सत्ता में बने रहने के लिए ऐसा-ऐसा करना जो कि कल्पना से भी परे की बात हो, को अपने व्यंग्य लेखन में बहुतायत में स्थान दे रहा है ताकि पाठक उनकी चालाकियाँ समझ सकें।

निष्कर्ष : वर्तमान में प्रदेश स्तर पर लिखा जा रहा व्यंग्य, व्यंग्य विधा के भविष्य के लिए सुखद संकेत है। व्यंग्य की विषयानुरूप दिखती नित व्यंजनामयी भाषा, समृद्ध होते शिल्प विधान ने व्यंग्य को आज जीवन के इतने करीब ला दिया है कि व्यंग्य के पाठकों का अपना एक अलग संसार बस चुका है। कल तक का व्यंग्य से चिढ़ने वाला आज हर कोई उस संसार का नागरिक होना चाह रहा है। व्यंग्य की भाषा विचारों के वहन में आज विशेष भूमिका निभा रही है। आज का व्यंग्य समाज में अपनी बदलती भूमिका निभाने हेतु अपने साथ बहुत-सी असरदार कलमें लिए सहर्ष तैयार है। ऐसे में असरदार कलमों के बने रहने की जहाँ संभावनाएँ प्रबल हैं, वहाँ उनके लिए अभिव्यक्ति के खतरे, चुनौतियाँ भी कम नहीं। जब कोई विधा पाठकों के दिमाग में हलचल करने लगे तो पाठकों को अपनी पाठकीय विधा से उम्मीदें और बढ़ जाती हैं। तब उस विधा को समाज की हर विसंगति की नब्ज को बड़ी बारीकी से टटोलना लाज़िमी हो जाता है। समाज सापेक्ष साहित्यकार ऐसा करता भी है। क्योंकि उस स्थिति में तब यही उसका एकमात्र लेखकीय धर्म और कर्म शेष बचता है। वक्त के बदलते राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृश्य-परिदृश्य में अपनी बदलती भूमिका के लिए हरदम तैयार रहना, अपने और अपने समय के साथ लेखकीय एवं पाठकीय न्याय करना है।

डेल्फी (ग्रीस) में शिवलिंग

सन्तोष खन्ना

6 जून से 12 जून, 2019 को मुझे एथेंस (ग्रीस) की साहित्यिक यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह यात्रा अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के 17वें कार्यक्रम के सिलसिले में थी और इस में विधि भारती परिषद तथा कुछ अन्य संस्थाएँ भी जुड़ी थीं। यात्रा के आरंभ में 7 जून, 2019 को एथेंस में एक आलीशान टाइटेनिया होटल की दसवीं मंजिल पर एक साहित्यिक कार्यक्रम का भव्य आयोजन किया गया जिसमें कुछ लेखकों को पुरस्कार और सम्मान अर्पित किये गये और अनेक लेखकों की पुस्तकों का लोकार्पण भी हुआ। विधि भारती परिषद् की ओर से राष्ट्र भारती सम्मान कवि, लेखक, अनुवादक और साथ ही उच्च कोटि की नृत्यांगना सुश्री ममता अहर को प्रदान किया गया। यहीं नहीं, पिछले वर्ष रुस यात्रा के दौरान मैंने वहाँ मंच से घोषणा की थी कि मैं अपने स्वर्गीय पति श्री नरेंद्र देव खन्ना के नाम पर एक पुरस्कार प्रारंभ करना चाहती हूँ। इस वर्ष एथेंस यात्रा के दौरान साहित्यिक कार्यक्रम में मेरे पति की स्मृति में प्रथम नरेंद्र देवश्री स्मृति पुरस्कार हिंदी और राजस्थानी भाषा के ख्यात कवि अंबिका दत्त चतुर्वेदी के कविता संग्रह 'कुछ भी स्थगित नहीं' (सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर से प्रकाशित) को दिया गया। श्री चतुर्वेदी को मानपत्र, सम्मान राशि 11,000 रूपये एवं प्रतीक चिन्ह के साथ यह सम्मान ग्रीस के ख्यात भाषाविद्, लेखक Professor Dimitrios Vassiliadis, President, Indo–Hellenic Society for Culture and Development, ELINEPA) के हाथों प्रदान किया गया। इसी कार्यक्रम में मुझे भी विधागत उपलब्धि के लिये सलेक चंद जैन स्मृति सृजन पुरस्कार प्रदान किया गया। उस दिन एथेंस (ग्रीस) यात्रा के दौरान होटल टाईटेनिया में हुए पूरे दिवस चले अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन के दौरान यूनान के कई लोगों ने हिस्सा लिया। यहाँ मैं केवल उल्लेख कर रही हूँ एक ऐसी ग्रीक महिला का जो कार्यक्रम में प्रातः दस बजे से रात समापन समय लगभग दस बजे तक रहीं। दोपहर में वह अचानक भारतीय सूट में दिखी तो वह उस में बहुत सुंदर और सौम्य लग रही थी बल्कि पूरी तरह भारतीय लग रही थीं। तब मैने उससे बात करते हुये पूछा कि आप क्या करती हैं तो उसका उतर सुन कर बहुत प्रसन्नता हुई जब उसने बताया कि वह योग टीचर है एवं सब को योग सिखाती हैं। बाद में कार्यक्रम में उसने ओम भूर्भुवा स्वाह का मंत्र (गायत्री मंत्र) का गायन बहुत ही सुंदर और प्रमाणिक ढ़ंग से किया कि हम सब दंग रह गये। योग दिवस पर मुझे उसकी याद आती है कि उस दिन भी वह एथेंस में सब को योग करा रही होगी। योग दिवस पर उस ग्रीक महिला को नमन। यूनान की यह केवल साहित्यिक यात्रा ही नहीं थी बल्कि उसमें वहाँ के महत्वपूर्ण दर्शनीय पर्यटक स्थलों का भ्रमण भी शामिल था। विश्व की सुकरात, प्लेटो और अरस्तु की इस प्राचीन सभ्यता स्थली में अनेक महत्वपूर्ण स्थलों को हमने देखा। जब हम यूनान के दक्षिण में वहाँ के प्राचीन शहर डेल्फी के प्राचीन भग्नावशेष देखने गये तो मुझे वहाँ कुछ अनिवर्चनीय और अद्‌भुत अनुभव हुए, वहीं आप सब के साथ चाहती हूँ। उस दिन हम सब सुबह 9 बजे बस से रवाना हो गये थे। बस का सफर भी अपने आप में बड़ा आनन्दकर था क्योंकि उस खूबसूरत सड़क के दोनों ओर रंग बिरंगे फूल शोभायमान हो रहे थे और कहीं पहाड़ थे तो कहीं भूमध्यसागर के नीलवर्ण जल के टापू नजर आ रहे थे। डेल्फी शहर यूनान की राजधानी एथेंस से कोई 200 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। रास्ते में पहले एक पहाड़ी पर प्राचीन भग्नावेश देखने जाना था। उस पहाड़ी की चढ़ाई काफी कठिन थी। मैंने कोई 100 मीटर की ही चढ़ाई की तो मेरा सांस काफी फूलने लगा था, दल के एक दो और सदस्यों ने भी ऊपर जाने का विचार स्थगित कर दिया और मैं भी वापस आ कर पेड़ों के नीचे बैठ गई। धूप तेज थी किंतु पेड़ों के नीचे बैठ कर शीतल पवन के झोंके मन आत्मा को शांति पहुँचा रहे थे। फिर प्रदूषण बिल्कुल नहीं था। वहाँ एक दो

घंटे कैसे बीत गये, पता ही नहीं चला। जब सब लौट आये तो हम सब बस में सवार हो गये और बस भ्रमण के अगले पड़ाव के लिये चल पड़ी।

अगला पड़ाव डेल्फी भ्रमण था।

डेल्फी ग्रीस के दक्षिण में परनासेस पहाड़ी पर बसा था जिसके अब पुरातत्व अवशेष वहाँ पर हैं। यहाँ ऊपर पहाड़ी पर अपोलो का मंदिर है। यहाँ देववाणी स्थल है और साथ है वह स्थल जो पृथ्वी का नाभी स्थल कहलाता है। डेल्फी के भग्नावशेष देखने के लिये भी परनासेस पर्वत की चढ़ाई करनी थी। आरंभ में सीढ़ियाँ थीं और उसके बाद थे चढ़ाई करने के रास्ते और बीच-बीच में सीढ़ियाँ। चलते-चलते मुझे यहाँ भी थकान लगने लगी। धूप भी बहुत तेज थी। मुझे एक स्थल पर एक पेड़ नजर आया और मैंने सोचा कि इसके नीचे कुछ समय विश्राम किया जाये। साथ के सभी लोग रुके नहीं, वह सीढ़ियाँ चढ़ते गये। मैं ज्यों ही पेड़ के पास पहुँची, वहीं से नीचे का सुंदर नज़ारा नज़र आ रहा था। सामने भी ऊँचे ऊँचे सुंदर सुरम्य पहाड़ों की शृंखला थी और एक ओर नील वर्ण जल का विस्तार था जिसका कोई अंत का सिरा नज़र नहीं आ रहा था। वह वस्तुतः मेडीट्रेनियन सागर ही था। जिसका एक छोर मैंने तब देखा था जब हम वर्ष 2017 में इजिप्ट की साहित्यिक यात्रा पर गये थे और वहाँ हम वहाँ के प्रसिद्ध शहर अलेक्जेंडरिया देखने गये थे। वहाँ एक तो हमने विश्व का सबसे बड़ा पुस्तकालय देखा और साथ ही इस शहर से साथ लगते विशाल भूमध्यसागर को भी देखा था। मैं सोच रही है कि ईश्वर ने हर स्थान और देश को प्रकृति की अनुपम और अनोखी सौगात प्रदान की है। देखा जाए तो समूची धरा स्वयं में एक अनोखे सौंदर्य का प्रतिमान है। भारत हमारा बेहद खूबसूरत है परंतु यूनान भी कम सुंदर नहीं है। भूमध्यसागर उसके चारों ओर लहरा रहा है जिसके बीच कोई 264 छोटे बड़े द्वीप हैं। खैर, अभी मैं पेरनासेस पर्वत पर अपोलो मंदिर और पहाड़ की चोटी पर बने एक अनोखे रंगमंच और स्टेडियम देखने जाने वाली थी। तभी मेरी नजर वहाँ लगे पत्थर के शिलालेख पर पड़ी। उस पर लिखा था कि स्वर्ग से देवताओं ने एक दैवी पत्थर फेंका था। देवता पृथ्वी के केंद्र अर्थात् नाभी स्थल को जान लेना चाहते थे और वह पत्थर वहीं डेल्फी में उसी स्थान पर गिरा था जहाँ मैं उस समय खड़ी थी। वहीं पृथ्वी का केंद्र यानी कि नाभि स्थल था। मैंने उस पत्थर को देखने के लिये नजर उठाई तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि वहाँ थोड़े-से ग़ज की दूरी पर एक लौह स्टैंड पर एक बड़ा-सा गोलाकार पत्थर रखा है। मैं उस पत्थर के पास गई और उसे हाथ से स्पर्श भी किया। तभी एकाएक मेरे मानस में एक विचार कौंधा या कि एक अहसास हुआ कि यह दैवी पत्थर जिसे देवताओं ने स्वर्ग से फेंका था, जिसे यहाँ दैवी पत्थर की तरह दर्शाया गया है, शिवलिंग है या शिवलिंग की तरह प्रतीत हो रहा है। इस अहसास के साथ उस समय एक अनिवर्चनीय, अद्भुत और अविश्वसनीय स्फुरण मेरे पूरे व्यक्तित्व को अवेष्ठित कर गया और मेरे मुँह से अंग्रेजी के यह शब्द निकले I have reached the Ultimate. I need not go up further. अर्थात् मैंने परम सत्य को प्राप्त कर लिया है। अब कुछ देखना या पाना शेष नहीं है। उन चमत्कृत क्षणों में एक अनोखे अह्लाद की भावना से अभिभूत मुझे यहीं लग रहा था कि मेरा शारीरिक अस्तित्व कहीं तिरोहित हो गया है। मुझे चारों ओर गगन से धरा और चारों दिशाओं में बस मेरा अपना सूक्ष्म ऊर्जिस्वत रुप उपस्थित लग रहा था। फिर एक ही भाव उमड़ रहा था कि मैं आने जाने वाले सब को बताऊँ कि यहाँ शिव स्वयं मौजूद हैं, यह शिवलिंग है। भारत में बारह ज्योतर्लिंग हैं क्या यह उसी तरह का तेरहवां ज्योतिर्लिंग है। एक समूह के साथ वहाँ से निकल रहे एक गाइड से मैंने अंग्रेजी में पूछा, क्या यह शिवलिंग नहीं है जैसा कि भारत में होता है। उसका उत्तर 'हाँ' में था। उसने दार्शनिक लहजे में कहा, "समूची सृष्टि एक ही है।" मेरे मानस में

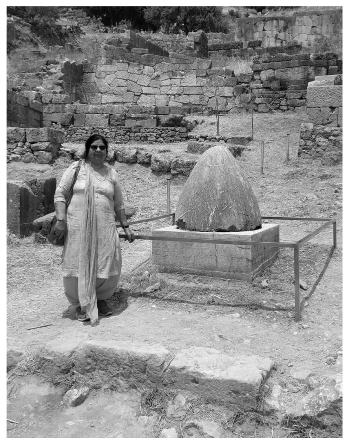

ऊपर जा कर वहाँ के अवशेष देखने का भाव तिरोहित हो चुका था। मैं उस अनिर्वचनीय आह्लाद के सागर में गोते लगाते एक पेड़ के नीचे बैठ गई। जो ऊपर से लौट कर आ रहे थे, मैं सब को उत्साहित स्वर में बता रही है, यह दैवी पत्थर पृथ्वी का नाभि स्थल है पर यह शिवलिंग है। मुझे लग रहा था मानों मैंने कैसी अद्भुत उपादान की खोज ली हो। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि लोग मेरी बातों को हाँ कह कर स्वीकार तो कर रहे थे परंतु शायद मेरी बात को वह गंभीरता से नहीं ले रहे थे। यूनान यात्रा से वापस आने के बाद मुझे लगा मैं अपने साथ एक अनिर्वचनीय एवं अमूल्य अहसास लेकर लौटी हूँ, लगा मेरी यात्रा बिल्कुल सफल हो गई। पर साथ ही मैं यह भी सोच रही थी कि मुझे यह कैसा अहसास हुआ, उस नाभि स्थल दर्शाने वाले दैवी पत्थर में, मुझे शिव की प्रतीति कैसी हुई। इसके लिये मैंने अन्तर्जाल पर डेल्फी के बारे में और जानने का प्रयास किया। बहुत सी बातें जानने के बाद एक दिन मुझे विश्व प्रसिद्ध जग्गी सद्गुरु का एक यू-ट्यूब देखने को मिला, जिसने यह सिद्ध कर दिया कि वहाँ शिव होंगे। मेरी प्रतीति यू ही नहीं थी, अपितु सही थी। नेशनल हेराल्ड समाचार पत्र में भी डेल्फी के बारे में कहा गया है कि यहाँ अपोलो का मंदिर है और प्राचीन समय में यहाँ अपोलो की पूजा की जाती थी, अपोलो देवता को सूर्य, संगीत और शुचिता का प्रतीक माना जाता था। यहाँ पर कई दार्शनिक वाक्य लिखे हैं जिनमें एक का अर्थ है स्वयं को जानो (know yourself) अपोलो मंदिर में पाइथिया देवी भी विराजमान हैं और वहीं पहाडी के शिखर पर रंगमंच और स्टेडियम है जहाँ प्राचीन काल में प्रत्येक चार वर्ष बाद खेलों के आयोजन होते थे। डेल्फी के प्रांगण में थोलोस सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्मारक है। डेल्फी का विस्तृत इतिहास है परंतु मैं यहाँ पर उस इतिहास की बात नहीं कर रही, बल्कि अपने उस अद्भुत अनुभव की बात कर रही हूँ। उस अनुभव का आधार क्या था। जैसा कि मैंने ऊपर बताया, इंटरनेट पर मुझे जग्गी सद्गुरु की डेल्फी यात्रा का यू-ट्यूब देखने को मिला जिसमें वह कह रहे हैं कि डेल्फी मुझे लंबे अरसे से बुला रही थी और मैं अब यहाँ आया हूँ। तब तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब सद्गुरु जग्गी जी पृथ्वी के नाभि स्थल पर पड़े दैवी पत्थर के पास जाते हुए वह शिव महिमा संबंधी एक संस्कृत मंत्र का जोर-जोर से उच्चारण या कि कहें गाने लगते हैं। वह मंत्र इस प्रकार थाः

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय, भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय, तस्मै नकाराय नमः शिवाय।

इस संस्कृत मंत्र का अर्थ हैः नागेंद्रहाराय अथार्त जिन्होंने नागेंद्र (सांपों के राजा) को माला के रूप में अपने गले में धारण कर लिया हो, जिनके तीन नेत्र हैं, और जिन्होंने अपने शरीर को हवन की पवित्र भभूति से रंग लिया हो, जो सभी देवताओं के राजा है, जो शाश्वत और शुद्ध है, जिन्होंने सभी दिशाओं को अपने वस्त्र के रूप में धारण कर लिया है, उन देवों के देव महादेव को मेरा नमस्कार है, मैं नतमस्तक हूँ॥ शिव के पंचाक्षर स्त्रोत में हर स्त्रोत का पहला अक्षर लिया गया हैः पंचाक्षर स्त्रोत "नम शिवाय" है। इस स्त्रोत में शिव जी के लिए 'न' शब्दांश लिया गया है।

मंत्र का जोर-जोर उच्चारण करने के बाद वह उनके साथ आई एक दो महिलाएँ, शायद वह उनकी गाइड थी को बताने लगे कि मैं यहाँ इस मंत्र का उच्चारण करने वाला पहला व्यक्ति नहीं हूँ, यहाँ पर इस मंत्र का उच्चारण पहले भी होता रहा है। उसके पश्चात, उन्होंने लोहे की चेन से दिखने वाले उपकरण को वहाँ उस गोलाकार पत्थर पर घुमाना आरंभ किया और यहां आश्चर्य! वह शून्य में भी जोर-जोर से हिल रहा था अर्थात् वहां दैवीय शक्ति का कोई केंद्र अवश्य था। वह बता रहे थे कि भारत के रहस्यवाद आदि का ग्रीस या डेल्फी से गहरा संबंध रहा है। मैं जग्गी सद्गुरु के बारे में अधिक नहीं जानती थी परंतु वह एक विश्व प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु हैं, इसलिये उनकी बातों से मुझे अपने अनुभव को पुष्ट करने का आधार मिला। भारत से बहुत से पर्यटक यूनान और डेल्फी की यात्रा करते हैं, क्या कभी किसी को ऐसा अलग से अनिवर्चनीय अनुभव हुआ, जैसा कि मुझे हुआ, क्या वस्तुतः वहाँ रखा दैवी पत्थर शिवलिंग हो सकता है। इतिहास पूर्व की सदियों में क्या कभी वहाँ शिव की पूजा होती थी जैसे कि यह किवदंती है कि काबे में रखा पत्थर भी शिवलिंग है।

व्यंग्य का स्वरूप और नए प्रतिमान की तलाश

गिरीश पंकज

डॉ. संजीव कुमार ने जब मुझसे कहा कि व्यंग्य के रूप स्वरूप पर विस्तार से लिखिए तो चिंतन की प्रक्रिया शुरू हुई। बहुत कुछ तो पहले भी लिखता रहा हूँ, पर लगा अब नए सिरे भी विमर्श की आवश्यकता है इसलिए यह लेख एक तरह से पुनर्पाठ की तरह प्रस्तुत है। व्यंग्य का रूप क्या है, इसे तो समझने के लिए पहले उसकी सहज-सरल परिभाषा समझनी होगी। मेरी अपनी कुछ मौलिक परिभाषाएँ कुछ इस तरह हैं कि विसंगतिपूर्ण और अराजक जीवन के विरुद्ध रचनात्मक उपहास ही व्यंग्य है। सामाजिक, राजनीतिक और जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों की विद्रूपताओं के विरुद्ध कटाक्षपूर्ण रचना को ही व्यंग्य कहते हैं। व्यंग्य दरअसल सीधी बात नहीं, एक तरह से टेढ़ी बात है। मानवीय कमजोरियों को विनोदपूर्ण शैली में प्रस्तुत करना ही व्यंग्य है। प्रकृतिगत कमियों पर परोक्ष रूप से किया गया कलात्मक लेखन व्यंग्य है सही और सार्थक व्यंग्य अभिधा में नहीं, व्यंजना में लिखा जाता है। व्यंग्य वास्तव में लेखन की वह कला है, जो रचना को व्यक्ति निरपेक्ष और समाज सापेक्ष बनाती है। मनुष्य के पाखंडपूर्ण व्यवहार की परिहासपूर्ण अभिव्यक्ति है। अब व्यंग्य विधा है या शैली इस प्रश्न का अब तो पटाक्षेप हो गया है। हमारी समकालीन आलोचना ने यह स्वीकार कर लिया है कि साहित्य की अन्य विधाओं की तरह व्यंग्य भी एक महत्वपूर्ण विधा है। यह शैली भी है लेकिन शैली से भी आगे बढ़कर एक विधा है जिसके माध्यम से तमाम तरह की विसंगतियों, अराजकताओं और विद्रूपताओं पर प्रहार किया जा सकता है। गूगल में सर्च करें तो व्यंग्य के बारे में जो कुछ लिखा गया है, वह सटीक है। उसकी पहली पंक्ति ही यही है कि "व्यंग्य साहित्य की एक विधा है।" उसके बाद आगे लिखा गया है कि व्यंग्य वह है, "जिसमें उपहास, मज़ाक (लुत्फ़) और इसी क्रम में आलोचना का प्रभाव रहता है। यूरोप में डिवाइन कॉमेडी, दांते की लैटिन में लिखी किताब को मध्यकालीन व्यंग्य का महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है, जिसमें तत्कालीन व्यवस्था का मज़ाक उड़ाया गया था। व्यंग्य को मुहावरे मे व्यंग्यबाण कहा गया है। हरिशंकर परसाई का मानना है कि 'व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है। जीवन की आलोचना करता है। विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंड का पर्दाफाश करता है।'

व्यंग्य की सुदीर्घ परंपरा है। समाज में व्यंग्य के न जाने कितने ही तो नाम हैं। तंज, चुटकी, चुहुल, ताना, कटाक्ष, व्यंग्यबाण, मज़ाक, वक्रोक्ति, विनोद आदि के साथ अंग्रेज़ी में विट (वाक्यचातुर्य या वाग्वैदध्य), आयरनी (वक्रोक्ति कटाक्ष, विडंबना) और सटायर (व्यंग्य), कॉमेडी (हास्य, विनोद, परिहास) आदि तो कहते ही हैं। आदि शब्द कोई भी रहे, उसका लक्ष्य व्यंग्यार्थ ही होता है। खड़ी बोली के विकास के साथ-साथ व्यंग्य का भी विकास होता रहा। सदियों पुराने इस श्लोक को देखें जिसमें व्यंग्य की कितनी गहरी मार है कि बुद्धिमान मनुष्य होता है काव्य शास्त्र से जुड़ा रहता है और जो मूर्ख होता है वह सो कर अपना समय बिता देता है।

काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।

अमीर खुसरो की रचनाएँ हम देखते हैं तो उसमें भी हमें व्यंग्य मिलता है। वो जब कहते हैं "खीर पकाई जतन से चरखा दिया चला/आया कुत्ता खा गया तू बैठी ढोल बजाय", तो इस रचना में व्यंग्य है। उसके बाद हम कबीर को देखते हैं। कबीर की अनेक रचनाओं में व्यंग्यात्मक प्रहार है। वह हिंदुओं पर व्यंग्य करते हैं तो मुस्लिमों पर प्रहार करते हैं। जैसे–

जो तू बामन बमनी जाया।
आन द्वार काहे नहिं आया'।
और,
'कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांगि दे क्या बहरा हुआ खुदा'

उसके बाद हम तुलसी को भी देखते हैं तो उनकी कुछ रचनाओं में भी व्यंग्य नजर आता है। जब राम को वन गमन

का आदेश मिलता है तो सीता भी जाने के लिए तैयार हो जाती है तो वह सीता को मना करते हुए कहते हैं तुम सुकुमारी हो। तुम्हारा जंगल जाना ठीक नहीं। तब सीता जो कुछ कहती है, उसे तुलसीदास जी ने व्यंग्यात्मक तरीके से कुछ यूँ प्रस्तुत किया है–

"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।
तुम्हहि उचित तप मो कहुं भोगू।
तुलसी का एक सोरठा देखें
"तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं, मूढ़ न चतुर नर,
सुंदर केकिहि पेखु बचन, सुधा सम असन अहि"

अर्थात् सुंदर वेश देखकर लोग धोखा खा जाते हैं। जैसे मोर बहुत सुंदर दीखता है, लेकिन उसका भोजन है साँप।

साहित्य की दुनिया में भारतेंदु हरिश्चंद्र के अवतरण के बाद गद्य लेखन की शुरुआत होती है। उनके समग्र लेखन के केंद्र में व्यंग्य ही व्यंग्य नजर आता है। उनके ही समकालीन बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' और प्रतापनारायण मिश्र उल्लेखनीय नाम है। इनके ठीक बाद उभरते है। बालमुकुंद गुप्त जिनके 'शिव शंभू के चिट्ठे' आज भी अद्भुत व्यंग्य की बानगी प्रस्तुत करते हैं।

प्रेमचंद जी ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं लेकिन कुछेक तो विशुद्ध व्यंग्य ही हैं। जैसे बड़े भाई साहब, और रसिक सम्पादक, सम्पादक ऐसी साल पहले जैसा था, वैसा आज भी है यानी रसिक। अनेक सम्पादक आज भी महिलाओं की रचनाओं को प्राथमिकता देते हैं। आज़ादी के संघर्ष के दौरान अंग्रेजों पर व्यंग्य किए जाते रहे, तो आज़ादी के बाद मोहभंग की स्थितियाँ निर्मित होती रहीं तो व्यंग्य और अधिक ज़रूरी विधा बनती चले गयी। व्यंग्य के क्षेत्र में निरंतर अनेक नाम सामने आते हैं जिन्होंने गद्य लेखन के माध्यम से व्यंग्य को समृद्ध किया। और वह परंपरा आज तक चली आ रही है। लेकिन दुर्भाग्य है कि व्यंग्य का अपना एक आलोचना शास्त्र अब तक पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सका है।

हालांकि किसी भी सशक्त व्यंग्य रचना को देखकर ही पाठक के मुँह से अनायास निकलता है कि एक अच्छा व्यंग्य था, लेकिन एक अच्छा व्यंग्य कैसा हो, उसमें किन-किन तत्वों का समावेश हो, उसकी भाषा कैसी हो, इन तमाम पहलुओं पर विचार करने के लिए ऐसा कोई मानक अब तक निर्धारित नहीं हो सका है कि जिस के निकष पर रखकर हम यह कह सकें कि यह रचना व्यंग्य है। अभी हो यह रहा है कि रचना के ऊपर लिखा रहता है व्यंग्य, लेकिन अनेक रचनाओं में व्यंग्य सिरे से अनुपस्थित रहता है। ये रचनाएँ चलताऊ किस्म की टिप्पणियाँ होती हैं या व्यंग्य के नाम पर फूहड़ किस्म का आत्म प्रलाप।

व्यंग्य का कोई मानक अब तक निर्धारित नहीं किया गया है इसलिए व्यंग्य के सामने एक बड़ी चुनौती यह दिखाई देती है कि कोई भी एक व्यक्ति मुँह उठाकर चला आता है और कहता है कि उसने व्यंग्य लिखा है। जबकि उसकी पूरी रचना में व्यंग्य की जगह अस्त-व्यस्त विचारों की प्रधानता होती है। मुझे लगता है कि एक मानक व्यंग्य में निम्नलिखित बातों का समावेश होना ही चाहिए। उदाहरण के लिए बिंदुवार कुछ बातें रखना चाहता हूँ।

व्यक्ति नहीं, प्रवृत्तिपरकता

एक अच्छा व्यंग्य प्रवृत्तिपरक या प्रवृत्तिमूलक होना चाहिए। व्यक्ति केंद्रित व्यंग्य बौद्धिक भड़ास कहलाएगा जबकि प्रवृत्तिपरक व्यंग्य साहित्य का एक जिम्मेदार उपक्रम माना जाएगा इसीलिए व्यंग्य अभिधा में नहीं, व्यंजना में लिखा जाता है।

अभिधा में व्यंग्य नहीं होता। व्यक्ति केंद्रित व्यंग्य कुछ नामचीन व्यंग्यकारों ने भी लिखे हैं। लेकिन मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहूँगा कि कैसे ऐसे व्यंग्य लेखन से किसी भी व्यंग्यकार को बचना चाहिए। व्यंग्य अगर किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके लिखा गया तो यह एक तरह से राग-द्वेष या निकृष्ट वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण है। व्यंग्य सांकेतिक हो सकता है लेकिन उसमें किसी व्यक्ति का नाम आए तो यह मानहानि का कारण भी बनता है। साहित्य किसी व्यक्ति को केंद्र में रखकर नहीं लिखा जाता, वह समग्र समाज में जो कुछ घटित हो रहा है, जो नई प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही हैं, उसको लक्ष्य करके लिखा जाता है। तब वह एक बड़ी रचना बनती है तभी वह मानक व्यंग्य की परिभाषा पर खरा उतरेगा, जब वह व्यक्ति से उठकर समष्टि पर ध्यान केंद्रित करे।

व्यंग्य की भाषा

हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन लोकप्रिय है कि "एक सही व्यंग्य रचना वह है कि कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो।" खासकर वह जो व्यंग्य का पात्र हो। व्यंग्य की भाषा रचना के शुरू से ही कटाक्षपूर्ण हो। ऐसा न हो कि देश और समाज की समस्याओं की चिंता करते हुए दूसरे पैराग्राफ में एकाध पंच लाइन नजर आए। व्यंग्य की भाषा पहले ही वाक्य के साथ कटाक्षमय होनी चाहिए ताकि सुधी पाठक यह समझ सके कि वह व्यंग्य रचना पढ़ने जा रहा है। रचना के मध्य में यह रहस्य उद्घाटित न हो कि वह किसी व्यंग्य रचना से गुजर रहा था। यह प्रतिभा तभी विकसित हो पाती है जब व्यंग्य लिखने का निरंतर अभ्यास सिद्ध हो जाता है। व्यंग्य की भाषा अराजक न हो। उसमें गालियों का प्रयोग न हो क्योंकि जब व्यंग्य में गालियाँ आती हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि व्यंग्यकार के पास विचारों और शब्दों का टोटा पड़ गया है। हिंदी एक समृद्ध भाषा है। उसमें हजारों ऐसे शब्द हैं जिनके माध्यम से हम अपने भीतर के आक्रोश को, करुणा को, स्नेह को, प्रेम को संप्रेषित कर सकते हैं इसलिए व्यंग्य लिखते समय उसकी भाषा पर ध्यान दिए जाने की जरूरत है। निराला की कविता का एक अंश देखें अबे! सुन बे गुलाब/भूल मत जो तूने पाई खुशबू रंगोआब। खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट/डाल पर इठला रहा कैपिटलिस्ट। इस व्यंग्य-कविता की भाषा ही उसके प्रतीक को बहुत साफ कर दे रही है कि व्यंग्य समाज के किस वर्ग को लेकर किया गया है। अपने समय की इस मशहूर कविता के बारे में बताने की आवश्यकता नहीं कि यह किस पर व्यंग्य है।

व्यंग्य की शब्द सीमा को लेकर भी कभी-कभी चर्चाएँ होती रही हैं। जैसे लघुकथा को लेकर होती हैं कि उसे दो सौ या तीन सौ शब्दों का होना चाहिए। उसी तरह व्यंग्य को लेकर भी यह चर्चा होती है कि उसकी शब्द सीमा क्या हो। लेकिन अनेक लोग इस बात से सहमत होंगे कि व्यंग्य परिधि से बाहर की चीज है। इसे शब्दों की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। उसका विस्तार असीम है। वह एक लाइन का हो सकता है और वह पचास हजार शब्दों तक का विस्तार पा सकता है लेकिन बुनियादी शर्त यही है कि उसकी हर पंक्ति व्यंग्य की आत्मा के साथ न्याय करते हुए चले। अब तो जब से फेसबुक और वाट्सएप जैसे मीडिया अवतरित हुए हैं, तब से लोग अभिव्यक्ति के लिए इनका सहारा ले रहे हैं और कम शब्दों में सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों पर सचित्र कटाक्ष भी कर रहे हैं। वह भी कम-से-कम शब्दों में।

व्यंग्य की तात्कालिकता

इस वक्त व्यंग्य परिदृश्य की सबसे बड़ी चुनौती है समय उसकी क्षणभंगुरता। आज अखबारों के माध्यम से कुछ इस तरह के व्यंग्य प्रकाशित हो रहे हैं जो सुबह जन्म ले कर शाम को अकाल मौत के शिकार हो जाते हैं। दुर्भाग्य है कि प्रकाशन की कामना लेकर व्यंग्य की दुनिया में घुसे कुछ व्यंग्यकार व्यंग्य की आत्मा के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। और इसे हवा देने का काम कर रहे हैं वे नादान संपादक जो अखबारों में व्यंग्य स्तंभ प्रकाशित करते हैं। संपादक के जेहन में तात्कालिकता इस कदर हावी होती है कि वह व्यंग्य लेखक से अपेक्षा करता है कि आज जो घटना घटी है उस पर फौरन एक व्यंग्य लिखकर प्रेषित कर दे लेकिन इस प्रवृत्ति के कारण व्यंग्य का बहुत नुकसान हो रहा है जो समाज के शाश्वत विषय हैं वे किनारे हो जाते हैं। बस, तात्कालिक विषय पर व्यंग्य लिख दिया जाता है। उदाहरण के लिए अगर किसी चर्चित व्यक्ति, नेता या कलाकार ने कुछ अमर्यादित हरकत की है तो उस का नाम लेकर ही हर दूसरा व्यंग्यकार व्यंग्य लिखने लग जाएगा लेकिन क्या ऐसे व्यंग्य पच्चीस साल बाद भी पढ़ने से समझ में आ सकेंगे शायद नहीं। मुझे लगता है कि तत्काल जो घटना घटित हुई है उसे समझदार व्यंग्यकार साहित्य की परिधि में लाकर पहले उसका परिमार्जन करे और अपनी रचना का स्ट्रक्चर ऐसा बनाए कि वह रचना कालजयी या दीर्घजीवी तो बने। वर्षों बाद भी नया पाठक जब रचना को पढ़े तो उसे लगे कि कोई नई रचना पढ़ रहा है। यह तभी संभव है जब व्यंग्य व्यक्ति विशेष पर नहीं, मनुष्य के मूल चरित्र पर केंद्रित होगा हालांकि परसाई जी कहते हैं कि हमें अपने युग के प्रति ईमानदार होना चाहिए। परसाई ठीक कहते हैं, लेकिन

इसका मतलब यह भी नहीं कि हम रचना को पत्रकारिता की फौरी टिप्पणी में तब्दील कर दें। व्यंग्य को अगर साहित्य की श्रेणी में रखना है तो उसे विषय का निर्वाह ऐसा करना होगा कि वह समय के साथ जीवित भी रहे। जैसे आज हम कबीर की रचनाएँ पढ़ते हैं। प्रेमचंद की रचनाओं को प्रासंगिक पाते है। बालमुकुंद गुप्त (शिवशंभू के चिट्ठे), पांडेय बेचन शर्मा उग्र, जीपी श्रीवास्तव, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, धूमिल, दुष्यंत, हरिशंकर परसाई और शरद जोशी रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, नागार्जुन आदि की अनेक रचनाएँ आज भी समीचीन लगती हैं। वह इसलिए कि उन्होंने प्रवृत्तियों को इंगित करके लिखा।

मानकीकरण की चिंता

यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि किसी भी रचना के लिए कोई स्कूल नहीं संचालित किया जा सकता। कोई शिक्षक लेखक पैदा नहीं कर सकता। ऐसा सम्भव नहीं है कि कहीं कोई व्यंग्य का विद्यालय चल रहा हो कि वहाँ कुछ भर्ती हुए छात्र एक साल की डिग्री का कोर्स करके निकले और व्यंग्यकार बन जाएँ। कोई भी विधा निरंतर अभ्यास के साथ सधती चली जाती है इसलिए पूर्ववर्ती रचनाओं को पढ़ना बहुत जरूरी है। हमारे यहाँ हमेशा से है अध्ययन पर जोर दिया गया है लेकिन अब हो यह रहा है कि लोग अध्ययन कम कर रहे हैं, लेखन ज्यादा कर रहे है। आज भी जब कभी भूले-भटके किसी नए व्यंग्यकार से सामना होता है और उससे पूछा जाता है कि “क्या तुमने परसाई, शरद जोशी या त्यागी की कितनी रचनाओं को पढा है” तो वह बगले झाँकने लगता है। इसीलिए ऐसे अनेक व्यंग्यकारों के व्यंग्य मानक नहीं बन पा रहे। और पलक झपकते ही अकाल मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। मानक व्यंग्य के लिए मैं सिर्फ इतना कहना चाहूँगा कि हमें अतीत पर दृष्टिपात करना चाहिए। हमें भारतेंदु हरिशचंद्र से लेकर शरद जोशी तक की परंपरा को निहारना चाहिए। पिछले डेढ़ सौ सालों के गद्य व्यंग्य के इतिहास को देखें तो हमें एक दृष्टि मिलेगी कि आखिर एक बेहतर व्यंग्य किस तरह का होता है। हम उन व्यंग्य रचनाओं को पढ़ कर अपनी समझ विकसित कर सकते हैं। पुराने व्यंग्यकारों शैली, शिल्प और कंटेंट को समझते हुए नए परिवेश में नई, शब्दावलियों के साथ अगर व्यंग्य लिखते हैं तो मुझे लगता है कि जिस मानकीकरण की चिंता हम कर रहे हैं, वह मानकीकरण बहुत हद तक सफलीभूत हो सकता है। और अंत में यह भी जरूरी चिंता है कि व्यंग्य के शास्त्र के विकास की बात हो। डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी, शेरजंग गर्ग, डॉ. मलय, श्यामसुंदर घोष, सुरेशकांत, डॉ. प्रेम जनमेजय, मधुसूदन पाटिल आदि ने व्यंग्य के इतिहास और शास्त्र पर कुछ काम ज़रूर किए हैं, लेकिन अभी बहुत कुछ करना शेष है। व्यंग्ययात्रा, अट्टहास, चकल्लस, विदूषक जैसी कुछ पत्रिकाओं के माध्यम से व्यंग्य विमर्श तो हो रहा है लेकिन इन तमाम पत्रिकाओं में व्यंग्य रचनाओं के साथ-साथ व्यंग्यालोचन पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

साहित्य और विचारधारा

साहित्य और विचारधारा की टकराहट कोई नई नहीं है। लेकिन मेरा अपना मत है कि विचारधारा अगर ठेठ राजनीतिक हो जाती है, तो दिक्कतें पैदा होती हैं, तब रचना रचना न हो कर सीमित नारे में तब्दील हो जाती है। एक पक्षीय बन कर रह जाती है, इसलिए लेखक को प्रगतिशील विचार तो रखने चाहिए लेकिन वह राजनीति के घेरे में न फँसे और स्वतंत्र हो कर जनसरोकारों से प्रतिबद्ध रहे। व्यंग्यकार को ऐसा करना चाहिए। दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ और कुछ व्यंग्यकार एक खास विचारधारा के प्रति इतने आग्रही हुए कि मत पूछिए। जो उनकी विचारधारा का नहीं हुआ, वो लेखक ही नहीं माना गया। प्रतिबद्ध विचारधारा वाले तथाकथित बड़े व्यंग्यकारों का हश्र मैंने देखा है। वे एक खास सत्ता के साथ लम्बे समय तक जुड़े रहे और जब आपातकाल लगा तो वे उसके पक्ष में भी खड़े हो गए। ये कैसे लेखक थे, वो कैसी विचारधारा थी, जो अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकारों का हनन करने वाली क्रूर सत्ता के साथ खड़ी थी? इसलिए व्यंग्यकार को राजनीतिक विचारधारा से परे हो कर व्यंग्य लिखना चाहिए। वरना वह अपनी विचारधारा वाले दल की बुराइयों को अनदेखा कर देगा और दूसरी विचारधारा से जुड़े लोगों की बखिया उधेड़ता नज़र आएगा। देश पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार के उस दौर को

भूला नहीं है जब सिंगुर नंदीग्राम में उसने गोलियाँ चला कर अनेक लोगों की जानें ले ली थीं। तब वामपंथी लेखकों की बोलती बंद थी। अगर वे विचारधारा के खूँटे से बंधे नहीं होते तो उस अन्याय के खिलाफ खुल कर लिखते। अगर व्यंग्यकार भी खास राजनीतिक विचारधारा का पोषक हो जाएगा तो वह सच्चा व्यंग्यकार हो ही नहीं सकता। सच्चा व्यंग्यकार केवल विचार के साथ रहता है तथाकथित विचारधारा के साथ नहीं। जब वह विचारधारा के साथ जुड़ जाता है तो जाहिर है उसके शिल्प पर भी उसका असर होता है और रचना यानी व्यंग्य की शुचिता धूमिल हो जाती है।

समकालीन हिंदी व्यंग्य में अभी उतनी विसंगति नहीं दीखती। हालाँकि विचारधारा से परे हो कर जो लोग व्यंग्य लिख रहे हैं, उनके शिल्प को देख कर हैरत होती है। लगता है वह व्यंग्य नहीं, कोई पाठकीय टिप्पणी लिख रहे हैं। अनेक व्यंग्य साहित्य के मानक पर खरे नहीं उतरते क्योंकि वहाँ शिल्प की कमी नज़र आती है। व्यंग्य को साहित्यिक आलोचना में तरजीह इसीलिए कम मिली कि उसमें उथलापन अधिक मजर आया जबकि मेरा शुरू से आग्रह रहा है कि व्यंग्य को एक साहित्यिक रचना की तरह लिखा जाए न कि अखबारी लेखन की तरह, इसीलिए व्यंग्य का परिदृश्य बहुत आश्वस्त तो नहीं करता, फिर भी व्यंग्य की पताका थाम कर अनवरत यात्रा करने वाले कुछ लोगों के कारण कह सकता हूँ कि हिंदी व्यंग्य का भविष्य उज्ज्वल है। धीरे-धीरे शिल्प भी बेहतर होता जाएगा, लेकिन कहने भर से किसी का भविष्य उज्जवल नहीं हो सकता, उसके लिए वैसे बेहतर जतन करने पड़ते हैं। जिस तेजी के साथ नई कविता या कहानी का बूम-सा आया हुआ है, उस तेजी से व्यंग्य साहित्य का सृजन नहीं हो पा रहा है। कुछ हो भी रहा है तो स्तरीय रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं में जगह नहीं मिल रही है। इस समय व्यंग्य की जरूरत है। जब आदमी बीमार पड़ जाता है तो उसे दवाई दी जाती है। जरूरत पड़ने पर शल्यक्रिया भी होती है। यह एक बीमार समय है। इसके उपचार के लिए इसे व्यंग्य रूपी दवाई दी जानी चाहिए। व्यंग्य शल्यक्रिया भी करता है। यह और बात है कि समाज के विभिन्न घटकों की बीमारी इतनी अधिक व्यापक हो गई है कि बीमारी ठीक होगी या नहीं, कहा नहीं जा सकता, फिर भी आशा से आकाश थमा है। व्यंग्य अपना काम कर रहा है कि समाज कोमा में न चला जाए। समकालीन परिदृश्य में व्यंग्य एक अरिपहार्य उपस्थिति की मांग करता है।

साहित्य की लगभग समस्त विधाओं में व्यंग्य ही इकलौती विधा है जो सच को सीधे-सीधे सच कहने का साहस करती है। साहित्य भी सच नहीं कहेगा तो कौन कहेगा? लेकिन अब सच को छिपा कर कहने का चालाक समय है। हर कोई सुरक्षित रहना चाहता है। सत्ता या व्यवस्था से पुरस्कृत होने की ललक बढ़ी है इसलिए अपने को बचा कर सच कहने की परम्परा-सी पड़ गई है। हम इधर की अनेक कविताएँ या कहानियाँ पढ़ते हैं, जिसमें अपने समय के सच को रूपायित करने की कोशिश की जाती है, ऐसा उसके लेखक ही बताते हैं, लेकिन उनकी रचनाओं में साफ-साफ वो सच दीखता नहीं। बताना-समझाना पड़ता है कि देखिए, सच यहाँ है। ऐसा अद्भुत अमूर्तन हतप्रभ कर देता है। विसंगतियों की ऐसी कलात्मक नक्काशी कि आप विसंगतियाँ खोजते रह जाएँ। वहीं किसी भी सफल व्यंग्य को पढ़ते हुए साफ-साफ समझ में आ जाता है कि यह राजनीति पर कटाक्ष है या समाज पर।

रचना वही सार्थक और कालजयी होती है अथवा जो युगीन-पीड़ा को स्वर देती है, अन्याय के बरक्स खड़ी होती है। इस निकष पर देखें, तो व्यंग्य में ही वो ताकत है। साहित्य का अर्थ ही यही है जो हित को साथ ले कर चले। जनहित तो सच का पर्दाफाश करने में है जो छिपे हुए नकली लोग हैं, उनका सच सामने लाना ही रचना का धर्म है। ये लोग राजनीति, साहित्य, कला, समाज या किसी भी क्षेत्र में पाए जा सकते हैं। लेकिन मेरा यह मानना है कि कलात्मक तरीके से सच की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। ऐसा करने से रचना की सम्प्रेषणीयता बढ़ जाती है। रचना अमूर्तन के स्तर तक न जा पहुँचे कि पाठक अर्थ ही तलाशता रह जाए। मुझे लगता है कि विसंगतियों की रंजक अभिव्यक्ति ही व्यंग्य है। व्यंग्य को अगर रोचकता, रंजकता के साथ न प्रस्तुत किया जाए, तो उसमें एक तरह की जड़ता या कटुता भी आ जाती है। सरसता भी व्यंग्य का एक तत्व

है इसलिए यह बेहद जरूरी है कि व्यंग्य को पठनीय बनाने के लिए उसके शिल्प पर भी ध्यान दिया जाए। उसे उबाऊ लेख न बना कर पठनीय रूप दिया जाए। यह तभी संभव होगा, जब उसे विनोदपूर्ण स्थितियों के साथ उस प्रस्तुत किया जाए। विनोद का तड़का भी ज्यादा न हो। व्यंग्य में विनोद की मात्रा उतनी रहनी चाहिए जितनी कड़वी दवा पिलाने के लिए शक्कर की मात्रा दी जाती है। शक्कर अधिक होने से दवाई का असर खत्म हो सकता है, उसी तरह विनोद या हास्य अधिक होने से व्यंग्य का अपना असर खत्म हो जाएगा। हम यह भी कह सकते हैं कि व्यंग्य समाज की तल्खीभरी आलोचना का नाम है। यही युगीनधर्म है व्यंग्य का। मैंने अपनी इन भावनाओं को पद्य में कुछ इस तरह कहा था कि– हर हाल में हम सच का बयान करेंगे। बहरे तक सुन लें वो गान करेंगे। खुद को अल्लाह जो मानने लगे, ऐसे हर शख्स को इंसान करेंगे।

व्यंग्य को सच कहने के संस्कार कबीर से मिले, यह कहूँ तो अतिरंजना नहीं होगी। कबीर के दोहों या पदों में जो व्यंग्य दीखता है, वह आज भी सार्थक है। तुलसीदास जी का महान कृति में भी व्यंग्य शब्द मिलता है। ठेठ व्यंग्य के अर्थ में ही। व्यंग्य की उपस्थिति बगैर साहित्य कभी सफल नहीं हो सकता। कबीर-तुलसी आदि तक व्यंग्य पद्य रूप में ही मिलता है मगर भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद व्यंग्य गद्य रूप में विकसित हुआ। और उसके बाद तो हर व्यंग्यकार भारत की या समाज की दुर्दशा को अपनी-अपनी शैली में प्रस्तुत करता रहा। भारतेंदु युग में व्यंग्य पुष्पित-पल्लवित होता रहा, मगर आजादी के बाद व्यंग्य एक वृटवृक्ष बन गया। परसाई और शरद जोशी जैसे व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को जो प्रतिष्ठा दी, उसके कारण व्यंग्य साहित्य के केंद्र में आ गया। लगभग हर रचना में व्यंग्य नजर आने लगा।

साहित्य का व्यंग्यावतार

आजादी के बाद मोहभंग की स्थितियाँ बनती गईं। नायक खलनायक बन गए। हालत यह हुई कि खुद नायक अपने आप को खलनायक कह कर गौरवान्वित होता रहा। सेवा की आड़ में मेवा खाने की नई संस्कृति ने सारे मूल्य ध्वस्त कर दिए। राजनीति सर्वाधिक कलुषित हो गई। और उसके साथ चलने वाले प्रशासन भी जुगलबंदी करने लगा। तब नई कविता और उसके बाद अकविता आंदोलन में इन विसंगतियों को रेखांकित करने की कोशिश की लेकिन कविता की अपनी शब्द सीमा थी। तभी व्यंग्य ने उस पूरे दौर को संभाला और कहा जा सकता है कि साठवें दशक के आसपास साहित्य का मानो व्यंग्यावतार हुआए जिसने चुन-चुन विसंगतियों, विद्रूपताओं पर प्रहार करने का काम किया। उस दौर की पत्रकारिता भी मिशन की तरह काम कर रही थी इसलिए व्यंग्य का भी पूरा स्पेस मिल जाता था। उस दौर में व्यंग्य-व्यंग्य ही था।

दरअसल व्यंग्य वह कला है जो व्यक्ति निरपेक्ष और समाज सापेक्ष होती है। शरद जोशी भी ऐसे कालजयी व्यंग्यकार हैं, जिन्हें साहित्य में फैला माफिया लेखक ही नहीं मानता। उनकी रचनाओं पर चर्चा नहीं करता। एक को उठाना और दूसरे को गिराना ही हिंदी आलोचना का चरित्र हो गया है। इस आलोचना ने व्यंग्य का बेहद नुकसान किया है। इधर अनेक आलोचनाओं में मैंने यही महसूस किया कि हमारे तथाकथित बड़े आलोचकों ने व्यंग्य के प्रति दोयम दर्जे का भाव रखा और एक विशेष नाम लेने के बाद व्यंग्य की यात्रा को बाधित करार देने का ही काम किया। जिन लोगों ने व्यंग्य को गरिमा प्रदान की, उन लोगों के साथ हिंदी आलोचना का भेदभाव नजरिया हैरत में डाल देता है। शरद जोशी जैसे महान व्यंग्यकारों की चर्चा किए बगैर हिंदी व्यंग्य का इतिहास अधूरा है। उन्होंने हिंदी व्यंग्य को एक पहचान दी। परसाई की तरह ही उनका अपना व्यापक अवदान है। आज जो व्यंग्य का स्वरूप दीख रहा है, उसके पीछे इन दोनों व्यंग्यकारों का खून-पसीना बहा है। इन दोनों व्यंग्यकारों को व्यंग्य लिखने के कारण परेशान किया गया। परसाई जी की टाँग टूटी तो शरद जोशी को भोपाल ही छोड़ देना पड़ा, लेकिन उसके बाद उन्होंने जो कुछ भी लिखा, और प्रतिदिन लिखा, वह हमारे हिंदी साहित्य की धरोहर बन गया।

इसमें दो राय नहीं हो सकती कि परसाई जोशी जी के बाद की पीढ़ी ने व्यंग्य को और बेहतर स्थान तक पहुँचाया। परसाई वामपंथी विचारधारा से प्रतिबद्ध थे मगर शरद जोशी

काफी हद तक मुक्त थे। इसलिए दोनों के लेखन में अंतर साफ़ दीखता है। लेकिन इन दोनों ने व्यंग्य को शिखर तक पहुँचाया। बाद की पीढ़ी ने परसाई जोशी की परम्परा को गति दी, मगर अब चौथी पीढ़ी तक आते-आते बाजारवाद को इतना जबर्दस्त तड़का लगा है कि व्यंग्य की पुरानी धार ही भोथरी पड़ गई है। अनेक समकालीन व्यंग्यकारों की तरह कई बार मुझे भी गहरी निराशा होती है कि अगर यही रफ्तार रही तो व्यंग्य को साहित्य की एक सशक्त विधा के पद पर कैसे प्रतिष्ठित किया जा सकेगा? व्यंग्य के एक विद्यार्थी के नाते मेरा भी मानना है कि परसाई और शरद जोशी के निधन के बाद व्यंग्य की ओजस्विता में कमी आई है। इन दो व्यंग्य स्तंभों के ढहने के बाद से हिंदी व्यंग्य का भी क्षरण शुरू हो गया था।

बाजारवाद का उत्थान और समाजवाद के पतन का सिलसिला तेजी से बढ़ा और उस के कारण व्यंग्य जैसी गंभीर विधा भी बाजारवाद का शिकार बन गई। मांग और पूर्ति के सिद्धांत की तहत अखबारों की मांग पर दोयम दर्जे की व्यंग्य रचनाएँ प्रकाश में आने लगी। और पिछले दो दशकों को निहारें तो व्यंग्य के नाम पर जिस तरह की हल्की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में नजर आती रही हैं, उन्हें देख कर लगता है कि यह व्यंग्य विधा की हत्या करने का षडयंत्र हो रहा है। व्यंग्य की गंभीरता खत्म हो रही है, और उसकी जगह मसखरेपन ने ले ली है।

राजनीति या समाज के मीडिया द्वारा बनाए गए विदूषकों पर लिखना ही व्यंग्य माना जा रहा है। व्यंग्य विदूषकों को नहीं, बड़े-बड़े मूसकों को देखता है, जो समाज को कुतर रहे हैं। विदूषकों पर कलम चलाने पर व्यंग्य फूहड़ बन जाता है।

यह एक ऐसी विधा है जो फूहड़ता को नहीं, गंभीरता को स्थापित करती है। जैसे बाल साहित्य लिखना बच्चों का खेल नहीं, उसी तरह व्यंग्य लिखना मसखरों का काम नहीं। इसके लिए गंभीरता चाहिए। इसलिए व्यंग्य के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए यह चिंता जायज है कि इस विधा के गंभीर अध्येताओं की प्रतिष्ठा हो और नये व्यंग्यकारों को व्यंग्य की दिशा के बारे में बताया जाए।

व्यंग्य का आलोचनाशास्त्र और ज्यादा प्रखर हो

हिंदी व्यंग्य को उसके पुराने पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए यह जरूरी उपक्रम है कि व्यंग्य का अपना आलोचनाशास्त्र और ज्यादा प्रखर हो। व्यंग्यकार और व्यंग्यालोचक सुभाषचंदर ने हिंदी व्यंग्य का प्रामणिक इतिहास लिखा और लोकप्रिय व्यंग्यकार प्रो. प्रेम जनमेजय ने 'व्यंग्ययात्रा' पत्रिका के माध्यम से गंभीर व्यंग्य लेखन को प्रोत्साहित करने का काम शुरू किया। 'अट्टहास' (संपादक अनूप श्रीवास्तव) का प्रकाशन भी वर्षों से हो रहा है, फिर भी अभी और अधिक प्रयासों की जरूरत है। अभी हिंदी व्यंग्य को कुछ और आलोचक चाहिए। बालेंदुशेखर तिवारी, श्यामसुंदर घोष या मधुसूदन पाटिल आदि ने जो काम किए, उसे आगे बढ़ाने के लिए कुछ व्यंग्यकारों को ही सामने आना होगा। कुछ और लोग होंगे जिन्होंने व्यंग्यालोचन किया होगा, उनके बारे में शायद मैं नहीं जान पाया, लेकिन ऐसे लोग कम ही हैं। व्यंग्य पर जितना गंभीर आलोचनात्मक विमर्श होगा, उतनी ही प्रतिष्ठा इस विधा की बन सकेगी। साहित्य की आलोचना करने वाले पेशेवर माफियाई आलोचकों के भरोसे व्यंग्य को प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती इसलिए व्यंग्यकारों को अपने लेखन के साथ ही व्यंग्य विमर्श का काम करना होगा। व्यंग्य पर अब चर्चा कम होती है यही कारण है कि साहित्य के विद्यार्थी भी व्यंग्य में उतनी रुचि नहीं लेते। हाँ, कभी-कभार जब कोई विद्यार्थी पीएच.डी की उपाधि अर्जित करने के लिए व्यंग्य साहित्य पर शोध कार्य करता है तो सुखद अनुभूति होती है कि चलो, कुछ लोग तो हैं जो व्यंग्य के माध्यम से अपने करियर का एक अध्याय गढ़ रहे हैं। लेकिन जैसा कि मैंने पहले ही कहा जो कुछ हो रहा है, वो ऊँट के मुँह में जीरा की मानिंद है। बहुत कम है। व्यंग्य को साहित्य के केंद्र में लाने के लिए उस पर निरंतर चर्चा जरूरी है। संगोष्ठियाँ हों, व्यंग्यपाठ हों, शोधकार्य हों और सबसे बड़ी बात यह है कि वह युग लौटे जिस युग ने व्यंग्य को व्यंग्य बनाया। पत्र-पत्रिकाओं में, पाठ्य पुस्तकों में व्यंग्य मौजूद हो, मगर दुर्भाग्य यही है कि जिन लोगों के हाथों में पाठ्य पुस्तक तैयार करने का अधिकार होता है, वे ही व्यंग्य को नापसंद करते हैं, क्योंकि व्यंग्य उनकी भी पोलें खोलता

है। व्यंग्य सत्ताधीशों को, व्यवस्था से जुड़े दलालों को आहत करता है। चोर की दाढ़ी में तिनका होता है। जो गलत लोग हैं, वे व्यंग्य से विचलित होते हैं। अगर व्यंग्य को साहित्य में व्यापक स्थान मिलेगा तो पीढिय़ाँ बागवत करेंगी। सत्ता के खिलाफ जागरूकता बढ़ेगी। सत्ता यह सब नहीं चाहती। दल कोई भी हो, उसे गूँगे-बहरे लोग चाहिए। जिंदा कौमें पाँच साल तक इंतजार नहीं कर सकतीं, मगर सत्ता में बैठे सारे अय्याश शातिर और दोगले लोग चाहते हैं, लोग इंतजार करें। महंगाई के कम होने का इंतजार, भ्रष्टाचार के कम होने का इंतजार, बलात्कार हत्या, लूट-डकैतियों के कम होने का इंतजार। इंतजार, इंतजार और इंतजार लेकिन व्यंग्य इंतजार का पक्षधर नहीं।

विचार और शिल्प का गुंफन

विचार और शिल्प, इन दोनों का महत्व है। विचारहीन व्यंग्य हो तो उसके शिल्प पर भी असर होगा और अगर केवल शिल्प है, तो वहाँ व्यंग्य विचार का अभाव रहेगा। सार्थक व्यंग्य में विचार और शिल्प का गुंफन होना ही चाहिए, लेकिन जैसा मैंने पहले ही कहा, वह विचार राजनीतिक नहीं, निरपेक्ष होना चाहिए। व्यंग्यकार राजनीतिक दल का प्रवक्ता नहीं हो सकता। व्यंग्यकार युग का हरकारा होता है। उसे तटस्थ हो कर जगाने का काम ही करना है। हँसाने का काम मसखरों पर छोड़ दिया जाए। हँसना भी जरूरी है। स्वास्थ्य के लिए यह मुफीद है इसीलिए इन दिनों लाफिंग क्लब भी खुलते जा रहे हैं। मैंने खुद एक हास्य चालीसा लिखी है, लेकिन मेरी हँसी वैसी हँसी नहीं है जो अचानक पायजामे का नाड़ा खुल जाने से उपजती है। या किसी के गिर जाने पर आती है। यह हँसी अपने आप पर है। दूसरों पर हँसने वालों पर है। सच्चे व्यंग्य की तरह, सच्ची हँसी भी वही है जो दूसरे पर नहीं, अपने आप पर होती है। तो, हँसना ठीक है, मगर हर घड़ी हँसते रहना पागलपन की निशानी है। यह समय केवल हँसना चाहता है। टीवी पर हास्य कार्यक्रम चाहिए, समाज में हास्य कवि-सम्मेलन चाहिए। हर कहीं हँसी। हँसी एक तरह का पलायन है। सच से रू-ब-रू होने की बजाय हँस कर चीजों को टालने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। व्यंग्य सच का सामना करने पर मजबूर करता है और प्रतिकार की ताकत भी देता है। जो सच बोलते हैं, उनके पक्ष में खड़े होने का काम करता है। लेकिन इस वक्त वैसी रचनाएँ कम दिखती है। पत्र-पत्रिकाओं में जो व्यंग्य नजर आता है, वो व्यंग्य नहीं है। उसे नाम देने के लिए कुछ नया विशेषण खोजना होगा। शायद मसखरी बेहतर शब्द होगा।

समकालीन स्वरूप से निराशा

इन तमाम विमर्श के बाद जब हम समकालीन व्यंग्य के स्वरूप और उपस्थिति पर विचार करते हैं तो स्वाभाविक रूप से निराशा होती है। इस वक्त अनेक नए व्यंग्यकारों में विचार की भी कमी है और शिल्प दारिद्रय भी अधिक है। नये-पुराने व्यंग्यकारों के सामने पत्र-पत्रिकाओं का एक बड़ा बाजार है। इस बाजार से व्यंग्य गायब है। और उसके साथ ही विचार भी लापता हैं। व्यंग्य के नाम पर जो कुछ सामने आ रहा है, वो व्यंग्य नहीं है। व्यंग्य का ही विद्रूप है। बाजारू पत्रिकाओं के संपादक व्यंग्य की हत्या करने पर आमादा हैं। संपादकों को बिकने वाला माल चाहिए। जहाँ गंभीर विमर्श न हो, तात्कालिकता पर कोई चलताऊ परिहासजनक टिपण्णी हो। इस चक्कर में ज्यादातर नये व्यंग्यकारों ने प्रकाशन के लिए नया रास्ता निकाल लिया। इस फौरी प्रकाशन से व्यंग्यकारों का तो नाम हुआ मगर व्यंग्य का काम (तमाम) हो गया। यही कारण है कि अब साहित्य में गंभीर व्यंग्य लेखन नजर नहीं आ रहा है। लेकिन इस धारा के विपरीत जो व्यंग्यकार गंभीरता के साथ काम कर रहे हैं, वे अपनी व्यंग्य कृतियों पर निरंतर काम करते रहते हैं। कुछ व्यंग्यकारों के नाम लिए जा सकते हैं, मगर खतरा कुछ महत्वपूर्ण नामों के छूट जाने का भी है। जो इस वक्त गंभीरता से लिख रहे हैं, वे सबके सामने हैं। उनसे बेहतर लेखन की उम्मीद बनी हुई है मगर ऐसे लोग भी कम नहीं हैं, जो वही लिख रहे हैं, जो पत्रिकाएँ उनसे लिखवा रही हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि इस समय दो तरह के व्यंग्यकार सक्रिय हैं। एक वे जो पत्र-पत्रिकाओं में नजर आते हैं, और दूसरे वे जो स्वांत-सुखाय लिख रहे हैं, लेकिन व्यंग्य साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। यही कारण है कि व्यंग्य के वर्तमान स्वरूप को लेकर चिंता स्वाभाविक है। उसे

साहित्य के केंद्र में दुबारा प्रतिष्ठित करने के लिए बचे-खुचे वरिष्ठ व्यंग्यकारों को ही काम करना होगा और व्यंग्य की सर्वकालिक प्रतिष्ठा के लिए भले ही लघु पत्रिकाओं में लिखा जाए, गंभीर व्यंग्य लिखना होगा। और राजनीतिक विचारधारा से ऊपर उठ कर लिखना होगा। व्यावसायिक पत्रिकाओं में छपने की ललक ने व्यंग्य को क्षति पहुँचाई है। व्यंग्य का स्वर्णिम काल तभी वापस होगा। विचार और शिल्प के अंतर्संबंध के बगैर व्यंग्य ही क्या कोई भी रचना सार्थक नहीं होती। उनमें संतुलन बना रहना चाहिए। लेकिन यह भी देखना होगा विचार की मात्रा कितनी है, और शिल्प कितना हो। इधर की अनेक कहानियों और कविताओं में हम देखते हैं कि वहाँ विचाकर शून्यता है मगर शिल्प प्रयोगधर्मी है। साहित्य कला तो है लेकिन केवल कला नहीं है, वह एक हथियार भी है, जागरण का, क्रांति का। व्यंग्य की जिम्मेदारी और अधिक है। उसे तथाकथित विचारधारा की सीमारेखा से बाहर आकर खड़ा होना है। ऐसा हो सका तो उसका शिल्प और निखरेगा और वह अखबारी लेखन न बन कर साहित्य-लेखन की तरह अपनी पहचान कायम कर सकेगा।

कुछ दोयम दर्जे के लेखक भी

व्यंग्य अब एक लोकप्रिय विधा है। इस कारण इस क्षेत्र में कुछ दोयम दर्जे के लेखक भी घुसते चले जा रहे हैं, जिनको व्यंग्य का तो क्या साहित्य लेखन का भी लक्ष्य पता नहीं। ऐसे लोग व्यंग्य को सिर्फ चलताऊ रचना मानकर संतुष्ट हो लेते हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य स्तंभ होते हैं, इसलिए लोग छपने की ललक से कुछ भी लिख कर भेज देते हैं। व्यंग्य के स्ट्रक्चर यानी ढाँचे से अपरिचित कुछ संपादक रचना पर व्यंग्य लिखा देखकर समझते हैं कि यह व्यंग्य रचना होगी। संपादक उसे पूरा पढ़ता भी है, लेकिन उसमें कहीं व्यंग्य नजर नहीं आता, फिर भी वह सोचता है कि हो सकता है, इसमें कहीं व्यंग्य हो, जो मेरी समझ में नहीं आ रहा, इसलिए वह उस रचना को प्रकाशित भी कर देता है। इस तरह अनेक रचनाकार व्यंग्यकारों की जमात में शामिल हो चुके हैं। इन्हें मैं शेर की खाल ओढ़ के बैठी लोमड़ी की तरह देखता हूँ। जो भीतर से लोमड़ी है और बाहर से शेर होने का दिखावा कर रही है। कुछ व्यंग्यकार खा-पीकर अघा, लेखक हैं। जीवनभर भ्रष्टाचार करते रहे फिर सेवानिवृत्ति के बाद भ्रष्टाचार पर व्यंग्य लिखने लगे। मज़े की बात, वे विसंगतियों के विरुद्ध लिखने की कोशिश कर रहे हैं। मगर उनकी रचनाओं में विसंगति नहीं नजर आती, व्यंग्य की कोई संगति भी दृष्टव्य नहीं होती। उनमें कोई सार्थक विमर्श नहीं नजर आता। और यही है सबसे बड़ी चुनौती व्यंग्य की कि उसमें व्यंग्य ही नजर नहीं आता। वह केवल और केवल कुछ भी हो कर रह जाता है। जिसे मैं प्रतिभाहीनों की विधा कहता हूँ वह सुविधा की कोख से निकलती है। व्यंग्य कोई मानसिक प्रलाप नहीं है कि आप लिखते चले जा रहे हैं और यह विवेक भी जाग्रत नहीं हो पा रहा कि हम लिख क्या रहे हैं। मन में जो कुछ भी ऊल-जलूल बातें उपजती हैं, उन्हें लिपिबद्ध कर देना व्यंग्य नहीं है। व्यंग्य कविता, कहानी की तरह ही साहित्य की एक गंभीर विधा है। यह विसंगतियों के विरुद्ध सशक्त हस्तक्षेप है। इसलिए इसकी एक-एक पंक्ति में गहरी मारकता होनी चाहिए। व्यंग्य हँसी-मजाक की भी चीज नहीं है। व्यंग्य कॉमेडी सर्कस नहीं है कि आप पढ़ने लगें और हँसी आने लग जाए। व्यंग्य पढ़ कर बुराइयों के विरुद्ध पाठक के मन में आक्रोश पैदा होना चाहिए। रचना की बुनावट सहज-सरल और रंजक भाषा में होनी चाहिए लेकिन रचना का लक्ष्य हँसाना बिल्कुल न हो। व्यंग्य के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह पाठकों को बांधकर रखे और विसंगतियों के विरुद्ध उसको मंथन के लिए भी विवश भी करें।

मेरी नज़र में व्यंग्य मसखरी नहीं है। लम्पटता या भाषिक अराजकता अथवा बौद्धिक प्रलाप भी नहीं है। यह कुछ भी लिखने की विधा नहीं है। यह साहित्य की ऐसी महत्वपूर्ण विधा है, जो सामाजिक परिवर्तन में अपनी महती भूमिका अदा करती है। मेरे व्यंग्य लिखने का तरीका बिल्कुल अलग है। मेरे व्यंग्य की हर एक पंक्ति विसंगतियों के विरुद्ध रचनात्मक हस्तक्षेप होती है। व्यंग्य मेरे लिए जीने-मरने का प्रश्न है। व्यंग्य लिखकर मैं साहित्य के ऋण से उऋण होने की विनम्र कोशिश करता हूँ। एक पंक्ति में कहूँ तो व्यंग्य मेरे लिए जीने की प्रविधि है। कोई कहे कि

"तुमको दौलत से मालामाल कर दूँगा, तुम आज से व्यंग्य लिखना बंद कर दो", तो उस प्रस्ताव को ठुकरा दूँगा और व्यंग्य की पथरीली राह पर चलना पसंद करूँगा।

व्यंग्य के समकालीन परिदृश्य में प्रखरता की कमी आई है। जिसे हम धारदार व्यंग्य कहते हैं, उसकी कमी दिखती है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि समकालीन मीडिया खुद तीखे व्यंग्य छापने से बचता है, क्योंकि तीखा व्यंग्य सीधे-सीधे राजनीति पर किया जाता है और सर्वाधिक भ्रष्ट राजनीति व्यंग्य को बर्दाश्त नहीं करती। वह अभिव्यक्ति की आजादी की बात तो करती है लेकिन तब तक ही, जब तक वह विपक्ष में होती है। जैसे ही कोई राजनीतिक दल सत्ता के रथ पर सवार होता है, सबसे पहले अभिव्यक्ति का गला दबाने की कोशिश करता है। एक सच्चा व्यंग्यकार सत्ता के चरित्र पर प्रहार करता है, तो उस पर सत्ता पलटवार करने लगती है। यह पलटवार खतरनाक होता है इसलिए हार कर व्यंग्यकार खामोश पड़ जाता है या आत्महत्या कर लेता है। उसकी नियति देखकर दूसरे व्यंग्यकार भी अपना रास्ता बदल कर के मसखरी पर उतर आते हैं। या फिर व्यंग्य के नाम पर कुछ भी लिख कर अपने आप को व्यंग्यकारों की जमात में शामिल करवाने की विफल कोशिश करते रहते हैं।

पूर्ववर्ती व्यंग्यकारों की तेजस्विता

इसमें दो राय नहीं कि व्यंग्य के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि हमारे पूर्ववर्ती व्यंग्यकारों की तेजस्विता को बरकरार रखते हुए व्यंग्य लिखे जाएँ। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालमुकुंद गुप्त से होते हुए हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली, श्रीलाल शुक्ल और लतीफ घोंघी आदि की परंपरा तथा भाषा की सरसता को कायम रख कर लिखे जाने वाले व्यंग्य अब बहुत कम नज़र आ रहे हैं। व्यंग्यकारों का यह दायित्व है कि वे सत्ता के व्यामोह से मुक्त होकर व्यंग्य लिखे, लेकिन व्यंग्य व्यक्तिपरक नहीं वरन प्रवृत्तिमूलक होने चाहिए। व्यक्ति मर जाता है, मगर प्रवृतियाँ शाश्वत होती हैं इसलिए ऐसे व्यंग्य नहीं लिखे जाने चाहिए, जो व्यक्तियों पर केंद्रित होते हैं। व्यक्ति केंद्रित लेखन पत्रकारिता या अखबारी लेखन का हिस्सा है, साहित्य का नहीं। साहित्य में व्यक्तिवाद नहीं, विचारवाद चलता है। व्यक्तिपरक जब व्यंग्य वर्षों बाद पढ़े जाते हैं, तो पाठक को उनका संदर्भ पता नहीं होता। वह व्यक्तिविशेष के बारे में नहीं जानता, जिस पर व्यंग्य लिखा गया है, तो उस व्यंग्य को समझने में पाठक को कठिनाई होती है। अगर केवल प्रवृत्ति पर व्यंग्य लिखे जाएँ, तो वह शाश्वत बना रहेगा। वर्षों बाद भी तरोताजा रहेगा। हम जितने भी हाईटेक होते जाएँ, हमारी मूल प्रवृत्तियाँ जस की तस रहती है यानी राग-द्वेष, मान-अपमान, भ्रष्टाचार, जोड़-तोड़ उठा पटक, कुंठा आदि विकार।

समकालीन व्यंग्य परिदृश्य की एक और सबसे बड़ी कमी मुझे यह दिखाई देती है कि इधर के नए व्यंग्यकार व्यंग्य को अखबारी विधा मानकर लिख रहे हैं। उनके लेखन का कंटेंट ज़्यादातर तात्कालिक होता है। आज कुछ घटना हुई और उस का संदर्भ देकर हल्का-फुल्का मजाक करते हुए पांच-सात सौ शब्दों का व्यंग्य तैयार कर दिया जाता है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि कुछ अंतराल के बाद वह व्यंग्य कालातीत हो जाता है। निस्संदेह हमें अपने युग के प्रति ईमानदार और सजग होना है, लेकिन लिखते वक्त यह भी ध्यान रखना है कि हम युग की घटना को साहित्य में रूपांतरित कर रहे हैं और साहित्य लंबी रेस का घोड़ा होता है। वह कोई खच्चर नहीं जो कुछ कदम चलकर ही थक कर बैठ जाता है। साहित्य हमारी स्मृतियों के कोठार में रखा हुआ वह अन्न होना चाहिए, जो कभी बासी नहीं पड़ता। व्यंग्य भी साहित्य के कोठार का ऐसा अन्न बने, जो लंबे समय तक संरक्षित रहे। जैसे पुराना चावल। आज भी हम भारतेन्दु हरिश्चंद्र की रचनाओं को पढ़ते हैं, तो ताजगी महसूस करते हैं। शरद जोशी और परसाई की भी अनेकानेक रचनाएँ, लगती हैं, आज के परिदृश्य के हिसाब से लिखी गई हैं। एक बड़ी रचना वही है, जो हर पल नवीन दिखाई दे। व्यंग्य वही सार्थक है, जो कभी पुराना न पड़े। जो पुराना पड़ जाए, कालातीत हो जाए, वह साहित्य नहीं हो सकता। साहित्य हल्की-फुल्की चीज नहीं। वह मानसिक वेदना संत्रास से उपजी हुई सर्जना होती है। व्यंग्य को करुणा का वाहक कहा जाता है, लेकिन आक्रोश उसका जन्मदाता है,

इसलिए जब हम किसी व्यंग्य में मसखरी देखते हैं तो समझ जाते हैं कि यह घुसपैठिया व्यंग्यकार है। मैं हास्य रचना की बात नहीं कर रहा। हास्य रचना हो तो विशुद्ध हास्य हो। व्यंग्य में आंशिक परिहास हो सकता है लेकिन उसका लक्ष्य अगर हँसाना है तो यह व्यंग्य के साथ अन्याय होगा।

सच को सच कहने की प्रविधि

व्यंग्य एक मिशन है, एक व्यंग्यकार होने के नाते अभिव्यक्ति के खतरे उठाते हुए भी व्यंग्य करना इसलिए भी ज़रूरी है कि साहित्य की अनेक विधा, जब नवजागरण के मुद्दे पर लगभग परोक्ष सा प्रतिवाद करती हैं, तब व्यंग्य ही है जो खुल कर बात करने की हिम्मत करता है। इस दौर में जब हर तरफ अन्याय, अत्याचार, दुराचार, पाखण्ड, नज़र आते हैं, तब स्वाभाविक है कि व्यंग्य ज़रूरी कर्म हो जाता है। कबीर ने छह सौ साल पहले सामाजिक जागरण के लिए व्यंग्य का सहारा लिया, हिंदी साहित्य में गद्य लेखन की धारदार शुरुआत करने वाले भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने प्रतिकार के लिए व्यंग्य का सहारा लिया।

परसाई और शरद जोशी जैसे लोगों ने व्यंग्य के माध्यम से अपने समय और समाज को उसका विद्रूप चेहरा दिखाया, मेरा छोटा-सा व्यंग्यकार रूप इनकी परम्परा का अनुगमन करते हुए व्यंग्य लिख रहा है, अखबारी लेखन के कारण व्यंग्य की मौत नज़र आ रही है, फिर भी कोशिश है कि व्यंग्य की परम्परा को बचाये रखने की विनम्र कोशिश की जाए इसलिए कोशिश करता हूँ कि हास्य के पीछे न भागते हुए व्यंग्य के सहारे कुछ सार्थक लिख सकूँ, व्यंग्य से हास्य का पुछल्ला लगभग गायब हो चुका है, इसलिए विशुद्ध व्यंग्य की साधना मेरा ध्येय है। व्यंग्य मेरे लिए जीने का साधन भी है। इसके बगैर बेचैनी होती है। सच को सच कहने की प्रविधि अगर कोई है, तो व्यंग्य ही है। आज साहित्य में जो वैचारिक तटस्थता दीखती है, उस पर अफ़सोस होता है, राजनीतिक-सामाजिक मूल्य जिस तेजी के साथ गिर रहे, तब यह ज़रूरी है कि प्रतिकार के स्वर मुखरित हों तब केवल व्यंग्य विधा ही है जो गम्भीरता के साथ प्रहार के लिए बेचैन नज़र आती है इसलिए व्यंग्य के विनम्र विद्यार्थी के नाते मुझे अपनी इस केंद्रीय विधा का बड़ा सहारा मिलता है इसलिए अपनी साहित्यिक सामाजिक ज़िम्मेदारी निभाने को व्यंग्य का सहारा लेता हूँ। व्यंग्य मेरे लिए परिवर्तनकामी विधा है इसलिए इसके स्वरूप को लेकर मेरी चिंता जायज है। व्यंग्य चलताऊ भाषा की चीज नहीं है। यह गंभीर विधा है, जो अब अगंभीर किस्म के चंद लेखकों के हाथ में खेल रही है। अब समय आ गया है कि व्यंग्य के शास्त्र बने, उसके स्वरूप पर काम हो उसका सौन्दर्यशास्त्र कैसा हो, इस पर आलोचना कार्य करे...व्यंग्य के नए प्रतिमान गढ़े जाएँ। भाषा, शिल्प और कंटेंट के स्तर पर भी कुल मिला कर साहित्य की केंद्रीय विधा के रूप में व्यंग्य की निरंतर सघन होती उपस्थिति आश्वस्त करती है कि इसमें प्रतिभाशाली सर्जक आएँगे और व्यंग्य की जो परम्परा रही है, उसके स्वरूप में कुछ और बेहतर इज़ाफ़ा करेंगे।

यह पूरा समय कल जैसा नहीं रहा

लेकिन सच तो यह है कि यह पूरा समय कल जैसा नहीं रहा। कल जैसी सदाशयता नहीं रही, कल जैसे मूल्य नहीं रहे, कल जैसी पत्रिकाएँ नहीं रहीं, कल जैसे आलोचक नहीं रहे। कल जैसा बहुत कुछ अब नहीं है। साहित्य की विधाओं ने और उसके शिल्प ने अपने रंग बदले हैं यानी कल जैसा अब कुछ भी नहीं है तब व्यंग्य कल जैसा कैसे रह सकता है? हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जिस दौर में लिख रहे थे, वह दौर हमारी चेतना और प्रगतिशील जीवन मूल्यों का चरम काल भी था। तब पत्रकारिता के कुछ मूल्य हुआ करते थे।

जीवन को दिशा देने वाले अखबार थे, पत्रिकाएँ थीं। वह समय बेहतर मनुष्य और समाज निर्माण के चिंता का था, मगर अब समय को बाजारवाद का तड़का लग गया है। अखबार पहले जैसे नहीं रहे, सिनेमा का पतन हुआ है। हमारी भाषा भ्रष्ट हुई है। नग्नता को सामाजिक स्वीकृति मिलती जा रही है। समलैंगिकता, लिव इन रिलेशनशिप आदि को अधिकार मान कर लोग प्रदर्शन करते हैं, भ्रष्टाचार-शिष्टाचार बनता जा रहा है। यानी कि वे तमाम बातें जो कभी व्यंग्य का विषय हुआ करती थीं, उन्हें सामाजिक स्वीकृति दिलाने की कोशिशें हो रही हैं। ऐसे

अराजक समय में आखिर व्यंग्य किया किस पर जाए और अगर करेंगे तो उसे कितनी स्वीकृति मिलेगी, इसीलिए अब व्यंग्य का चरित्र भी बदला है। इस वक्त समाज के केंद्र में राजनीति मसखरी चर्चा में रहती है। इसलिए इन दिनों राजनीति की मसखरी पर ही व्यंग्य लिखे जा रहे हैं और प्रकाशित हो रहे हैं। पत्रकारिता की पहले जैसी तेजस्विता खत्म हो चुकी है। संपादक नामक संस्था मर चुकी हैं। अब उसकी जगह 'सीइओ' ने ले ली है। अब परसाई जोशी जैसे व्यंग्य लिखे जाएँगे, तो छापेगा कौन? अखबारों को मसखरी चाहिए, सनसनी चाहिए।

अच्छा व्यंग्य न सनसनी फैलाता है, न मसखरी करता है। वह गंभीर हो कर विसंगतियों पर करारा प्रहार करता है। यही उसकी मूल प्रवृत्ति है। मुक्तिबोध ने कहा था जो भी है उससे बेहतर चाहिए। सारा कचरा साफ करने के लिए मेहतर चाहिए। तो, व्यंग्य सफाई कामगार की तरह काम करता है, मगर अब ऐसे व्यंग्य की कहीं पूछ नहीं है। कुछ साहित्यिक पत्रिकाएँ भर हैं जिनमें गंभीर व्यंग्य छप रहे हैं। अखबारों में छपने वाले अधिकांश व्यंग्य-व्यंग्य नहीं, फूहड़ या मसखरी टिप्पणियाँ भर हैं।

राजनेताओं की फूहड़ हरकतों को लेकर व्यक्तिपरक व्यंग्य लिखा जा रहा है। मानवीय प्रवृत्तियों को व्यंग्य गायब है। परसाई जोशी के व्यंग्य प्रवृत्तियों पर कटाक्ष करते थे।

इधर नई पीढ़ी के जो व्यंग्यकार आ रहे हैं, उन्होंने अपनी पुरानी पीढ़ी को पढ़ा ही नहीं है। व्यंग्य की भाषा, शैली को देखा-परखा नहीं। नये व्यंग्यकार केवल अखबारों में छपने के लिए लिख रहे हैं। डिमांड और सप्लाई वाली बात है। व्यंग्य अब बाजारू बन गया है। यही कारण है कि उसका साहित्यिक मूल्य नहीं रहा।

आलोचना ने भी साहित्य की इस गंभीर विधा को अनदेखा कर दिया। अखबारी व्यंग्य को देख कर अगर हम व्यंग्य का मूल्यांकन करेंगे तो स्वाभाविक है कि निराशा होगी। खुद मुझे पीड़ा होती है।

इन तमाम कमियों के बावजूद मैं कहना चाहता हूँ कि हमारा आज का व्यंग्य कल जैसा भले ही न हो, मगर कुछ लोग गंभीरता के साथ परसाई जोशी की परम्परा के अनुरूप व्यंग्य लिख रहे हैं। आज भी साहित्य के केंद्र में व्यंग्य है। बिना इस तत्व के कोई भी रचना प्रभावशाली नहीं हो सकती। एक अच्छा साहित्य सशक्त प्रतिपक्ष की तरह होता है और प्रतिपक्ष तभी होगा, जब उसमें विसंगतियों के विरुद्ध कटाक्ष करने का साहस हो। यह साहस केवल व्यंग्य के पास है। व्यंग्य लेखन के पतन के बीच भी आस्था-विश्वास के कुछ शिखर अभी भी बचे हुए हैं। व्यंग्य की गरिमा के अनुरूप लेखन करने वाले कुछ लोगों के पीछे-पीछे ल कर मैंने भी उसकी गरिमा को बचाए रखने की विनम्र कोशिश की है।

मेरे उपन्यास 'मिठलबरा की आत्मकथा' 'माफिया', 'पॉलीवुड की अप्सरा' और 'मीडियाय नमः' को मैं विनम्रतापूर्वक व्यंग्य की समृद्ध परम्परा का वाहक मानता हूँ। मेरे 30 व्यंग्य संग्रह भी इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। मैंने अखबारों में व्यंग्य स्तंभ लिखे मगर अपने व्यंग्य को अखबारी नहीं बनाया वहाँ भी मानवीय प्रवृत्तियों पर विमर्श ही किया दुर्भाग्य की बात है कि हिंदी आलोचना ने सार्थक लेखन करने वाले व्यंग्यकारों को कोई नोटिस ही नहीं लिया। खेमेबाजी की शिकार आलोचना ने बार-बार कुछ नामों को ही दोहराया।

व्यंग्य का दोयम दर्जे की विधा साबित करने की कोशिशें भी हुईं। व्यंग्य की वापसी के लिए यह जरूरी है कि हमारी आलोचना उन व्यंग्यकारों पर विमर्श करें जो सचमुच अच्छा व्यंग्य लिख रहे हैं। और उस परम्परा को आगे बढ़ाने का काम कर रहे हैं, जो परम्परा व्यंग्य को प्रतिष्ठित करती है।

हिंदी की महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ अब व्यंग्य प्रकाशित कर रही हैं, अच्छे प्रकाशन संस्थान भी स्तरीय व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित कर रहे हैं। इन पुस्तकों का उल्लेख आलोचना में होना चाहिए। अगर यह सिलसिला शुरू हो तो विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि व्यंग्य लेखन की प्रतिष्ठा लौटेगी और वह साहित्य का केंद्रीय स्वर भी बनेगा। क्योंकि व्यंग्य के बगैर बेहतर समाज की स्थापना संभव नहीं।

संवाद

डॉ. संजीव कुमार का सन्तोष खन्ना के साथ संवाद

संवादकर्ता : डॉ. संजीव कुमार

1. साहित्य के क्षेत्र में आपकी अभिरुचि कैसे उत्पन्न हुई और किससे प्रेरणा मिली?

उत्तर : साहित्य सृजन समाज के समक्ष उपस्थित होकर उसकी आशा, आकांक्षाओं और सपनों को स्वर देना, उसके दुःख दर्द के लिए दवा बनना तथा उसकी कठिनाइयों, संकटों और समस्याओं का समाधान तलाशना होता है। यह उपस्थिति बाह्य नहीं, भीतरी होती है। यह 'स्व' से 'पर' की यात्रा होती है। यह किसी साधना से कम का सफर नहीं होता। अतः कह सकते हैं कि साहित्य सृजन किसी ऋषि वत् साधना के समान होता है। इस साधना के भी सोपान होते ही हैं। कोई रचनाकार अपनी रचनाधर्मिता के कितने सोपान पार कर सकता है यह उसकी साधना पर निर्भर करता है। इन सबके लिए एक विशिष्ट भाव भूमि की जरूरत होती है। वह भाव भूमि एक संवेदनशील एवं सशक्त भाषा एवं शैली की भी मांग करती है। मेरे आरम्भिक जीवन की स्थितियाँ, परिस्थितियाँ और वातावरण ऐसा नहीं था कि मेरे जीवन में ऐसा कुछ होता, जिससे मैं यह बता सकूं कि मेरी साहित्य के क्षेत्र में अभिरुचि कैसे उत्पन्न हुई। आज जब पीछे मुड़कर देखती हूं कि मेरी साहित्य के प्रति अभिरुचि आरम्भ से ही रही होगी, जिसका मुझे स्वयं ही पता नहीं था। वह अभिरुचि कहीं मेरी अज्ञानता, भोलेपन और अचेतनशील बुद्धि के नीचे दबी रही होगी। उस समय समय और जीवन के दूसरे सरोकारों ने उसे सिर उठाने का अवसर नहीं दिया होगा।

अब मैं उन स्थितियों की और संकेत करना चाहूंगी। जब जयशंकर प्रसाद अपनी काव्य कला, नाट्य कला, कहानी कला से और कामायनी जैसे कालजयी और शाश्वत महाकाव्य से युग प्रवर्तक बन तत्कालीन भारत के साहित्यिक जगत को अप्लावित कर चुके थे और महानिर्वाण की तैयारी में थे और मुंशी प्रेमचंद समूचा जीवन संघर्षरत रह कर उपन्यासों का विपुल भंडार भर रहे थे और गोदान जैसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की रचना के कारण भी उपन्यास सम्राट बनने के बाद इस नश्वर संसार को अलविदा कहने के कगार पर थे उन्हीं किंही वर्षों में अपने पिता के यहाँ जब मेरा अवतरण हुआ, उस समय मेरे पिताश्री अपने जमींदार पिता के कहने पर अध्यापन के कार्य को छोड़ अपने एक गांव को बसाने का बीड़ा उठाए थे और उस गांव को खेत 'सुनारी वाला' खलिहान से हरा-भरा कर देने की प्रक्रिया से गुजर रहे थे। वह अपने उस कार्य में कितने सफल हुए, मैं नहीं जानती। बच्चों की शिक्षा के लिए वह गांव छोड़ वहाँ से दीपालपुर शहर में जाकर रहने लगे। फिर पता नहीं क्या हुआ, वह शहर छोड़ कर अपने एक अन्य गांव भगवानपुर में बस गये और अपनी वहाँ की खेतीबाड़ी की देखभाल करने लगे।

मैंने अभी होश संभाला ही नहीं था कि भारत का विभाजन हो गया। हमारे परिवार को भारत के पाकिस्तान वाले क्षेत्र से काफिले के साथ पैदल भारत आना पड़ा था। जिन स्थितियों में हमारे परिवार ने अपना घर-बाहर छोड़ा था उसमें वह कुछ भी साथ नहीं ला पाए थे। किसी तरह सरहद पार कर परिवार वर्तमान पंजाब राज्य के फिरोजपुर जिले में आ गया और एक रिश्तेदार की सहायता से एक कमरे का मकान किराए पर लिया गया। वहाँ भी हमें अधिक देर तक रहना नसीब नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद फिरोजपुर में भीषण बाढ़ के प्रकोप ने घेर लिया। हमारे उस एक कमरे के मकान में 5 फीट तक बाढ़ का पानी भर गया था। परिवार डूबने से बचा क्योंकि सबने छत पर आश्रय ले लिया था। वहीं छत से हमें राहत शिविरों में पहुंचाया गया और फिर वही से बाढ़ पीड़ित अन्य लोगों के साथ सरकार ने हमें कुरुक्षेत्र में शिविरों में भेज दिया। वहाँ भी कुछ दिनों में हैजा ऐसा फैला कि सरकार ने वहाँ के शरणार्थियों को मध्य प्रदेश के

जबलपुर में किन्हीं शिविरों में बसाने का प्रयास किया। वहाँ पर भी हम अधिक देर तक नहीं रुके। हमारा परिवार वहाँ से पहले पंजाब के जीरा शहर में आ गया और फिर वहाँ से लुधियाना जाकर रहने लगे। लुधियाना के स्कूल में मेरी शिक्षा शुरू हुई। बाद में हमारे पिताजी को फिरोजपुर के पास जलालाबाद से 5 मील की दूरी पर एक गांव में कुछ कृषि भूमि अलॉट हो गई। तब परिवार जलालाबाद में जाकर रहने लगा। उस समय जलालाबाद में केवल पांचवी तक का स्कूल था वहीं से मैं पांचवी पास की। लड़कियों के लिए वहाँ शिक्षा का कोई साधन नहीं था। वह तो वहाँ ईश्वरीय कृपा से वहाँ के नगर निगम में एक ऐसा अधिकारी तैनात हुआ था जिसकी पत्नी ने वहाँ स्कूल खोलने की बात सोची। उस स्कूल में केवल पांच लड़कियां ही थी जिनको उन टीचर ने छठी, सातवीं और आठवीं की शिक्षा दी और उन्हें पास के शहर में आठवीं बोर्ड की परीक्षा दिलवाई। अब आगे की पढ़ाई का प्रश्न था? आप इसे मेरा सौभाग्य ही समझे कि जलालाबाद में एक परिवार की दो बेटियों को एक मास्टर घर पर पढ़ाने आते थे। मैं उनके घर जा कर उन लड़कियों के साथ उस मास्टर से पढ़ने लगी और आठवीं करने के एक साल बाद मैने पंजाब विश्वविद्यालय से दसवीं की परीक्षा पास कर ली। मैंने वह परीक्षा सेकिंड डिवीजन में पास की थी और गणित में मेरे अच्छे नंबर आये थे। उस समय जलालाबाद की मैं पहली लड़की थी जिसने दसवीं की थी। उस के बाद परिस्थितियाँ ऐसी बनी कि एक साल बाद मेरा विवाह हो गया और मैं उस छोटे-से कस्बे से दिल्ली आ गई।

विवाह के बाद संघर्ष का एक और कटु कंटकाकीर्ण दौर शुरू हुआ। तब चारों ओर अंधकार ही अंधकार नज़र आता था पर उसमें एक चमकती लकीर भी थी। मैंने एक टाइपिंग शॉप से टाइपिंग सीखनी शुरू कर दी और कुछ महीनों के परिश्रम के बाद मैंने रोजगार कार्यालय से टाइपिंग टेस्ट अच्छी स्पीड में पास कर लिया। बस फिर क्या था? उसके बाद रोजगार के लिए कॉल लेटर आने शुरू हो गए और इसी प्रक्रिया में अंतत मुझे ऑल इंडिया रेडियो में नौकरी मिल गई।

सरकार की नौकरी से जीवन में परिवर्तन आना शुरू हुआ। उस समय एक नई सोच शुरू हुई कि अगर नौकरी करनी है तो केवल कलर्क की नौकरी से ही संतुष्ट नहीं हो जाना है। बेहतर नौकरी के लिए शिक्षा अच्छी होनी चाहिए। बस एक नया संकल्प आकार लेने लगा और मैंने 12वीं करने के लिए इवनिंग क्लासेस जॉइन कर ली। दफ्तर से छुट्टी के बाद संध्याकालीन क्लासेस अटेंड कर रात को घर पहुंचती और फिर रसोई आदि का काम निपटाती। इस तरह दिन रात की कड़ी मेहनत करते-करते मैंने पंजाब विश्वविद्यालय से ग्रेजुएशन की परीक्षा पास कर ली।

तब भी ज्ञान पिपासा अभी भी शांत नहीं हुई थी और तब मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय के सांध्यकालीन संस्थान में एम. ए. में दाखिला ले लिया। आरंभ में दाखिला तो मैंने राजनीति विज्ञान में लिया था परंतु पता नहीं किन भावनाओं से प्रभावित होकर मैंने राजनीति विज्ञान छोड़ दिया और हिंदी में दाखिला ले लिया। हिंदी साहित्य के संपर्क में आने के बाद मेरी साहित्यिक अभिरुचि जागृत होने लगी। उस समय तक मेरा दिमाग एक कोरी सलेट ही था फिर तो बहुत सारे साहित्यकारों की संवेदना और विचार मेरे टूटे फूटे लेखन में आकार लेने लगे। छायावादी कवियों विशेष रूप से जयशंकर प्रसाद का साहित्य अच्छा लगने लगा और मैंने पाठ्यक्रम में जय शंकर प्रसाद को एक विशिष्ट लेखक के रूप में पढ़ा। जय शंकर प्रसाद के साहित्य का आज तक प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्ष ऐसा प्रभाव है कि मेरी रचनाएं प्रायः यथार्थ से अधिक आदर्शोन्मुखी अधिक होती हैं। एम.ए. हिंदी करने के बाद मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय से ही नॉन कॉलेजिएट में अंग्रेजी में दाखिला ले लिया था। इन सब के बीच एक और अच्छी बात यह हुई कि लोकसभा में सहायक के पद पर जाने के लिए एक अखिल भारतीय परीक्षा में मैंने बाजी मारी ली और मेरा वहाँ चयन हो गया। वहाँ तीस वर्ष कार्य किया। वहाँ से सेवानिवृत्त होने के बाद मुझे राष्ट्रीय महिला आयोग में कंसल्टेंट के रूप में बुला लिया गया और फिर वहीं कार्य करते करते मेरा उपभोक्ता फोरम में जज के रूप में चयन हो गया। पांच वर्ष की इस नियुक्ति के बाद मैं जब वहाँ से सेवानिवृत्त हुई तो मैं पैंसठ वर्ष की हो चुकी थी।

प्रश्न 2. साहित्य के क्षेत्र में आपकी पहली रचना कब प्रकाशित हुई और अब तक कितनी रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं?

उत्तर : शिक्षा का स्तर बढ़ने से मेरी साहित्य में अभिरुचि तो जाग ही चुकी थी परंतु पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, दफ्तर का कार्य, अध्ययन, भारतीय अनुवाद परिषद् का कार्य, मैंने अनेक जिम्मेदारियाँ ओढ़ रखी थीं, इसलिए ऐसा लेखन कम हो पता था जो पूर्णता की परिणति को प्राप्त हो जाता हो। कविता शुरू होती, अधूरी रह जाती। ऐसे ही कहानी भी पूरी नहीं हो पाती थी। मेरी कई कविताओं और कहानियों की तो भ्रूण हत्या हो जाती थी। खैर, मेरी सब से पहली रचना जो प्रकाशित हुई, वह एक कहानी थी, जिसका शीर्षक था 'समाधि का फूल।' यह कहानी एक लधु पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। मेरी पहली पुस्तक जो प्रकाशित हुई वह 'साक्षी' काव्य संग्रह था। किसी तरह मैंने समय निकालकर अपनी रचित कविताओं में से कुछ कविताओं की एक पांडुलिपि बनाकर दिल्ली की हिंदी अकादमी को भेज दी थी जहाँ वह प्रकाशन सहायता के लिए मंजूर कर ली गई थी। उसके बाद तो मेरे अब तक छः काव्य संग्रह, एक कहानी संग्रह, एक उपन्यास, दो नाटक और एक नाटकानुवाद प्रकाशित हो चुका है। नाट्यानुवाद अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार बर्नार्ड शॉ के विश्व प्रसिद्ध नाटक 'सेंट जॉन' का अनुवाद है। हिंदी में इस नाट्यानुवाद की राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय मंच प्रस्तुति कर चुका है। हिंदी आलोचना पर एक पुस्तक 'समालोचना के स्वर' प्रकाशित है तो 'अनुवाद के नए परिप्रेक्ष्य' शीर्षक से एक पुस्तक अनुवाद सिद्धांत और व्यवहार पर प्रकाशित है। पांच पुस्तकें विधि विषयों पर प्रकाशित हैं। इसी प्रकार, हिंदी में मेरी 20 मौलिक पुस्तकें हैं तथा 16 संपादित पुस्तकें हैं और मैंने चार पुस्तकों का अंग्रेजी में भी संपादन किया है। कुल मिलाकर अब तक लगभग चालीस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

3. साहित्य की किस-किस विधा में काम किया है और कौन सी विधा आपको सबसे ज्यादा रुचिकर लगी है?

उत्तर : मैंने साहित्य की हर विधा में काम किया है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और गद्य में भी बहुत काम किया है। समाचार पत्रों, विशेष रूप से हिंदी हिन्दुस्ताान समाचार पत्र में मेरे अनेक आलेख, कविता आदि प्रकाशित हुए। वैसे नाटक लिखना मुझे रुचिकर लगता है। यद्यपि मैंने दो ही नाटक लिखे हैं और एक नाटकानुवाद किया है। समय अगर मिलता रहता तो और भी नाटक लिख सकती थी।

4. क्या आपका अध्यवसाय साहित्य के क्षेत्र में कभी आड़े आया?

उत्तर : मैंने व्यवसाय को भी पूजा की तरह निभाया है। लोकसभा में कार्य करते हुए कभी यह अनुभव नहीं होने दिया कि मैं पैसे के लिए नौकरी कर रही हूँ। हमेशा यही सोचा कि मैं यह कार्य देश सेवा के लिए कर रही हूँ। इस उदात्त भावना के कारण लोकसभा में कार्यभार अधिक होने के बावजूद मैंने उसे हमेशा निष्ठा, लगन और परिश्रम से किया। लोकसभा से सेवानिवृत्त होने के बाद मैं राष्ट्रीय महिला आयोग और फिर उपभोक्ता फोरम में कार्य किया। अगर लोक सभा से सेवानिवृत्त के बाद भी अगर मुझे देश के कुछ और कार्य दिये गये हैं तो यह भी ईश्वर की इच्छा के तहत हैं। साथ ही विधि के क्षेत्र में मुझे ईश्वर ही ले कर आये, उसमें आरंभ में मेरी कोई योजना नहीं थी। यदि मैं केवल साहित्य के प्रति समर्पित होती तो मैं समझती हूं कि मैं अब तक कई और उपन्यास और नाटक लिख चुकी होती। इस मायने में मेरे साहित्य सृजन को अवश्य क्षति पहुंची है।

5. कानून और साहित्य के क्षेत्र में बराबर काम कर रही हैं तो इसमें तालमेल कैसे बिठा लेती हैं?

उत्तर : वास्तव में मैं तो एक हूँ, भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में समय तो बंटता रहा, अगर मेरा कर्म क्षेत्र एक होता तो उस क्षेत्र विशेष में मेरी उपलब्धियाँ अधिक होती। ईश्वरीय इच्छा यहीं रही कि भिन्न भिन्न स्थानों पर सक्रिय रहूँ। अगर मेरे व्यवसाय को ही देखें तो मेरा पहली जॉब ऑल इंडिया रेडियो में थी अर्थात् मैं कार्यपालिका में थी बाद में संसद में अर्थात् व्यवस्थापिका में और अंत में न्यायपालिका में थी। एक ही इस जन्म में शासन के तीनों अंगों में मुझे देश सेवा का अवसर मिला तो लोकतंत्र का चौथा स्तंभ पत्रकारिता में

मैं हूँ ही, इसके साथ अध्यापन कार्य में न होते हुए मुझे अध्यापन करने को भी पुिल अवसर मिले। इन सब से यह लगता है कि मेरे लिए मेरी भूमिकाओं का निर्णायक कोई और था।

7. आप आप क़ानून की पत्रिका 'विधि भारती' की संपादक हैं। इसे आपने कब आरंभ किया और आपका कैसा अनुभव रहा?

उत्तर : इस पत्रिका का प्रकाशन वर्ष 1994 में आरंभ हुआ था और अब यह तीन दशकों का लंबा सफर तय कर प्रकाशन के अपने तीसवें वर्ष में पहुंच गई है। ईश्वरीय कृपा से लगभग इन तीस वर्षों में इसका प्रकाशन निरंतर चलता रहा है, कभी रुका नहीं। हालांकि इस पत्रिका को चलाने के लिए कभी भी कहीं से भी पर्याप्त वित्तीय सहायता कम ही मिल पाई है परंतु अभी तक यह निरंतर चल रही है तो मैं समझती हूं इसके संचालन के पीछे भी वहीं अदृश्य शक्ति है। जब मैंने पत्रिका निकालने के बारे में सोचा था तो उस समय यह जानने का प्रयास किया था कि उस समय विधि के क्षेत्र में कौन-कौन सी पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। उस समय 'विधिका' नाम से एक पत्रिका प्रकाशित हो रही थी जो बाद में जल्दी बंद हो गई। साहित्यिक पत्रिकाओं की तो देश में भरमार है पर विधि के क्षेत्र में कोई पत्रिका देखने को नहीं मिली। जहाँ तक मेरी जानकारी है भारत में 'विधि भारती अपने किस्म की यह अकेली एक पत्रिका है जो निरंतर प्रकाशित हो रही है। मेरा इसे प्रकाशित करने का अनुभव सुखद रहा क्योंकि इन तीस वर्षों में देश के विधि विशेषज्ञों ने, सामाजिक और राजनीतिक चिंतक लेखकों ने निस्वार्थ भाव से इस पत्रिका में लिखा है, हम किसी को आज तक भी लेखन के लिये वित्त दान नहीं कर पाये, यह किसी चमत्कार से कम नहीं है।

8. सामाजिक सरोकारों का आपके लेखन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर : साहित्य और समाज का परस्पर चोली दामन सा संबंध है। साहित्य में समाज का ही प्रतिबिंब परोसा जाता है। साहित्य में समाज नहीं होगा तो साहित्य में बचेगा क्या? समाज कोई एक एकांगी इकाई नहीं है, इसमें सभी कुछ समावेशी है। समाज का गौरवशाली अतीत है उसका वर्तमान है और वही उसका भविष्य भी होगा ही। ऐसे में मेरा सारा लेखन सामाजिक सरोकारों का एक साफ सुथरा दर्पण है। वैसे भी, साहित्य सदा ही समाज के पक्ष में खड़ा मिलता है। साहित्य समाज के अनेक विमर्शों का वाहक होता है। उदाहरण के तौर पर, साहित्य समाज के शोषितों, वंचितों, पीड़ितों और दलितों के पक्ष में खड़ा दिखाई देता है।वह महिला विमर्श का सबसे सशक्त साधन है। कुल मिलाकर, साहित्य का मंतव्य और गंतव्य समाज में पसरे अंधेरों से मुक्ति के रास्ते तलाशना है। साहित्य अपने स्तर पर संघर्ष से कभी विरत नहीं होता।

जब भी कोई साहित्यकार साहित्य की रचना करता है उसके समक्ष समाज की समूची परंपरा उपस्थित होती है। वह आज के समाज को प्राचीन गौरव, इतिहास, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता के आयने में देखता है। परंपरा को यहाँ एक परिवर्तनशील एवं काल सापेक्ष प्रक्रिया के रूप में समझ जाना चाहिए। साहित्य में सामाजिक बोध की समझ ही सार्थक लेखन की ओर प्रवृत कर सकती है। सामाजिक बोध स्वयं में काल की निरंतरता को समेटे है। साहित्य वर्तमान के समृद्ध अतीत, समृद्ध साहित्यिक परंपरा और समृद्ध सभ्यता और संस्कृति के संदर्भों के साथ ही स्वयं को सार्थक कर सकता है। इसी प्रकार, वर्तमान में मूल्यों के तेजी से होते अवमूल्यन में आज के साहित्यकार का नव समाज निर्माण के प्रति दायित्व बहुत बढ़ गया है। साहित्य रचना मानसिक विलास का कर्म नहीं, अपितु मानसिक प्रबुद्धता का धर्म है। समाज में पसरी अराजकता, अधर्म, अपराधिक प्रतिस्पर्द्धा, असंयम और उपभोक्तावाद की अंधाधुंध आंधी हमारी भावी युवा पीढ़ियों का भविष्य लीलती प्रतीत होती हो रही है। हम अब अधिक देर तक उपेक्षा की भूल भुलैया में नहीं भटक सकते। सृजन का एक नया सूर्य जगमगाना होगा।

9. आपने कई पुरस्कारों के स्थापना की थी। क्या आप उनके बारे में कुछ रोशनी डालेंगी?

उत्तर : सम्मान और पुरस्कारों को यदि हम वर्तमान परिदृश्य में देखते हैं तो हमें आशा से अधिक घोर निराशा

का अनुभव होता है और अगर मैं ईमानदारी से कहूँ तो कभी-कभी तो वितृष्णा तक का भाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रह पाता। आज सम्मान/पुरस्कार एक इंडस्ट्री बंद कर रह गये हैं। यह एक बाज़ार बन गया है यहाँ तक कि आपको बाकायदा अन्य प्रोडक्ट्स की तरह उनका भी विज्ञापन देखने को मिलेगा कि आप इतनी धनराशि दीजिए, आपको सम्मानित या पुरस्कृत किया जाएगा वह भी किसी तीन तारा या पांच तारा समारोह में। किसका कौन-सा तारा संस्कृति में सम्मान होगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आपने कितनी अधिक धनराशि का योगदान दिया है यानी उपलब्धि अथवा प्रतिभा जैसे कारक तो बिल्कुल गौण हो गए हैं या नेपथ्य में चले गये हैं। तलछट पर रह गई है आदान-प्रदान की संस्कृति, पर मैं यहाँ जिन सम्मान/पुरस्कारों का जिक्र कर रही हैं वह एक चौथाई शती पहले की बात है। ऐसा नहीं है कि उस समय इस क्षेत्र में क्षरण नहीं था तब भी 'तू मेरा कर मैं तेरा' वाली संस्कृति कुछ हद तक तो होगी ही परंतु आज जैसी सीधे-साधे व्यापार वाले स्थिति नहीं थी अर्थात् इस क्षेत्र में इतना क्षरण नहीं हुआ था जितना आज है।

उस समय ऐसे सम्मान और पुरस्कारों की साख और धाक थी जिनके लिए हर अच्छे लेखक/साहित्यकार की अभिलाषा होती रही होगी कि उसे भी वह सम्मान पुरस्कार मिले। अब मैं 20वीं शती के अंतिम दशक की समाप्ति के समय की बात कर रही हूँ। जब मैं समाचार पत्रों/इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में ऐसे समाचार देखती थी कि अमुक-अमुक साहित्यकार को अमुक पुरस्कार दिया जा रहा है तो तन-मन को एक पुलक रोमांचित कर जाती थी। साहित्य एवं अन्य क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान के लिए सम्मान समारोह में जाने का अवसर भी मिलता रहता यहाँ तक कि 'भारतीय अनुवाद परिषद्' के पुरस्कार प्रदान करने की प्रक्रिया से मैं आरंभ से अर्थात् वर्ष 1986 से ही अभिन्न रूप से जुड़ी रही हूँ और आज तक उन पुरस्कारों की एक विशिष्ट साख है। इस प्रकार यह सोच आकार लेने लगी थी कि विधि और न्याय के क्षेत्र में इस प्रकार के सम्मान/पुरस्कार संस्थापित किये जायें। उस समय विधि और न्याय के क्षेत्र में ऐसे सम्मान लगभग नहीं के बराबर थे। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि इस क्षेत्र में किसी का कोई सर्वोत्तम योगदान ना हो। इस संदर्भ में यह सोच आकार लेने लगी थी कि विधि और न्याय के क्षेत्र में 'विधि भारती परिषद्' के मंच से इस प्रकार की पहल की जाए। मैं इस बात की साक्षी थी कि 'भारतीय अनुवाद परिषद्' की संस्थापक डॉ. गार्गी गुप्ता ने भारतीय अनुवाद परिषद् की ओर से अनुवाद के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट योगदान के लिए साहित्यकारों/अनुवादकों के लिए भारत में सर्वप्रथम पुरस्कारों की नींव डाली थी। सर्वप्रथम 'नताली पुरस्कार' 1986 में आरंभ किया गया। डॉ. गार्गी गुप्ता ने आरंभ से ही अर्थात् 1964 से भारतीय अनुवाद परिषद् की स्थापना वर्ष से मुझे परिषद् में जोड़ लिया था और उन तमाम वर्षों में मुझे उनके साथ निरंतर कार्य करने का सुअवसर मिला था। हो सकता है इन सब का मेरे मानस पर प्रभाव के कारण ही 'विधि भारत' परिषद् से सम्मान/ पुरस्कार प्रारंभ करने की सोच मेरे ज़हन में आई हो। विचार तो कई प्रकार के कार्य करने के लिए आते जाते रहते हैं, किसी भी विचार के सार्थकता उसे साकार करने में होती है। जो सोचा, उसे करके दिखा दिया, यह प्रक्रिया स्वयं में कई चुनौतियां लेकर आती है। संक्षेप मेंए वर्ष 2000 में अर्थात् 21 शती के शुभारंभ पर 'विधि भारती सम्मान' के स्थापना हो गई। इस सम्मान संस्थापना में अंतर्निहित संकल्पना यह थी कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशेष रूप से विधि और न्याय के क्षेत्र में सर्वोत्तम मानव मूल्यों की स्थापना हो। अतः 'विधि भारती' सम्मान प्रदान करने के लिए इस नियम पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया गया कि यह सम्मान हर वर्ष भारत की उन प्रतिष्ठित विभूतियों को प्रदान किए जाए जिन्होंने जीवन में सर्वोत्कृष्ट मानव मूल्यों की स्थापना की हो और साथ ही विधि और न्याय के क्षेत्र में अद्वितीय रचनात्मक योगदान देकर देशवासियों के समक्ष अपने आचरण से अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया हो और साथ ही राष्ट्रीय छवि के ऐसे महानुभाव विवाद के घेरे में नहीं हो तथा वह स्वयं में एक संस्था हो और उनमें से अनिवार्यतः एक विभूति महिला हो।

इस विशिष्ट कसौटी को ध्यान रखकर ऐसी राष्ट्रीय

विभूतियों का चयन स्वयं में एक बहुत बड़ी चुनौती थी। इसके लिए स्वाभाविक ही था कि ऐसी चयन समिति या मंडल का गठन किया जाए जिसमें ऐसे महानुभाव हों जो स्वयं राष्ट्रीय छवि के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और जो निष्पक्ष होकर 'विधि भारती सम्मान' के लिए व्यक्तियों का चयन करें । विधि भारती परिषद् का यह परम सौभाग्य ही था कि उच्चतम न्यायालय की पूर्व न्यायाधीश और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की तत्कालीन विदुषी माननीय सदस्य न्यायमूर्ति श्रीमती सुजाता वी. मनोहर ने कृपापूर्वक चयन समिति की अध्यक्ष होने के महत् दायित्व को स्वीकार किया।

इस संदर्भ में जब मेरी उनसे मुलाकात हुई तो मैंने उन्हें अपना मंतव्य बताया। उस समय तक इस सम्मान को क्या नाम दिया जाए, इस बारे में मेरी सोच इतनी स्पष्ट नहीं हो पाई थी। मैंने सुजाता वी. मनोहर को कई नाम सुझाए और उन्होंने 'विधि भारती सम्मान' नाम को पसंद किया और उसे पर अपनी मुहर लगा दी। बस फिर क्या था? हमने 'विधि भारती सम्मान समिति' की न्यायमूर्ति श्रीमती सुजाता वी. मनोहर के अध्यक्ष होने का हवाला देते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति एम. एल. जैन तथा दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद जी से इस सम्मान समिति का सदस्य होने के लिए अनुरोध किया और उन्होंने भी इस महत् दायित्व को स्वीकार कर लिया।

न्यायमूर्ति श्रीमती सुजाता वी. मनोहर की अध्यक्षता में 'विधि भारती सम्मान समिति' की एक बैठक माननीय सुजाता जी के कार्यालय कक्ष में आयोजित की गई। विधि भारती परिषद की ओर से परिषद की महासचिव श्रीमती सन्तोष खन्ना, श्रीमती मंजू चौधरी (कोषाध्यक्ष) श्री वेद प्रकाश कालरा और डॉ. के. एस. भट्टी (सदस्य) ने भी इस बैठक में भागीदारी की। न्यायमूर्ति सुजाता वी. मनोहर जी की अध्यक्षता में 16 मार्च, 2001 को संपन्न बैठक में 'विधि भारती सम्मान' के लिए कई नामों पर विचार किया गया। कुछ नाम हमने सुझाए और कुछ न्यायमूर्ति सुजाता जी ने और सर्वसम्मति से निम्नलिखित तीन नामों का चयन किया गया। वे नाम इस प्रकार थेः

उच्चतम न्यायालय के अंतरराष्ट्रीय लब्ध प्रतिष्ठित न्यायमूर्ति श्री हंसराज खन्ना।

दिल्ली विश्वविद्यालय की विधि संकाय की प्रसिद्ध पूर्व प्रोफेसर लोतिका सरकार माननीय श्री के. परासारन 'विधि भारती सम्मान' के लिए तीन महानुभावों के नाम का चयन हो जाने के बाद अगला कदम था उनकी सहमति लेने का। सर्वप्रथम, जब हम माननीय न्यायमूर्ति श्री हंसराज खन्ना की सहमति के लिए उनके घर पहुंचे तो उन्होंने सहर्ष ही अपनी सहमति दे दी। उनके ड्राइंग रूम में उनको मिले पद्म विभूषण की प्रशस्ति सुशोभित हो रही थी। हमें तब पता नहीं था कि उनको पद्म विभूषण से सम्मानित किया जा चुका था। एक क्षण को तो हम सब सकते में थे कि जिस व्यक्ति को देश के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित किया जा चुका हो क्या वह विधि भारती परिषद् से सम्मान स्वीकार करेंगे? पद्म विभूषण की प्रशस्ति के पास बैठे न्यायमूर्ति श्री खन्ना से पहली बार हमारी भेंट हुई थी। उनका सहज, सरल एवं गरिमायुक्त व्यवहार हम सबको प्रभावित कर दिया। उन्होंने बड़े गरिमापूर्ण ढंग से हमारा स्वागत किया और विधि भारती सम्मान के लिए स्वीकृति दी।

तत्पश्चात, हम लोग माननीय श्री के. परासारन से मिलने गए। जब उनसे मुलाकात हुई और हमने उनके समक्ष अपने आने का मंतव्य रखा तो उन्होंने अपनी मेज़ की दराज़ से एक पत्र की प्रतिलिपि हमें देते हुए कहा, कल ही मैंने इस संस्था से सम्मान ना लेने की क्षमा याचना करते हुए यह पत्र लिखा है। यदि मैंने उस संस्था को यह पत्र ना लिखा होता तो आज मैं इस सम्मान के लिए आवश्यक सहमति दे देता और आप लोगों के विशेष स्नेह और सादर अनुरोध को कभी टालता किंतु यह कदापि उचित नहीं होगा कि मैं एक दिन पहले एक को मना कर दूं और आज आपको 'हाँ' कर दूँ। कृपया आप मेरा धर्म संकट समझें। श्री के. परासारन की सज्जनता, सरलता और उनके पक्ष के सामने हम नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सके। प्रोफेसर लोतिका सरकार की सहमति मिल गई थी और विचार विमर्श के बाद यही फैसला हुआ इस बार 'विधि भारती सम्मान' इन दोनों विभूतियाँ श्री खन्ना और प्रोफेसर लोतिका

सरकार को ही दिया जाए।

11 अप्रैल 2001 को स्पीकर हाल, कांस्टीट्यूशन क्लब, रफी मार्ग, नई दिल्ली में एक भव्य सामान समारोह का आयोजन किया जिसमें उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति श्री हंसराज खन्ना और दिल्ली विश्वविद्यालय की पूर्व प्रोफेसर डॉक्टर लोतिका सरकार को जीवन में सर्वोत्कृष्ट मानव मूल्यों की स्थापना करने और विधि और न्याय के क्षेत्र में अद्वितीय रचनात्मक योगदान के लिए सम्मानित किया गया। इस समारोह की अध्यक्षता भारत के इंग्लैंड में पूर्व हाई कमिश्नर, राज्यसभा के तत्कालीन सदस्य, प्रसिद्ध विधि लेता, कवि और साहित्यकार डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी ने की और इस समारोह के मुख्य अतिथि थे भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एवं तत्कालीन राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष माननीय न्यायमूर्ति श्री जगदीश शरण वर्मा। इस प्रकार इस भव्य समारोह में न्यायमूर्ति हंसराज खन्ना और डॉक्टर लोतिका सरकार को विधि भारती सम्मान से सम्मानित किया गया और उस समय मंच पर विराजमान थी न्यायमूर्ति श्रीमती सुजाता वी मनोहर, श्री लोकेश्वर प्रसाद, न्यायमूर्ति श्री एम एल जैन एवं डॉक्टर सरोजिनी महिषी।

'विधि भारती सम्मान' की परम्परा आगे बढ़ती रही है और अब तक देश की प्रतिष्ठित विभूतियाँ यथा माननीय न्यायमूर्ति श्री एम.एन. वेंकटचलैया, भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एवं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष, माननीय डॉ. वीएस रामादेवी, पूर्व राज्यपाल, कर्नाटक राज्य, श्री एचडी शौरी, अध्यक्ष, कामन कॉज़, न्यायमूर्ति माननीय श्री पीएन भगवती, भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश, न्यायमूर्ति श्रीमती लीला सेठ, हिमाचल प्रदेश राज्य की पूर्व मुख्य न्यायाधीश, न्यायमूर्ति माननीय श्री बीपी जीवन रेड्डी, उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, प्रोफेसर एसके वर्मा, प्रोफेसर, विधि संकाय दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रोफेसर डॉ. एम.एस स्वामीनाथन, हरित क्रांति के जनक एवं तत्कालीन सांसद सदस्य तथा और कई अन्य विभूतियाँ जिन्हें अब तक विधि भारती सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है। अब तक 15 प्रतिष्ठित विभूतियां को 'विधि भारती सम्मान' से सम्मानित किया गया है। कोरोना संकट की वजह से इस प्रक्रिया में बाधा अवश्य उपस्थित हुई परंतु यह परंपरा अभी जारी है।

राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार

विधि भारती परिषद ने यह पुरस्कार 2005 में प्रारंभ किया था। बेशक पुरस्कार की राशि बहुत कम थी फिर भी अब तक कुछ लेखक विधि की हिंदी में रचित विधि पुस्तकों पर यह पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। वर्तमान में पुरस्कार की राशि निम्नवत् हैः

प्रथम पुरस्कार : 7100/

द्वितीय पुरस्कार : 5100/

तृतीय पुरस्कार : 3100/

राष्ट्र भारती सम्मान : वर्ष 2008 में विधि भारती परिषद् के मंच से राष्ट्र भारती सम्मान की स्थापना की गई थी। देश के जो विद्वान, मनीषी, साहित्यकार कलाकार, समाजसेवी अपनी सतत साधना और अटूट निष्ठा से देश और समाज को अपने प्रेरक अवदान की गंगा से आप्लावित करते हैं उनकी प्रतिभा का मूल्यांकन करने तथा मान्यता देने के लिए उनको इस सम्मान से सम्मानित किया जाता है। अब तक देश के 16 प्रतिष्ठित साहित्यकारों और अन्य विभूतियां को उनके अद्वितीय अवदान के लिए राष्ट्र भारती सम्मान दिया जा चुका है।

वागीश्वरी सम्मान : साहित्य क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिये वर्ष 2022 में इसकी स्थापना की गई और कुछ महानुभावों को इस सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है।

राष्ट्र भाषा गौरव सम्मान : यह भी ज्ञातव्य है कि संसदीय हिंदी परिषद की अध्यक्ष डॉ. सरोजिनी महिषी ने विधि भारती परिषद् की अध्यक्ष होने के नाते संसद के केंद्रीय कक्ष में आयोजित होने वाले राजभाषा हिंदी उत्सव समारोह में विधि भारती परिषद् को भी जोड़ लिया था जिसके कारण मुझे लगभग पंद्रह वर्ष तक संसद में केंद्रीय कक्ष में राजभाषा हिंदी उत्सव समारोह आयोजित करने का सुअवसर मिला। हमने उस मंच से हिंदी साहित्यकारों को राष्ट्र भाषा गौरव सम्मान देने प्रारंभ किये। उन पुरस्कारों की अपनी ही गरिमा थी। अनेक हिंदी साहित्यकार संसदीय मंच

से सम्मानित हो चुके हैं। मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानती हूं कि मुझे इस कार्यक्रम को आयोजित करने और राष्ट्र भाषा गौरव सम्मान का शुभारंभ करने में भागीदारी करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। फिलहाल यह कार्यक्रम कोरोना संकट काल के बाधित हुआ और अभी भी पड़ा है।

10. साहित्य के क्षेत्र में सोशल मीडिया के योगदान पर आप क्या कहेंगे?

उत्तर : सोशल मीडिया के कारण साहित्य के प्रति एक अभूतपूर्व रुझान देखने को मिल रहा है। इसके कारण छोटे-बड़े साहित्यकार विशेष रूप से नवोदित लेखकों को बहुत बड़ी मदद मिल रही है। कोरोना काल में और अब उसके बाद भी लेखन के लिए सोशल मीडिया अब एक वरदान सिद्ध हो रहा है। आम लेखक की अपनी भावनाओं और विचारों को प्रचार प्रसार करने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है।

सोशल मीडिया ने चाहे भले ही गंभीर साहित्य समाज को ना दिया हो, किंतु साहित्य के प्रचार में इसकी भूमिका के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। वैसे भी गुणवत्ता लेखक की अपनी रचनाधर्मिता पर निर्भर करती है। कैसा भी साहित्य हो, उसके लिए सोशल मीडिया एक सशक्त मंच अवश्य प्रदान कर रहा है। सोशल मीडिया का एक लाभ यह हुआ कि देश की महिला शक्ति को साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय होने का अभूतपूर्व अवसर प्राप्त हुआ है। सोशल मीडिया पर सभी प्रकार का साहित्य भी उपलब्ध होता है अनेक पुस्तकें भी सोशल मीडिया पर पढ़ी जा सकती हैं। इस तरह बहुत सारे साहित्य तक सोशल मीडिया के माध्यम से पाठक की पहुंच संभव हो गई है।

11. आपने कविता विधा पर अधिक काम किया है? इसका कोई विशेष कारण? कहानी लिखते समय किन-किन तत्वों पर विचार करते हैं?

उत्तर : कविता तो वस्तुतः मेरी सांसों में बसी है, मानस में भाव, कल्पना, विचारों और बिंबों का सतत द्वंद चलता रहता है। सुअवसर मिलते ही भाव और विचार की संवेदनशीलता शब्द और शैली में सरकार होने लगती है, जब भी टटोलती हूँ आत्मा, कविता मेरा हाथ पकड़ मुझे सहलाती है या फिर पीछे से आ मेरी आंखों पर हाथ रख कर पूछती है, बताओ, कौन? मुखर हो उठता मेरा मौन, बह निकलती है सलिला की धारा/वैसे ही खुल जाते द्वार कारा के/जब कृष्ण ने लिया था अवतार। कभी देखती हूँ शिशु मुस्कान और कभी उसका संसार। कविता और मेरा नाता क्या है, इसके बारे में मेरी कविता की दो पंक्तियाँ देखिए:

'कविता मेरी सखी सहेली, कविता मेरी बहना,
मेरा हो या तेरा दुःख सुख, कविता से ही कहना।'

या फिर एक और कविता है जो इस प्रकार है। आप पढ़ना चाहेंगे :

शब्द
जब मैं शब्दों के बीच होती हूँ
अकेली नहीं होती
साथ चलता है समय
आकाश के संग धरती
इन्द्र धनुषी हो जाती है
शब्द रिश्ते नाते, दोस्ती संबंध
सब निभाते हैं
शब्द अपनी संवेदना सरोकारों में
करुणा बरसाते हैं
शब्द अपने अनेक अवतारों में
उज्जाला फैलाते हैं
कभी अपनी भंगिमाओं से
दुःखी भी कर जाते हैं।

शब्द जब बन जाते हैं प्रेरणा
मैं एकाएक उठ कर
फलांगने लगती हूँ
नहीं देखती तब
रास्ते में पड़े पत्थर
झाड़-झंखाड़, नुकीले कांटे
पर्वत की चोटियाँ
कितनी भी हो दुर्गम
सब लांध जाती हूँ।

कामना यहीं है

बना रहे शब्द का साथ
जैसे सागर में उर्मि,
जैसे बादल में जल,
जैसे सुमनों में सुरभि,
जैसे कान्हा की मुरली
जैसे उषा की किरण
शब्द ही ब्रह है
गंगा-यमुना-सरस्वती की तरह
संवेदना कल्पना सृजन का संगम
शब्द की सत्ता को नमन
शब्द की सत्ता को नमन...।

रही बात कहानी लेखन की। कहानी लेखन में कहानी के आवश्यक तत्व यथा कथ्य, कथोपकथन, विचार, मंतव्य यानी कि संदेश, सही में संतुलन से ही अच्छी कहानी की रचना संभव है। मेरा प्रयास कहानी के माध्यम से साकार संदेश देना होता है। आज की कुछ अश्लीलता पूर्ण कहानियाँ न तो मेरी पसंद में आती है और यथार्थ के नाम पर न मैं ऐसी कहानी लिखती हूँ।

12. आप निरंतर विधि लेखन कर रही हैं और साथ में साहित्य लेखन भी। दोनों में तालमेल कैसे बिठा लेती हैं? क्या इस तरह से लेखन परस्पर प्रभावित होता है?

उत्तर : चाहे विधि लेखन हो अथवा साहित्य रचना, सब के पीछे का आधार है सामाजिक सरोकार, सामाजिक हित और सामाजिक मैत्री जागृति, अंतर केवल शैली का है। एक में विचार और तथ्यों का प्राधान्य और साहित्य लेखन में भाव, संवेदना, कल्पना का प्राधान्य होता है।

उसमें विचारों का भी उसमें समावेश होता है। उसमें विचार प्रायः अप्रत्यक्ष रूप से अपना अस्तित्व प्रस्थापित करते हैं। साहित्य रचना में भाषा का प्रयोग रचनात्मक ढंग से होता है और साथ ही उसमें एक विशिष्ट शैली का इस्तेमाल होता है उसमें बिंब, प्रतीक, अलंकार आदि प्रयुक्त होते हैं। विधि लेखन में विचारों और तथ्यों का प्राधान्य रहता है और भाषा सरल, सटीक और सपाट होती है। साहित्य रचना में मनोवैज्ञानिक प्रज्ञा कहीं अंतरात्मा को संदेश पहुंचती है कि उसे अब कौन-सा मोर्चा संभालना है। मेरे विधि लेखन और साहित्य लेखन पर कभी कोई विभिन्न दृष्टिकोणों से शोध करे, तो हो सकता है कई रोचक तथ्यों का उद्घाटन होगा। शायद इस प्रकार का शोध पहले कभी नहीं हुआ होगा। आप ऐसे शोध के सुझाव दीजिए न।

13. वर्तमान में अपने अनुभव के आधार पर आप लेखकों को क्या संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर : देश में आज युवा लेखकों की एक नई पीढ़ी तैयार हो रही है जो सोशल मीडिया के भिन्न-भिन्न संस्करणों पर काफी सक्रिय हैं। इससे पहले लगभग एक सदी तक तो भारत के साहित्याकाश पर वामपंथी लेखक छाए रहे जिनमें से अधिकांश ने भारत, भारतीयता, भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषाओं को कभी महत्व नहीं दिया। इन लेखकों की वजह से जागृति अवश्य आई परंतु भारतीय संस्कृति और भारत की समृद्ध साहित्यिक परंपरा प्रायः कहीं बहुत पीछे छूट गई। इन लेखकों में से कुछ लेखकों ने तो भारतीय संस्कृति का गलत अर्थ लगाकर उसे अपदस्थ करने का ही प्रयास किया।

आज भारत बदल रहा है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उसका वर्चस्व और प्रभाव बढ़ रहा है। आज विश्व भारत की ओर आशान्वित हो देख रहा है। सब जानते हैं कि भारत की प्राचीन संस्कृति इतनी समृद्ध रही है जिसके कारण भारत प्राचीन काल में कभी विश्व गुरु कहलाता था। यदि आज का युवा लेखक उस प्राचीन शाश्वत धरोहर पर नए सिरे से शोध कर उसे पुनः विश्व के सामने लाये तो उससे भारत आगे बढ़ेगा ही विश्व का कल्याण भी होगा।

इसलिए युवा लेखकों से मेरी यही गुज़ारिश है कि वह अपनी प्राचीन संस्कृति तक अपनी पहुँच बनाएँ और उसे आज की आवश्यकताओं और संदर्भ में उसकी सही अर्थों में पुनर्व्याख्या करें। ऐसा करना भारत और विश्व के हित में होगा। अगर हमारा युवा लेखक वर्ग उपरोक्त के संदर्भ में साहित्य की रचना करेगा तो उसे लोकप्रिय होने के लिए सस्ते हथकंधे नहीं अपनाने पड़ेंगे और वह साहित्य को एक बेहतर कंटेंट दे पाएगा और एक बेहतर साहित्यकार बन सकेगा।

कथा-कहानी

नई किरण

सन्तोष खन्ना

सुबह के दस बजते-बजते वह तीनों पार्क में पहुँच गए। कोहरा काफी छँट चुका था, क्योंकि सूर्य अपनी पूरी प्रभा के साथ पूर्व दिशा से आगे बढ़ रहा था, किंतु पार्क में हरियाली के झुरमुट में कोहरे के अवशेष स्वयं को छिपाने का प्रयत्न करते दिखे।

कोर्ट के आदेश के अनुसार आज मालती अपने दोनों बच्चों रवि और बबली को उनके पिता से मिलवाने के लिए लेकर आई है। छोटे-से इस पार्क में लोग कम ही आते हैं, इसीलिए मिलने के लिए यही स्थान तय हुआ था। पार्क चाहे छोटा-सा है पर पेड़ और फूलों के बाहुल्य के कारण बहुत सुंदर लग रहा था। आते ही रवि और बबली दोनों खेलने में व्यस्त हो गए, कभी फूलों को छूकर देखते तो कभी एक-दूसरे के साथ दौड़ लगाकर देखते कि कौन तेज भागता है। आठ वर्ष का रवि दौड़ में हमेशा आगे निकल जाता है। छः वर्षीय बबली रवि के पीछे दौड़ती हुई उसे रुकने के लिए कहती है, "भैया, रुको, मुझे तुम्हारी तरह तेज दौड़ना है; तुम मेरे साथ-साथ दौड़ो न।" लेकिन रवि हँसता हुआ दौड़ता चला जाता है और अपने गंतव्य स्थान पर जाकर ही रुकता है और वहीं से चिल्लाता है; "बबली, और तेज दौड़ो और तेज।" बबली भी आखिर गंतव्य स्थान पर पहुँच रुआँसी-सी उसे एक-आध धौल जमाती हुई कहती है; "अच्छे भैया नहीं हो तुम, मुझे पीछे छोड़ देते हो। आने दो पापा को, तुम्हारी शिकायत करूँगी।" पापा के नाम से ही रवि बिदक जाता है, और आँखें तरेर कर कहता है, "खबरदार, मेरी शिकायत नहीं करना।"

"करूँगी-करूँगी।" बबली, रवि को चिढ़ाने से बाज नहीं आतीं, रवि उसे मारने के लिए आगे बढ़ता है। बबली दौड़ कर मालती से जाकर चिपक जाती है, "मम्मी, देखो न, रवि मुझे मारेगा।"

"पापा से शिकायत करेगी तो मारूँगा।" रवि आगे बढ़ कर उसे मम्मी से खींचने का प्रयास करता है।

"रवि, छोटी बहन को मारते हैं क्या?" मालती ने अपनी साड़ी के पल्लू को ठीक करते हुए कहा।

"यह क्यों शिकायत करेगी?"

तभी सामने से मनोज आता दिखाई देता है। बबली मम्मी को छोड़ मनोज की तरफ दौड़ पड़ती है और पापा-पापा कह उससे लिपट जाती है।

मनोज बबली को अपने अंक में भर अपनी छाती से चिपका कर प्यार करता हुआ कहता है, "मेरी प्यारी मुनिया मेरी सुरीली चिड़िया।"

"पापा, हम आपको बहुत मिस करते हैं।"

"मैं भी बेटे।" मनोज ने बबली के बिखरे बालों को अपने हाथों से संवारते हुए कहा।

रवि के पैर वहीं गढ़ जाते हैं, वह आगे बढ़ कर पापा से नहीं मिलता। मनोज आकर उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरता है "रवि, मेरा बेटा कैसे हो?"

"बिल्कुल ठीक हूँ।" उसके कहने के स्वर से ही लगता है उसे अपने पापा की बिल्कुल भी परवाह नहीं, शायद कहीं अन्दर ही अन्दर वह उनसे नफरत करता है, क्योंकि पापा मम्मी के विरुद्ध कोर्ट में केस डाल कर लड़ रहे हैं और उन्हें तंग कर रहे हैं, उसकी बाल मानसिकता में यह बात घर कर चुकी है कि सारा कसूर पापा का ही है, उन्हीं की वजह से यह सब कोर्ट-कचहरी का चक्कर चल रहा है; मम्मी उसका और बबली का कितना ध्यान रखती हैं, कहें तो उन दोनों पर जान देती है और पापा? उनका भी कितना ध्यान रखती थीं; बाहर से घर लौटते ही उनके आगे-पीछे होती, उन्हें चाय दो, नाश्ता दो, उनके कपड़े धोकर प्रेस कर हमेशा तैयार रखना। अरे, पापा को टाई भी बांधती थी, उन्हें तो टाई बांधना भी नहीं आता, चाय तक बनानी नहीं आती, हर समय मम्मी को डांटते रहते, हर रात रोज मम्मी से झगड़ा

करते, मम्मी को उसने अक्सर रोते देखा है, मम्मी कितनी भी नाराज क्यों न हो, पर हर सुबह पापा की देख-भाल में लग जाती। हम बच्चे भी उसको कितना तंग करते रहे हैं, मेरा बस्ता भी वही तैयार करती, वही मुझे जूते भी पहनाती थी, पर जब से पापा ने हमें घर से निकाला है, हम नानी के घर पर रह रहे हैं, अब मैं अपना काम खुद करना सीख रहा हूँ; मम्मी को ट्यूशन में कई बच्चों को पढ़ाना पड़ता है, खूब थक जाती है, यह बबली कुछ नहीं करती इसे काम करना मैं सिखाऊँगा हाँ।"

"रवि बेटे क्या सोच रहे हो?" पापा ने उसके पास आकर कहा। वह अभी तक बबली को गोद में उठाए उसे घुमा रहे थे। मालती पार्क में पड़े बेंच पर बैठी पता नहीं किन ख्यालों में खोई थी।

"पापा, हमें झूला झुलाओ।"

"चलो रवि, तुम भी चलो" मनोज ने रवि का हाथ पकड़ते हुए कहा।

"नहीं, मेरा मन नहीं, आप बबली को झुला दो।" रवि ने धीरे से अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा।

"हाँ पापा, यह कभी नहीं झूलता, स्कूल में भी नहीं बस बैठा रहता है, हम सब बच्चे खूब झूलते हैं।" बबली मनोज को खींच कर झूले की तरफ ले गई।

मनोज बबली को झूला झूलाता जा रहा है और कनखियों से मालती को भी देख रहा है जो अब भी बेंच पर गुमसुम -सी बैठी थी। उसने एक हल्के-से रंग की साड़ी के ऊपर ग्रे रंग का स्वेटर पहन रखा था, बालों का ढीला-सा जूड़ा और माथे पर हमेशा की तरह लाल बिंदिया। मनोज को लगा, एक अनोखा तेज मालती के चेहरे को एक अनोखी आभा प्रदान कर रहा था। वह तेज मनोज को बरबस उसकी ओर खींचता-सा लगा। मनोज अपने पैरों को जमीन पर टिकाने का प्रयास करने लगा। वह तो उसके खिलाफ तलाक का केस लड़ रहा है। वकील के कहने पर उसने मालती के विरुद्ध यह भी लिख कर दे दिया है कि उसका चरित्र सही नहीं है, इसीलिए तो वह उससे प्रेम नहीं करती हालांकि मनोज का मन ही नहीं, आत्मा भी जानती है कि मालती ऐसी नहीं है, पर वकील के कहने पर ही उसे ऐसा लिखना पड़ा। उसने उसे बताया भी था कि उसकी पत्नी में कितनी भी कमजोरियाँ हों, पर उसके चरित्र में कोई खोट नहीं, परंतु वकील ने उसे झिड़कते हुए कहा था, "खोट नहीं तो यहाँ क्या लेने आए हो, जब तक तलाक के लिए कोई पुख़्ता आधार नहीं होगा, तलाक नहीं मिलेगा। अगर वह तुम्हारी जिस्मानी जरूरतें पूरी नहीं करती तो ऐसी औरत सच्चरित्र कैसे हो सकती है, जरूर उसमें खोट है, समझो उसका कहीं और टांका फिट है।" उस समय उसे मालती के लिए प्रयुक्त अभद्र भाषा के लिए वकील पर गुस्सा आया था जिसे वो जहर की तरह पी गया था।

वह ऑफिस जाने के तैयार हो रहा था, उसने प्रेस की हुई कमीज पहनी, बटन बंद करते समय पता चला, गले वाला बटन नहीं है। उसने वहीं से आवाज दी, "मालती, क्या करती हो, प्रेस करते समय देखती नहीं, कमीज के बटन पूरे हैं या नहीं, कोई भी काम ढंग से नहीं करती। आओ, देर हो रही है, फौरन बटन लगाओ।"

मालती किचन में उसके लिए खाना तैयार कर रही थी, उसने फौरन गैस बंद की और सूई-धागे वाली डिबिया से बटन निकालते हुए डरते-डरते कहा, "लाओ, अभी लगा देती हूँ।"

वह सूई-धागा ले उसका बटन टांकने लगी।

"प्रेस करते समय देखना चाहिए न। मुझे देर हो रही है।" मनोज ने पुनः उसे डाँटते हुए कहा।

"बस लग गया बटन, लो बंद कर लीजिए।" मालती ने सूई-धागा डिबिया में रखा।

मालती के सामीप्य पर मनोज के रेशे-रेशे में एक उबाल-सा उठा, उसने अचानक उत्साहित हो मालती को बांहों में जकड़ते हुए उसके अधरों पर अपने अधर रख दिए।

मालती ने तिलमिला कर स्वयं को उससे मुक्त करते हुए कहा, "क्या है, आप को कुछ और तो सूझता ही नहीं, छिः जब देखो, उधर मम्मी-पापा।" उसने अपने दुपट्टे से अपने होंठ ऐसे साफ किए मानों कहीं वह गंदगी के सम्पर्क में आ गए हों।

मनोज के पूरे उत्साह पर तुषारापात हो गया गुस्से से पांव पटकता हुआ वह उस दिन बिना कुछ खाये दफ्तर के

लिये निकल गया था। इस घटना से उसे वकील की कही बात सही लगने लगी, "जो औरत तुम्हारी जरूरतें पूरी नहीं करती, समझो उसका टांका कहीं और फिट है।"

फिर यह कोई अकेली घटना नहीं थी। वह दफ्तर से थक-हार कर घर आता और उसके इंतजार के पल शुरू हो जाते, कब मालती घर का काम-काज निपटा कर खाली हो और सोने के लिए आए। जब भी वह आती, थकी हारी अपने जिस्म को हाथ नहीं लगाने देती, उसकी कभी कोई जरूरत पूरी नहीं करती, हार कर उसे खुद को जबरदस्ती उस पर थोपना पड़ता, वह चीखती रहती, रोती रहती पर उस समय वह जुनून में किसी बात की परवाह नहीं करता फिर भी उसका मन और शरीर हमेशा प्यासा ही रह जाता कभी भी दो शब्द प्यार के उससे बोले नहीं जाते। "जरूर उसका टांका कहीं और फिट है।" जैसे-जैसे उसे इस प्रकार के कटु अनुभव याद आ रहे थे, वकील के शब्दों का स्वर और तेज होता जा रहा था "जरूर उसका टांका कहीं और फिट है।"

बबली को झूला झुलाते उसके हाथ रुक गए। उसे अपनी नस-नस में अजीब-सा कसाव और तनाव महसूस होने लगा। "बस बबली" कह वह पास पड़ी बेंच पर धम्म से बैठ गया। बबली भी झूले से उतर वहीं पापा के पास आकर बैठ गई, "क्या हुआ पापा?"

उस समय उसे बबली की कोई बात अच्छी नहीं लग रही थी। वह चाह रहा था बबली वहाँ से चली जाए और वह बेंच पर या पेड़ों पर अपने मुक्कों की बरसात कर दे या गुस्से से जलती अपनी नस-नस को अपने हाथों से नोच डाले या फिर आकर अपना सिर किसी दीवार से टकराकर लहू लुहान हो जाए। असंयत-सा हो उसने बबली से कहा "तुम जाओ।" मैं अभी आता हूँ।

वह बबली को वहीं छोड़ पार्क के दूसरे हिस्से की ओर मुड़ गया और वहीं कोने में पड़े एक बेंच पर बैठ गया। उसे लगा वह अधिक देर तक बैठ नहीं सकता। वह बेंच पर लेट गया और अपने हाथों से उसने अपना मुँह ढांप लिया। पिछले वर्ष उसकी और मालती की शादी की सालगिरह थी। वह दिन उन दोनों का बहुत ही अच्छा बीता था। उसने सुबह ही सोच लिया था कि वह आज मालती को किसी भी बात पर नहीं डांटेगा। मालती भी सुबह से खुशगवार मानसिकता लिए उसे बार-बार स्माइल दे रही थी। दोनों बच्चे भी चहक रहे थे। माँ से दोनो ने ही मिल कर आशीष ली थी और पिताजी बीमार होते हुए भी कह रहे थे, "बेटा, परिवार का ध्यान रखा कर।"

वह मालती को बाजार ले गया। पहले एक अच्छे रेस्टारेंट में खाना खाया। खाने की मेज पर ही उसने मालती का धीरे से हाथ सहलाते हुए कहा "आज, कोई सुन्दर-सी साड़ी खरीद लो, उस रंग के साथ मिलती लिपस्टिक भी लेना आजकल सिवाय बिंदी के तुम कुछ भी नहीं लगाती; लिपस्टिक तुम्हारे इन कमल की पंखुड़ियों से होंठों पर खूब फबती है।'

"साड़ी आप ही पसंद करना" उसने थोड़ा शर्माते एवं हल्का-सा मुस्कराते हुए कहा था। साड़ी के साथ-साथ मालती ने दोनों बच्चों के लिए सूट्स भी खरीदे थे। बबली के लिए रिब्बन और खिलौने भी। वह माँ के लिए भी धोती लेना नहीं भूली थी, उसने भी लगे हाथ बाबूजी के लिए एक कुर्ता खरीद लिया था।

घर के लिए चलने से पहले दोनों ने गोल-गप्पे खाए। मालती बार-बार गोल-गप्पे का पानी लेकर पी रही थी उसने कहा था कि जब उसे गोल-गप्पे इतने पसंद हैं तो और क्यों नहीं खाती?

"नहीं-नहीं और नहीं, खा तो लिए आज तो आपको भी अच्छे लगे है, आप और खा लो न।" उसने मुस्कुरा कर कहा था।

पूरा दिन कैसे बीत गया, पता ही नहीं चला। समय को मानो पंख लग गये थे। उसी ने जिद्द की थी कि मालती नई साड़ी पहने।

"फॉल नहीं लगी, ब्लाउज नहीं सिला, कैसे पहनूँ।"

"बिना फॉल के पहनो, किसी दूसरे ब्लाउज के साथ, कौन-सा अब बाहर जाना है।"

उसने साड़ी पहनी, कंट्रास्ट कलर के ब्लाउज के साथ, लिपस्टिक लगाई, जूड़े में फूल लगाए। मालती किसी परी से कम नहीं लग रही थी। उसे बार-बार लग रहा था कि वह मालती को अपनी बाँहों मे भर ले। ढेर सारा प्यार करें पर

मालती का काम ही नहीं खत्म हो रहा था। सब खाना खा चुके थे, पर माँ-पिताजी को दूध देना था लेकिन उससे भी पहले उन्हे दवा लेनी थी। अभी मालती सुबह के लिए बच्चों के स्कूल के कपड़े रख रही थी।

मनोज ने उकता कर टी.वी. ऑन किया। गाइड फिल्म का गाना चल रहा था, "आज फिर जीने की तमन्ना है आज फिर।" उसने मालती को आवाज दी।

"जी अभी आती हूँ।" कह वह माँ के कमरे में चली गई शायद उन्हें दवाई के बारे में बताने के लिए। यह सारा काम मालती ही करती है, उसे तो पता ही नहीं, उन दोनों को किस समय कौन-सी दवा देनी होती है, उसे सब पता रहता है और वह सब मुस्तैदी से करती है बस अपने पति देव को खुश नहीं कर पाती। हाँ, वैसे उसका पूरा ध्यान रखती है; एक आदर्श माँ, एक आदर्श बहु बच्चों की एक आदर्श टीचर, एक आदर्श आज्ञाकारी पत्नी नहीं-नहीं पत्नी बिल्कुल भी नहीं मैं क्या हूँ न एक अच्छा बेटा, न एक अच्छा पति, पर कमाऊ पति हूँ, बेटा हूँ। कमाने के लिए कितना खटना पड़ता है।

मालती अब माँ-बाबूजी के लिए दूध लेकर जा रही थी। बच्चे तो कब के सो चुके थे। उसने उठ कर अपने बदन पर थोड़ा सा सेंट छिड़का। सेंट की गंध धीमे-धीमे कमरे में फैल उसे और मदहोश-सा करने लगी। जैसे ही मालती दूध देकर आई उसने उसे पीछे से भींच लिया। मालती तिलमिलाई पर उसने स्वयं को ढीला छोड़ दिया। वह उसे वैसे ही पकड़े-पकड़े पलंग तक ले आया और उसे अंधाधुंध चूमने लगा।

"अरे छोड़ो मुझे! मैंने अभी दवा लेनी है, सिर में थोड़ा दर्द हो रहा है" मालती ने थोड़ा प्रतिवाद करते हुए कहा—

"दर्द-वर्द सब ठीक हो जाएगा। बस अब और इंतजार मत कराओ।"

"बस एक सेकंड में आती हूँ।"

"बस बहाने रहने दो, अभी यहीं रहो।"

"बहाने नहीं, सचमुच दर्द हो रहा है।"

"कुछ नहीं, चुप रहो।"

मालती को लगा हमेशा की तरह उस पर उसका वहशीपन हावी होने लगा है, इस विचार से ही उसका शरीर पथराने-सा लगा। उसे मनोज की हर हरकत घिनौनी लगने लगी "बस छोड़िए मुझे बस-बस छोड़िए।" वह स्वयं को उससे मुक्त करने लगी।

मनोज उस समय उसके विरोध पर तिलमिला गया, उसने उसे पूरी तरह दबोच लिया। मालती ने उससे मुक्त होने के लिए अपना पूरा जोर लगा दिया। मनोज मालती की ऐसी प्रतिक्रिया से क्रोधित हो उठा और उसने मालती को दो तीन थप्पड़ जड़ते हुए उसे पुनः पकड़ लिया। मालती अब रो रही थी, पर मनोज पर अपनी धुन सवार थी। थोड़ी देर बाद उसने मालती को अपने बिस्तर से धक्का दे दिया। उसका सिर कमरे की दीवार से टकराता-टकराता बचा।

वह रो रही थी और कहती जा रही थी "बहुत हुआ, अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी। सुबह ही चली जाऊँगी माँ के यहाँ, यह रोज रोज का शोषण बस और नहीं बस-बस। पता नहीं वह और क्या-क्या बोल रहीं थी और रोती भी जा रही थी परंतु मनोज कहाँ सुन रहा था, वह तो सो गया था।

मनोज जब सुबह उठा तो मालती बच्चों को अपने साथ ले जाने के लिए तैयार कर रही थी। उसने रात की बातें भूलते हुए अपने कमरे से ही मालती को आवाज लगाई। मालती नहीं आई। उसने दो-तीन बार और आवाज दी। तीसरी बार तो जैसे उसने लगभग गुस्से में चिल्लाते हुए ही आवाज दी।

जब मालती नहीं आई तो उसने अपने दिमाग पर जोर डालते हुए रात की बातें याद करने की कोशिश की। रातों को तो प्रायः ऐसे ही झगड़ा होता था, पर मालती रो-धो कर सुबह उसकी सेवा में हाजिर हो जाती थी। इस बार क्या हुआ? उसने रात को उसे थप्पड़ तक जड़ दिए थे। "अरे तभी तो।" वह एकाएक हड़बड़ा कर बिस्तर से उठा और बच्चों के कमरे की ओर भागा।

मालती अपनी नीली अटैची पर झुकी उसे बंद कर रही थी। बच्चे तैयार खड़े थे।

"क्या हो रहा है? इतनी आवाजें दी। मालती, क्या बहरी हो रही हो?"

मालती बोली कुछ नहीं, जमीन पर बैठी अटैची में ताला

लगाती रही।

"मालती मालती मैं तुमसे बात कर रहा हूँ।"

उसने मालती को बाँहों से पकड़ उठा दिया। मालती वहीं पड़ी एक कुर्सी पर धम्म से जा गिरी। बोली कुछ नहीं। रवि ने ही कहा, "पापा, हम लोग नानी के घर जा रहे हैं।"

"क्यों?"

"मम्मी ने कहा है, अब हम यहाँ नहीं रहेंगे। नानी के घर रहेंगे। नानी के घर से स्कूल जाया करेंगे।"

"अच्छा! जिसको जाना है, वह जाए। तुम नहीं जाओगे, यहीं रहोगे अपने घर।" वह गुस्से से बोला।

"मम्मी जाएगी तो हम भी जाएंगे।" रवि ने धीमे-से स्वर में कहा।

"कोई कहीं नहीं जाएगा। ऐसा कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा है? चलो, तुम लोग स्कूल के लिए तैयार हो जाओ, मैं छोड़ कर आता हूँ।" उसने अटैची उठाकर स्टोर में रखते हुए कहा—

"नहीं रहना मुझे यहाँ। मैंने फैसला कर लिया है।"

"फैसला? तुम कब से फैसले लेने लगी?" उसने लगभग व्यंग्य करते हुए कहा।

"फैसला हो चुका। न तो मैं यहाँ रहूँगी और न हीं मेरे बच्चे। मैं इन्हें अपने दम पर पाल पोस लूँगी।"

"अच्छा! इतना घमंड? ठीक है तुम जाना चाहती हो जाओ मेरी कौन-सी सुख की सेज छिन जाएगी। बच्चों को नहीं ले जाने दूंगा।"

"हाँ-हाँ मैं जा रही हूँ। बच्चे भी जाएँगे।" मालती ने निर्णायक स्वर में कहते हुए स्टोर से अटैची उठाई।

"बस निकल जाओ मेरे घर से। कभी अपना यह मनहूस चेहरा मत दिखाना। बच्चे नहीं जाएँगे।" उसने मालती के हाथ से अटैची छीन ली।

"रख लो अटैची भी, मैं जा रही हूँ बच्चों, मेरे पीछे-पीछे आ जाओ।" पैर पटकती हुई मालती घर से निकल गई। दोनों बच्चे भी धीरे-धीरे वहाँ से खिसक उसके पीछे-पीछे आ गए। गली में उसने दोनो बच्चों को छाती से चिपका लिया। सामने खड़े ऑटो में बैठ वह माँ के घर पहुँच गई।

मनोज हक्का-बक्का सा खड़ा का खड़ा रह गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। कुछ देर बाद वह उसी कुर्सी पर धम्म से बैठ गया, जहाँ थोड़ी देर पहले मालती बैठी थी।

मालती ने माँ के घर आकर आस-पड़ोस के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया था। मनोज उसे या बच्चों को माँ के घर से लेने कभी नहीं आया। आया तो उसका कोर्ट से नोटिस जिसमें मालती से तलाक लेने की अर्जी दी थी।

तब से मालती तारीख पर तारीख में उलझ कर रह गई थी। पहले उसे बच्चों के पालन-पोषण, पढ़ाई-लिखाई के लिए कमाना था, अब उस पर कोर्ट आने-जाने और वकील के खर्चे अलग आन पड़े थे। वह हार मानने वालों में से नहीं थी। उसने कोशिश कर कुछ और बच्चों को पढ़ाने का काम भी हाथ में ले लिया था।

कोर्ट का आदेश हो गया था कि उन दोनों को कोर्ट द्वारा बताये काउंसलर से मिलना है। मालती कोर्ट के चक्कर से मुक्त होना चाहती थी। वह सोचने लगी कि वह अब कोर्ट की किसी तारीख पर नहीं जाएगी। यही तो होगा कि मामले का एकतरफा फैसला हो जाएगा, हो जाने दो फैसला। तलाक की डिक्री हो जाएगी, हो जाने दो, उस जानवर के साथ रहना कौन चाहता है तलाक के बाद वह मुक्त हो जाएगा, दूसरा विवाह भी कर सकता है। इससे उसे कोई परेशानी नहीं वह मुक्त हो अपना पूरा ध्यान बच्चों पर दे पाएगी। अब उसके जीवन का एक ही लक्ष्य है, दोनों बच्चों को पढ़ा-लिखा कर उन्हें उनके पैरों पर खड़े करना उन्हें किसी चीज की कमी महसूस न होने देना इतना प्यार देना कि वे अपने पापा की कमी भी महसूस न कर सकें।

तभी कॉलबेल बजी। उसने उठ कर द्वार खोला, सामने एक सौम्य और संभ्रांत-सी अधेड़ उम्र की महिला खड़ी थी। उसके चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कान खेल रही थी। इससे पहले कि मालती उससे कुछ पूछती, उसी महिला ने अपने स्वर में मिसरी-सी घोलते हुए अपना परिचय दिया, "बेटा मालती मैं हूँ सरला त्यागी, आपके कोर्ट केस के सिलसिले में कांउसलिंग के लिए आई हूँ।"

केस का जिक्र आते ही मालती की नसो मे एक अजीब-सा तनाव फैल गया। किंतु सामने खड़े उस सौम्य

व्यक्तित्व को वह तीखी प्रतिक्रिया नहीं दे सकी। उसने उन्हें इतना ही कहा, "आइए न प्लीज, आइए अंदर आइए।"

सरला त्यागी ने मालती के कमरे में पड़े सोफे पर बैठते हुए कहा, "बिटिया, तुम्हारे संघर्ष के निशान इस कमरे की हर चीज में झांक रहे हैं। आज हमारी बेटियाँ कहीं-कभी हार नहीं मानतीं।"

मालती ने पानी का गिलास थमाते हुए उन्हें आश्चर्य से देखा।

"बच्चे स्कूल गए हैं। शाबाश बेटी, तुम उनकी बहुत अच्छी देखभाल कर रही हो। दोनों आज्ञाकारी बच्चे खूब मन लगा कर पढ़ाई कर रहे हैं। दोनों अपनी-अपनी क्लास में अव्वल आते हैं। ट्यूशन पढ़ने वाले बच्चों के माँ-बाप भी तुमसे बहुत प्रसन्न हैं।"

"आंटी, आप क्या अन्तर्यामी हैं। कैसे पता यह सब आपको?" मालती की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

"नहीं, मैं कोई अन्तर्यामी नहीं हूँ। यहाँ आने से पहले मैंने सब पता लगाया है। आपको पता होगा, आपको काउंसलिंग के लिए बुलाया गया था। केस के अध्ययन और अन्य जांच से मुझे लगा कि मुझे आपसे मिलना चाहिए। हमारी काउंसलिंग का उद्देश्य शादी तोड़ना नहीं, बल्कि पति पत्नी को जोड़ना होता है। छोटी-मोटी गलतफहमियों के जाल से पति-पत्नी को मुक्त कर उनके विवाह बंधन को मजबूत करना।"

"आंटी, यहाँ आप कुछ नहीं कर पाएँगी, मुझे न तो कोई गलतफहमी हुई है और न ही मेरी कोई गलती है।"

"मुझे विश्वास है।" सरला त्यागी ने मालती की बात को बीच में ही काटते हुए कहा।

मालती ने पुनः उस व्यक्तित्व को आश्चर्य से देखा। वस्तुतः उनके चेहरे पर एक अनोखा तेज झलक रहा था। क्या वह उनके आत्मविश्वास का था या कि उनके ज्ञान का या फिर परहितकारी का?

"आंटी, आप कुछ नहीं जानतीं; उसने मुझ पर बड़ा घिनौना आरोप लगाया है मेरे दुश्चरित्र होने का। वह मुझ से कहता, उसे मुझसे तलाक चाहिए, मैं उसे वैसे ही मुक्त कर देती; आप नहीं जानती, उसके उस आरोप से मैं अन्दर ही अन्दर कितना टूट गई हूँ; मुझे लगता है तब से मेरा आत्मसम्मान, मेरी अस्मिता, मेरी आत्मा सब मरणासन्न हो चुकी है। प्रायः आत्महत्या करने का मन होता है; इतना घिनौना लांछन लेकर जीना भी कोई जीना होता है, मैं इस लांछित किए गए जीवन में हर पल मृत्यु भोग रही हूँ; उसने मुझे जीवन में दिया क्या है? विवाहित जीवन में हर रोज बलात्कार का दंश? और ऊपर से दुश्चरित्र होने का घिनौना आरोप? इस लांछित हुए शरीर को जानती हैं जिंदा क्यों रख रही हूँ, अपने दोनों बच्चों के लिए।" जिंदा रहने के अपने मकसद को महसूस करते हुए भी मालती को लग रहा था मानो वह किसी रेल पटरी पर लेटी है और ऊपर से धड़ाधड़ तूफानमेल निकल रही है सरला त्यागी मालती के अथाह दुःख से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकी। मालती फूट-फूट कर रो रही थी, सरला त्यागी की भी आँखें भर आई थीं, परंतु उन्होंने अपने रूमाल से अपनी आँखों के कोरों से आँसू पोंछे और अपना हाथ मालती के कंधे पर रखा। हाथ का वह स्पर्श? मालती के भीतर तक एक ऐसी लहर उतर गई जिससे उसका समूचा तन और मन एक सुखद अहसास से भर उठा। उसे लगा उसके सामने जो औरत बैठी है, वही उसकी माँ है, बहन है या फिर उसकी गुरु। ऐसा अनोखा अपनत्व एवं ममत्व? उसके भीतर दुःख और दर्द का जमाव पिघलने लगा, मानो किसी ने जलते जख़्मों पर मलहम का लेप कर दिया हो। मालती झट से अपने आँसू पोंछते हुए रसोई मे चाय बनाने चली गई।

चाय पीते-पीते दोनों में पता नहीं दुनियाँ जमाने की कितनी बातें हुई, मानों दोनों एक दूसरे को वर्षों से जानती हों। मालती ने चाय के बाद झटपट सब समेट दिया। सरला त्यागी ने घड़ी देखी। शायद वह उठने का उपक्रम कर रही थी, किंतु मालती झट से बोली—

"आंटी, मैं अभी आपको नहीं जाने दूंगी, बच्चे आ जाएँ तो हम सब इकट्ठे खाना खाएँगे। जानती हैं आज मैंने बच्चों के लिए खीर बनाई है। पूरी-भाजी का प्रबंध कर रखा है। रवि को खीर बहुत पसंद है अपने पापा की तरह।" आखिरी बात अनायास ही उसके मुँह से निकल गई थी। उसने अपने आप को संभालते हुए कहा "खाना हम सब

मिलकर खाएँगे।"

"अरे हाँ, मैं भी जानना चाहती थी, मनोज को और क्या-क्या पसंद था?" सरला त्यागी ने मालती की ही बात को आगे बढ़ाते हुए पूछा।

"आँटी, हम बहुत अच्छी बातें कर रहे थे, क्यों माहौल को खराब करना छोड़िए वह सब। अब जिस रास्ते जाना नहीं, उसकी राह क्या पूछना! मेरे जीवन का वह अध्याय समाप्त हो गया, कुछ और बात कीजिए न। आप कितनी अच्छी हैं आँटी।"

"विवाह ऐसा बंधन नहीं, जिसे जब चाहे तोड़ दो। विवाह संस्था भारतीय संस्कृति की अनुपम देन है, यह दो शरीरों का ही नहीं, आत्माओं का भी मिलन है। विवाह संस्था से परिवार को बहुत बल मिलता है। विवाह से नारी का मातृत्व खिलता है, माँ के रूप में उसकी पहचान बनती है; आज हमें इस बात को समझना होगा।"

"मैं जानती हूँ, लेकिन विवाह संस्था को चलाने वाले पति-पत्नी एक रथ के दो पहिये हैं, अगर रथ के दो पहियों में से एक पहिया खराब हो तो।"

"हाँ, हो सकता है लेकिन खराब को सही भी तो किया जा सकता है। जानती हूँ तुम्हें अपने पति से बहुत दुःख मिला, वह दुःखकारक बना, क्या कुछ ऐसा भी घटा जिंदगी में जिससे उसे सुखकारक की संज्ञा भी दी जा सके।"

"हाँ, वह कमाता खूब था, मुझे उसने पैसे का कभी अभाव नहीं आने दिया, मुझसे कभी नहीं पूछा कि उसके दिए पैसे मैं कहाँ और क्यों खर्च करती हूँ"

"उसने आपको वित्त मंत्री बना रखा था।" सरला त्यागी ने हल्का-सा मजाक के लहज़े में कहा। "और क्या-क्या दिया उसने।"

"और, बस कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं,। याद करो कुछ ऐसा अनमोल दिया हो जो तुम्हें अपनी जान से भी प्यारा है; वह तुम उसी से ही ले सकती थीं वह तुमने उसी से लिया और तुम खुद को धन्य मानने लगी।"

"ऐसा तो कुछ नहीं।" मालती ने सोचते हुए कहा।

"अपने दिमाग पर जरा जोर देकर याद करो। कोशिश करो, तुम्हें जरूर याद आ जाएगा, क्योंकि तुमने उससे बहुत कुछ लिया है।"

"मैंने उसे बहुत दिया। उसकी अक्खड़ आदतों के बावजूद उसकी सेवा की, उसे पति नहीं, परमेश्वर माना। उसके माता-पिता को अपना माता-पिता समझा, उनकी भरसक सेवा की।"

"हाँ, सास-ससुर तुम्हारी बहुत तारीफ कर रहे थे।"

"क्या आप उनसे भी मिल चुकी हैं? मालती ने फिर उन्हें आश्चर्य से देखा।"

'हाँ'

'फिर तो आप मनोज से भी मिली होंगी।"

"नहीं। मैं उससे नहीं मिली। उससे तुम मुझे मिलवाओगी।"

"भूल जाइए आँटी। न तो मैं उससे मिलूँगी और न ही आपको मिलवाऊँगी। मैं उसकी शक्ल भी नहीं देखना चाहती।" मालती के शरीर में एक अजीब-सी अकड़न आ गई थी। आक्रोश और क्रोध के भाव उसके चेहरे पर उभरने लगे।

"चलो ठीक है। मैंने आपसे एक प्रश्न पूछा था, मुझे अभी उसका उत्तर नहीं मिला। कुछ ऐसा अनमोल क्या दिया तुम्हें तुम्हारे पति ने?"

"कुछ नहीं, कह दिया कुछ नहीं, कुछ हो तो बताऊँ।"

"तुम्हें नहीं याद, मैं याद दिलाऊँ?" सरला ने अत्यंत सरस ढंग से कहा।

"हाँ, आप अन्तर्यामी हैं न।"

"मैं बताती हूँ उसने तुम्हें दो अनमोल रतन दिए, रवि और बबली; स्वस्थ, सुंदर एवं कुशाग्र जिन्हें तुम उनके पिता को भी लौटाना नहीं चाहती हो।"

मालती उनकी बात सुन अवाक् रह गई। उसने इस बारे में इस तरह से कभी सोचा ही नहीं। बच्चों के उल्लेख मात्र से उसका ममत्व उछाल मार उठा। उसका रोम-रोम गद्-गद् हो गया। मन के किसी भीतरी कोने से एक अनोखा अहसास पैदा हुआ कि मनोज सामने हो तो वह उसे छू ले इस अनमोल अकूत दौलत के लिए उसका धन्यवाद करे ऊपर से वह मूक बनी रही, उसे समझ नहीं आ रहा था,

अपनी प्रतिक्रिया कैसे दें।

"इनसान नहीं समझता, उसे जीवन में क्या-क्या मिलता है। जीवन एक ऐसा ईश्वरीय वरदान है जिसे हर पल संभल कर जीना चाहिए।" सरला त्यागी ने मानो पूरे जीवन का फलसफा खोल कर रख दिया।

"बच्चे मेरी जान हैं। बच्चे नहीं होते तो मैं कब की मर-खप गई होती। ईश्वर का धन्यवाद, उसने मुझे इतनी सुन्दर, स्वस्थ सन्तान दी।" मालती की आँखें फिर भर आई, परंतु यह आँसू अपूर्व सुख और प्रसन्नता के थे।

"उन दिनों तुम्हारा जीवन स्वर्ग-सा था। तुम दो जिस्म एक जान हुआ करते थे फिर ऐसा क्या हुआ जो तुम्हारी पति में रुचि कम होने लगी।"

"यह झूठ है, मेरी रुचि कभी कम नहीं हुई, मैंने हमेशा उसे प्यार किया। वह वहशी खूंखार मुझे क्या दे सकता था अच्छा है उस नारकीय जीवन से छुटकारा मिला।"

"वह खूंखार क्यों हो जाता था? क्या वह शराब पी कर वहशीपन करता था।"

"नहीं...नहीं, शराब तो कभी उसने छुई ही नहीं। कभी सिगरेट, बीड़ी भी नहीं पी।"

"ओह! दूसरी औरतों के साथ संबंध?"

"क्या कह रही हैं आँटी, यह सब कुछ नहीं, मैं उसे अच्छी तरह जानती हूँ।"

"किसी मर्द की तुम कैसे गारंटी ले सकती हो।" सरला ने उसे आगे उकसाते हुए कहा।

"नहीं आँटी, उसने मुझ पर दुश्चरित्र होने का आरोप लगाया है, पर मैं उस पर कोई झूठा आरोप नहीं लगा सकती। वह ऐसा नहीं है, मन का एकदम पाक-साफ।"

"क्या बात है; जिस पति ने तुम्हें घर से निकाला, कोर्ट में तलाक का केस डाल तुम्हें कोर्ट-कचहरी की दलदल में फंसा दिया है, तुम पर दुश्चरित्र होने का झूठा आरोप लगा कर तुमसे तलाक माँग रहा है तुम उसके अच्छे होने, सच्चरित्र होने का प्रमाण-पत्र दे रही हो।"

"मैं कितना भी उसके विरुद्ध हो जाऊँ, मैं उसके बारे में कुछ झूठ नहीं कह सकती इसे मेरी कमजोरी समझ लीजिए।"

"कमजोरी नहीं, यह तुम्हारी शक्ति है; इस पर तुम्हें गर्व होना चाहिए। क्या वह शुरू से खूंखार था?"

"नहीं पहले तो बहुत अच्छा था, एक आदर्श पति।"

"उसमें बदलाव कब से आया?"

"बबली के पैदा होने के बाद।"

"बबली का प्रसव क्या नॉर्मल था?"

"नहीं, इसका सिर ऊपर की ओर था। मैंने बहुत कष्ट झेला। तभी मैंने तौबा कर ली थी। बाद में ऑपरेशन से ही पैदा हुई थी।"

"किस बात की तौबा?"

"उस असहनीय दर्द के दौर में मैं बार-बार ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि अब कभी कोई गलती नहीं होगी।"

"गलती? कौन-सी गलती? पति से पुनः सामीप्य बनाने की? तुमने इतना बड़ा भय बिठा लिया मन में?"

"पता नहीं; प्रसव-वेदना के दौरान रो-रो कर मैं प्रभु से प्रार्थना कर रही थी।"

"शायद वही भय तुमने अपने अवचेतन में बिठा लिया और स्वयं को अपने पति की ओर से बंद कर लिया। मानव मन भी कितना जटिल है, वह कब कौन-सा संदेश कैसे ग्रहण कर ले कौन जानता है?"

मालती किंकर्तव्यविमूढ़-सी सरला त्यागी को बस देखती जा रही है, वह कुछ समझ नहीं पा रही थी और न कुछ कह पा रही थी। उसे सरला त्यागी एक अनबूझ पहेली-सी लगी।

"आप कहना क्या चाहती हैं आँटी। जरा समझा कर कहिए।"

"मैं मनोज की शिकायत के उत्स को समझने की कोशिश कर रही थी।"

"अरे, आप उसकी एजेंट बन कर आई हैं। मुझे लगा आप मुझे समझेंगी, मेरा पक्ष लेंगीं। मैं आपको अपना हमदर्द मान बैठी थी।"

"नो-नो प्लीज। डोंट मिसअंडरस्टैंड मी। मुझे गलत मत समझो।" सरला त्यागी ने आगे बढ़ कर मालती की पीठ थपथपाते हुए कहा।

मालती ने उनका हाथ अपनी पीठ से हटा दिया। "मैं सब समझ गई आप मनोज से कह दीजिए मैं तलाक के

लिए तैयार हूँ। आपको लिखकर दे सकती हूँ। कोर्ट में भी लिखकर दे सकती हूँ मुझे न तो गुजारा भत्ता चाहिए, न बच्चों के लिए कुछ। उन्हें मैं स्वयं पाल-पोस सकती हूँ।" वह हर शब्द पर पूरा बल दे कर कह रही थी, परंतु क्रोध-मिश्रित दर्द की भावना को वह छिपा नहीं पा रही थी।

"मालती, तुम दोनों का केस कोर्ट-कचहरी का है ही नहीं, तुम दोनों को डॉक्टर के पास जाना चाहिए था।" सरला त्यागी ने भी पूरे विश्वास के साथ अपने हर शब्द पर बल देते हुए कहा, मानो वह किसी न्यायाधीश की तरह फैसला सुना रही हो।

मालती मानो आसमान से गिरी हो। कुछ देर के लिए वह कुछ बोल ही नहीं सकी। उसे समझ नहीं आया कि सरला त्यागी ने यह सब क्यों कहा उसे क्या हुआ है, वह तो भली-चंगी है, कभी-कभार सिर-दर्द के अलावा उसे कभी कुछ नहीं हुआ। मनोज उसको तो कभी जुकाम भी नहीं हुआ। डॉक्टर के पास क्यों जाए वह?

उन दोनों के बीच पसर आई उस चुप्पी को सरला त्यागी ने ही तोड़ा "हम एम.ए. बी.ए. कर बहुत ज्ञान अर्जित कर लेते हैं पर खुद अपने बारे में जानने की कोशिश ही नहीं करते। तुम्हारी माँ समान हूँ, कैसे समझाऊँ? अगर मनोज तुम्हें डॉक्टर के पास ले जाता और तुम दोनों की वैवाहिक जीवन की समस्या बताता तो कोर्ट-कचहरी की नौबत ही नहीं आती। डॉक्टर तुम्हारे खान-पान में थोड़ी तब्दीली करते और थोड़ी-सी दवाई देते। तुम दोनों का जीवन पहले की तरह सुखी हो जाता। पुरुष की वैवाहिक जीवन की कुछ जरूरत होती हैं, उसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। पत्नी अगर किसी वजह से पति के समक्ष खुलती नहीं, खुद को छुई-मुई बना लेती है या कि पुरुष संवेदनशील नहीं रहता। कई बार हारमोन असंतुलन अथवा किसी भय अथवा अन्य कारण से पत्नी के साथ ऐसा हो सकता है, परंतु अपने शरीर के प्रति अज्ञानवश उसे हम लोग गलत व्यवहार की संज्ञा देकर समस्या की जड़ तक नहीं पहुँचते। रोग शारीरिक या मनोवैज्ञानिक किसी भी स्तर पर हो सकता है, परन्तु लाइलाज नहीं।"

"क्या?" मालती बस इतना ही कह पायी।

वास्तव में उसने जीवन को कभी इस नज़रिये से देखा ही नहीं उसकी अपनी माँ ने भी कई बार इशारों-ईशारों में उसे कहा था—

"मालती, तू पति का ध्यान रखती है न।"

सास-ससुर भी प्रायः उसे यही कहते थे, कई बार उसे उनकी बात पर गुस्सा भी आता, पर वह उनकी बात के मर्म को कभी समझी ही नहीं।

मालती अपने विचारों में इतना खो गई थी कि उसे सरला त्यागी की उपस्थिति का ही भान नहीं रहा।

"गलती तुम्हारी नहीं, तुम्हारे पति की है, उसे तुम्हारी उलझन को समझना चाहिए था। मुझे लगता है बबली के कठिन प्रसव ने तुम्हारे अवचेतन में एक भय भर दिया। उसके बाद तुममें अपने पति की जरूरतों में कोई रुचि नहीं रही प्रतिक्रिया में वह भी असहज हो गया। मूल समस्या की तरफ कभी तुम दोनों का ध्यान ही नहीं गया। चिंता की कोई बात नहीं। तुम्हारे पति आज शाम को डॉ. रचना से मिलने वाले हैं। यह हमीं लोगों ने तय किया है। मुझे विश्वास है वह तुम्हें जल्दी ही डॉ. रचना के पास ले जाएँगे। डॉ. रचना बहुत अच्छी हैं; वह जरूर तुम दोनों की समस्या को सही कर देंगी। हाँ, एक बात और तुमसे शेयर करना जरूरी समझती हूँ, मैंने सुना है मनोज ने अपने उस वकील से लड़ाई कर उससे अपना केस वापस ले लिया है जिसने उसे तुम्हारे चरित्र के बारे में लिखने को बाध्य किया था। उसने अभी नया वकील नहीं किया है, शायद उसकी जरूरत ही न रहे। तुम चिंता नहीं करना। मैं तुम्हारे सम्पर्क में रहूँगी। फिर आऊँगी।"

सरला त्यागी को पुनः उसके घर आने की जरूरत ही नहीं हुई। तीन महीने बाद मालती और मनोज ही बच्चों के साथ उनसे मिलने उनके घर गए। सरला त्यागी उस समय मेडीटेशन कर के उठी ही थी। उनके चेहरे पर एक अपूर्व कांति उद्भासित हो रही थी। मालती अपने परिवार के साथ उनसे मिलने आई है इससे उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ, मानो वह जानती थी कि ऐसा ही होने वाला है। मालती उन्हें प्रणाम कर, उनके चरण छूने को हुई। सरला त्यागी ने बीच में ही उसे थामा और अपने वक्ष से लगा लिया। मनोज ने

भी उनका सादर अभिवादन किया। रवि और बबली को उन्होंने ढेर-सा प्यार दिया।

“आँटी, हम सब आए हैं आपका आभार व्यक्त करने। आपने हमारे जीवन की दिशा ही बदल दी। हम गहरे समुद्री तूफान में डूब रहे थे, आपने मझधार में फंसी हमारी नैया किनारे लगा दी। हमारे जीवन को आशा की नई किरणों से आलोकित कर दिया। मेरे पास शब्द नहीं है आपका धन्यवाद करने के लिए।”

“तुम लोगों को खुश देख आज हम बहुत प्रसन्न हैं। बस अपना हमेशा ध्यान रखना। आओ, नाश्ता तैयार है। आओ रवि, बबली तुम्हें क्या पसंद है?”

करीने से सजी नाश्ते की मेज के इर्द-गिर्द कुर्सियों पर सभी जा बैठे। सरला त्यागी ने रवि की ओर प्यार से देखते हुए कहा; रवि बेटा, इस कटोरे से प्लेट हटाओ। रवि ने हौले से प्लेट हटाई, “बड़ी नानी; खीर” वह चहक उठा। “तुम्हें खीर पसंद है न और मनोज को भी।” उन पांचों की उन्मुक्त हँसी से पूरा परिवेश चहक उठा।

सरला त्यागी से विदा लेते समय मालती ने विनम्रता से कहा, “आँटी, चाहे आप इसे छोटा मुँह, बड़ी बात कहें, पर मैं आपसे कहना चाहती हूँ कि मैं आपके साथ मिल कर कुछ अच्छा काम करना चाहती हूँ। आज पूरे देश में कोर्ट-कचहरियाँ तलाक के मामलों से अटी पड़ी हैं प्रायः पति पत्नी अपने अज्ञानवश अथवा अहम और अहंकार के नशे में चूर अपने बच्चों की भी परवाह नहीं करते और पहुँच जाते हैं कोर्ट-कचहरी अपनी बसी बसाई गृहस्थी को तोड़ने। यदि पति-पत्नी में बन गई खाई को किसी तरह पाटा जा सके तो कितना पुण्य का काम होगा! आप यह पुण्य रोज कमा रही हैं; क्या मुझे भी अपने साथ इसमें मदद करने की इज़ाजत देंगी।”

सरला त्यागी ने आगे बढ़ कर मालती को अपने वक्ष से लगाते हुए उसके सिर पर अपना हाथ रख दिया।

बाल कहानी

आज़ादी

—सन्तोष खन्ना

बड़े दिनों से मिठू तोता पिंजरे में बंद था। खूब बढ़िया खाने को मिलता। बहुत सुरीला गाने को मिलता। घर में नन्हीं मुनिया खूब सुंदर गाती। मंत्र गाती। गीत गाती। गगन में उड़ने की कविता सुनाती। उसका भी मन ललचाया। गगन में उडारी भरने का मन कर आया। उसने पिंजरे के द्वार पर चोंच मारी। द्वार बंद था। वह द्वार पर रोज चोंच मारता। द्वार बंद ही मिलता। एक दिन पानी रखते हुए द्वार खुला छूट गया। मिठू ने चोंच मारी, द्वार खुला था। उसका मन बल्लियों उछला। वह खुले द्वार से धीरे से बाहर निकला। उसने उड़ान भरी। उड़ने लगा। बहुत दिनों से उड़ा नहीं था, पंख थकने लगे। वह पेड़ की डाली पर बैठना चाहता था। पेड़ पर पहुंचने से पहले ही ज़मीन पर गिर गया। पुनः उड़ने की कोशिश में पुनः गिर गया। वहीं मिंटू खेल रहा था। उसने देखा, उसने मिठू को उठा लिया और उसे घर ले आया। मम्मी को तोता दिखाया और कहा, मम्मी, इसके लिए पिंजरा ला दो, मैं इसे पालूंगा।

‘नहीं, इसे पेड़ की डाली पर बिठा दो। पक्षी खुले में उड़ते अच्छे लगते हैं। वह खुश रहते हैं।’

मिंटू एक अच्छा लड़का था। वह मान गया।

अब मिठू उसी पेड़ पर रहता है और अपने सुरीले स्वर में गाता रहता है, शिमंटू मेरा दोस्त है मम्मी। वह मिंटू की माँ को मम्मी कहता है।

ऐसा भी होता है

देवी नागरानी

कहाँ गई होगी वह? यूं तो पहले कभी नहीं हुआ कि वह निर्धारित समय पर घर न लौटी हो। अगर कभी कोई कारण बन भी जाता तो वह फ़ोन ज़रूर कर देती है। मेरी चिंता की उसे चिंता है, बहुत है। लेकिन आज उसकी चिंता की बेचैनी मुझे यूं घेरे हुए है, कि मेरे पाँव न घर के भीतर टिक पा रहे हैं और न घर के बाहर क़दम रख पाने में सफ़ल हो रहे हैं।

कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ? जब कुछ न सूझा तो फोन किया, पूछने के पहले प्रयास में असफ़लता मिली क्योंकि उस तरफ कोई फोन ही नहीं उठा रहा था, निरंतर घंटियाँ बजती रहीं, ऐसे जैसे घर में बहरों का निवास हो। जी हाँ, मेरी समधन के घर की बात कर रही हूँ! अब तो कई घंटे हो गए हैं, रात आठ बजे तक लौट आती है, अब दस बज रहे हैं। बस उस मौन-सी घड़ी की ओर देखती हूँ, तकती हूँ, घूरती हूँ, पर उसे भी क्या पता कि जीवन अहसासों का नाम है? अहसास क्या होता है? व्यथा क्या होती है? इंतज़ार क्या होता है? इन सभी भावनाओं से नावाकिफ...और अचानक दिल की धड़कन तेज़ हो गई। फ़ोन की घंटी ही बज रही थी। हड़बड़ाहट में उठाने की कोशिश में बंद करने का बटन दब गया और बिचारा फ़ोन अपनी समूची आवाज़ समेटकर चुप हो गया। मैंने अपना माथा पीट लिया। आवाज़ तो सुन लेती, पूछ तो लेती कहाँ हो, क्यों अभी तक नहीं लौट पाई हो। मैंने अपनी सोच को ब्रेक दी, लम्बी सांस ली, पानी का एक गिलास पी लिया और फिर एक और पी लिया। शांत होने के प्रयासों में पलंग पर बैठ गई, और फ़ोन को टटोलकर देखा, कोई अनजान नंबर था, उसका नहीं जिसका इंतज़ार था। बिना सोचे-समझे मैंने वही नंबर दबा दिया। घंटी बजी, बजती रही और फिर बंद हो गई। अब मेरा डर मुझे सहम जाने में सहकार दे रहा था, मेरे हाथ-पाँव ठंडे हो रहे थे, एक सिहरन बिजली की तरह भीतर फैलने लगी। मैंने बटन फिर दबाया, घंटी बजी, किसी ने उठाया और फिर रख दिया। अब मेरी परेशानी का और अधिक बढ़ जाना जायज़ था रात का वक़्त, बेसब्री से उसका इंतज़ार और बातचीत का सिलसिला बंद, जैसे हर तरफ़ कर्फ़्यू लगा हुआ हो! आख़िर फ़ोन की घंटी बजी, एक-दो-तीन बार...! मैंने बहुत ही सावधानी से उसे उठाया, बस कान के पास लाई ही थी कि एक कर्कश आवाज़ कानों से टकराई 'परेशान मत करो, आज वह घर लौटने वाली नहीं। अभी एक घंटे में उसकी शादी हो रही है, डिस्टर्ब मत करना। बेरहमी से कहते हुए फ़ोन काट दिया और मैं बेहोशी की हालत में बड़बड़ाई, कंपकंपाई और वहीं पलंग पर औंधे मुँह गिर पड़ी। कौन है यह? किसकी आवाज़ हो सकती है? क्या चाहता है वह, क्यों गुमराह कर रहा है मुझे, मेरी सोच को, और उसको भी, जो मेरी साँसों की धड़कन है? वही तो मेरे जिगर का टुकड़ा है, उसके बिना मेरा जीवन सूना है, अधूरा, अपूर्ण! वह मेरे ज़िन्दा होने का सबब है, और उसी सबब के साथ बेसबब यह क्या कुछ हो रहा है, जिसकी कल्पना मात्र से मेरे बदन में डर, ज़हर बन कर फैलता जा रहा है।

ऐसा तो होना ही है, ज़रूर होगा, वह मेरा खून है, मेरे वंश की आखिरी निशानी, जिसे मैंने सीने से लगाकर पाला, बड़ा किया और उसे छत्रछाया देते-देते मैं ख़ुद एक हरा शजर बन गई। पुराने सड़े गले सब पत्ते झड़ गए, और प्रकृति के हर झोंके की आंच से बचाकर मैंने जिसे अपने आँचल की छाँव दी, वहीं उर्मिला के रूप में एक नया कोंपल उग आया। बारह महीने से बाईस साल तक का अरसा कोई कम लम्बा तो नहीं होता! अचानक दरबान ख़बर लाया था, बुरी... हाँ, बहुत बुरी ख़बर।

मेरे अभय और सविता के अंत की, और उनकी आख़िरी निशानी 'उर्मिला' को लाकर गोदी में डाल दिया। ग्यारह महीने की ही तो थी वह रेशम की गुड़िया, जिसके मुलायम छुहाव से मन में ठंडक फैल जाती, जिसके गाल अपने गाल से सहलाने से खून में संचार बढ़ता, एक ताज़गी नसों में बहने लगती, उसकी किलकारी साँसों को महका देती, जीवन जीवन-सा लगता। मेरी रातें दिनों में बदल गई।

क्या सोना, क्या खाना, क्या हँसना, क्या रोना, सब उसके साथ ही होता रहा। हाँ, उर्मि के साथ, वह धूप मैं साया! वह उठे तो मैं उठूँ, वह जागे तो मैं जागूँ, वह सोये तो मैं सोऊँ...एक चित, एक मन से मैं समर्पित हो गयी उस मासूम जान पर, और वह... मेरे जीने का सबब बन गई। वह दिवाली का मनहूस दिन ही तो था, जो कुछ घंटे पहले उर्मि को गोद में लिए घर से निकले थे। पाँव छूते हुए अभय और सविता ने कहा था "माँ दो घंटे में लौट आते हैं, आते ही दिवाली की पूजा साथ करेंगे मिठाई लेकर कुछ दोस्तों से मिल आते हैं।" और जाने वाले न लौटने के लिए चले गए। लौट आई मेरे दिल की धड़कन उर्मि के रूप में, शायद इसलिए मैं ज़िन्दा हूँ। घंटी फिर बजी, अतीत से वर्तमान में आते ही मेरी बेबसी मेरे साथ छटपटाने लगी। अब क्या करूँ? फ़ोन उठाऊँ, न उठाऊँ? न उठाऊँ तो कैसे पता चलेगा कि मेरी बालिग बच्ची कहाँ है और कैसी है? फ़ोन उठाते ही रख दिया जैसे हज़ार बिच्छुओं का डंक एक साथ लगा हो 'मैं थोड़ी देर में उसके साथ आपसे आशीर्वाद लेने आ रहा हूँ।" बस इतना सुन पाई! कौन है यह, किसकी आवाज़ है जिसमें ग़ैरत के साथ-साथ अपनाइयत भी है। पर वह कहाँ है जिसकी आवाज़ सुनने को मेरे कान तरस रहे हैं? जिसे देखने के लिए मेरी आँखें बेचैनियों की सहरा में भटक रही है।

अचानक फ़ोन की घंटी फिर बजी, उठाते ही सभ्यता के दायरे से बाहर आकर मैं उबल पड़ी, "तुम कौन हो और क्यों बार-बार परेशान कर रहे हो मेरी बात मेरी पोती से करा दो। "अभी तो वह गृह-प्रवेश करके अपने सास-ससुर का आशीर्वाद ले रही है। मैं बस अभी उसके साथ आपके पास आ रहा हूँ, फिर आप जितनी चाहें उससे बातें कर लें।" "पर तुम हो कौन?"

"आपका जमाई, आपकी पोती का पति।"

'पति...!'

मैं विस्मित, अति आश्चर्यजनक रूप से ठगी हुई खड़ी रही। रिसीवर मेरे हाथों से छूटते-छूटते बचा, पर लाइन कट गई। उसी समय दरवाज़े पर दस्तक ने मुझे दहला दिया। डरी सी सहमे-सहमे काँपते हाथों से मैंने कुंडी खोली। सामने सजी-धजी, मांग में सिंदूर सजाये, लाल साड़ी में उर्मि खड़ी थी और उसके बगल में दूल्हा, अपना चेहरा सर पर सजे मुकुट की लड़ियों में छुपाने में कामयाब रहा। मैं सकते में थी, मन ज़ोरों से मंथन का कार्य करता रहा, अब डर के साथ गुस्सा भी मन में घुस आया था। उर्मि बालिग हुई तो क्या हुआ, मुझे बताए बिना किसी ऐरे गैरे के साथ व्याह कर लिया और अब आकर सामने खड़ी हो गई है। मुझे अभी तक यह सब कांड ही लग रहा था, भयंकर कांड! उर्मि भी पथराई सी खड़ी थी मेरे सामने।

उसकी मुस्कराहट, जो उसका श्रृंगार है, जाने कहाँ गायब हुई है। कहना तो नहीं चाहती, सोचना भी नहीं चाहती कि ऐसे क्यों लग रहा है जैसे कोई अनचाहा षडयंत्र हुआ है जिसमें उर्मि जकड़ी हुई है, इसलिए तो मुस्कराहट पर भी करफ़्यू लगा हुआ है। जितना मैं सुलझे हुए विचारों से हर पहलू पर रोशनी डालती, उतनी ही मैं उलझनों में गुमराह होती जाती।

कभी भावहीन मूर्ति उर्मि की ओर देखूँ, जो अपने पति के साथ ऐसे खड़ी है जैसे मैं उनका स्वागत करने के लिए तैयार खड़ी हुई हूँ। न शोर, न गुल, न बैंड, न बाजा, बस फूल, फूलों की माला, लाल दमकती साड़ी, और लड़के की वेषभूषा से प्रतीत होता कि दोनों नवविवाहित दंपति हैं। बस, और कुछ नहीं था, न शहनाई, न मंडप, न फेरे, न महमानों की हलचल, न खाना, न पीना, ऐसा कुछ भी नहीं जिससे लगे कि यह शादी हुई है। और मैं उसकी दादी अपरीचित सी खड़ी देख रही हूँ, उन्हें घर की दहलीज़ के उस पार और मैं सोचो में डूबी इस पार।

'सदा सुहागन का आशीर्वाद दीजिये दादी' अचानक सोच के सभी बंधन टूटे। मैंने उर्मि की ओर देखा जो मिली-जुली भावनाओं से मेरी ओर देखे जा रही थी। मैंने बिना मुस्कराये सब कुछ नज़रअंदाज़ करते हुए, लगभग गरजती आवाज़ में उस अनजान दूल्हे की ओर मुख़ातिब होते हुए कहा 'क्या अपना चेहरा दिखाने के लिए तुम्हें मुँह दिखाई देनी पड़ेगी' 'मेरा हक़ तो बनता है...!' वह फुसफुसाया। निशब्दता अब भी माहौल पर हावी रही। अब दूल्हे के शरीर में हरकत हुई, वह धीरे-धीरे पूरी तरह झुका जैसे उसके हाथ

पाँवों को स्पर्श कर पाएं।

जाने क्या था उस स्पर्श में कि मेरे हाथ खुद-ब-खुद उसके माथे पर चले गए और मुँह से निकला 'सदा खुश रहो' और मैं मुग्ध भाव से फूलों के नक़ाब के पीछे से अपनी उर्मि के दूल्हे को देखने की ललक रोक न पायी। जैसे ही वह पाँव छूकर सर ऊपर उठाने को हुआए मैंने उसके मुकुट से लटकती फूलों और मोतियों की लड़ियों को हटाया तो एक सलोनी मुस्कराहट से सामना हुआ। देखा सामने सुंदर नयन नक़्श, चमकती आँखें, मनमोहिनी मुस्कान लिए दोनों हाथ जोड़े खड़ा था सुजान।

मैंने खुद को संभालते हुए दोनों को गले लगाया, आरती-टीका करके उन्हें घर में प्रवेश कराया। अब मन में डर का, सिहरन का कोहरा छंट गया। अपनाइयत की रोशनी में गैरत का अँधेरा गुम हो गया। मन के सारे भ्रम रफूचक्कर हो गए। मनमोहन मुस्कान का मालिक सुजान, मेरी बहू सविता का छोटा भाई, आज मेरी उर्मि के पति के रूप में सामने था।

मैं रसोईघर की ओर भागी, जहाँ से मुँह मीठा कराने के लिए और कुछ न पाकर शक्कर का डिब्बा ले आई। बारी-बारी दोनों को चुटकी भर खिलाई और पानी पिलाया। घर में सादगी से शुभ प्रवेश तो हुआ पर मन में एक अनसुलझी गुत्थी मुझे बेक़रार कर रही थी। 'दादी आप बैठें, ज़्यादा परेशान न होइए। लेकिन मैंने उनकी एक न सुनी, फ़ोन उठाया और लगाया उर्मि की नानी को...! बधाई हो दादीजी' उधर से पहल हुई। 'आपको भी नानी जी, पर यूं लुकाछुपी में ये सब...' 'क्यों और कैसे, आप सब जानने को आतुर हैं, हमें इसका एहसास है।

आपको तो पता ही होगा, जब नातिन अपने मामा से शादी करती है तो चोरी छुपे सिर्फ़ लड़के के परिवार में ही की जाती है, अगर आज सविता होती तो वह भी शामिल नहीं होती। हम अभी आपके पास पाँच सात मिनिट में पहुँच रहे हैं।' और फ़ोन कट गया। उर्मि के नाना-नानी आ रहे हैं, यानि मेरे संबंधी। संबंधी तो वे थे ही, अब रिश्ता और मुकम्मिल हुआ है और मेरी हर चिंता का समाधान सहजता से सजता गया...। उसी वक़्त दरवाज़े पर फिर दस्तक हुई। रसोई से बाहर निकलते ही देखा उर्मि ने दरवाज़ा खोलने की पहल की थी और अब अपनी नानी, सुजान की माँ को सास का दर्जा देते हुए पाँव छू रही थी। फ़ज़ाँ में खुशियाँ घुल मिल गईं। बधाइयाँ अदला-बदली हुई, मुँह मीठा किया और मिलकर चाय-नाश्ते के साथ बातें होतीं रहीं। कुछ कहीं जा रही थी, कुछ सुनी जा रही थी, पर सब की सब सुखद और खुशनुमा थीं। बातों के बीच कई अनजानी बातों से पर्दा उठा कि उस रात उर्मि और सुजान ने सम्पूर्ण धार्मिक रीति-रस्मों से मंदिर में अपने माता-पिता के सामने शादी की, और वे दादी को सरप्राइज देना चाहते थे। हक़ीक़त में दादी को यह पता तो था कि आंध्रप्रदेश में कुछ खास परिवारों में यह प्रथा थी कि बहन की लड़की का ब्याह रहस्यमय ढंग से मामा के साथ करवा दिया जाता, और तद्पश्चात मां और बेटी समधन बन जातीं।

भाई, बहन का जमाई बन जाता है और लड़की नानी की बहू। दादी आज सविता की जगह खड़ी सभी रिश्ते स्वीकार करके बहू की याद में रो पड़ी। पर इसमें एक खुशी भी पोशीदा थी, कि उसे उर्मि के लिए उसका मामा, पति के रूप में एक वरदान स्वरूप मिला, एक रक्षक, एक कवच बनकर! पर फ़ोन पर वे शब्द 'परेशान मत करो, एक घंटे में उसकी शादी हो रही है... 'अब एक सुखद यादगार बन गई। 'दादी हम सभी ने तय किया कि यह शादी रहस्यमय ढंग से सम्पूर्ण करके हम आपके पास आशीर्वाद लेने आएँ। हमें पता है कि आप उर्मि को खुद से जुदा करके हमारे घर की बहू बनाने के लिए राज़ी नहीं होंगी।' कहते हुए उर्मि की नानी ने उठकर दादी को गले लगाया और उनके आँसू पोंछे। सभी का दर्द सांझा था, सभी की खुशियाँ सांझी थीं। आँखों में एक मंज़र तैर आया, बारह महीने की नन्ही उर्मि और बाईस साल की नौजवान उर्मि अपनी ही नानी की बहू बनी, अपनी माँ की इच्छा पूरी की और अब भावभीनी-सी दादी के चरणों की ओर झुकी तो दादी ने उसे उठाकर अपने सीने से लगा लिया। कल रात और आज सुबह तक के बीच का वह सिहरता समय अब खुशियों की फुहार में बदल गया। आज दादी ने महसूस किया कि दो पीढ़ियों को पाटने वाला प्यार ऐसा भी होता है।

चुटकुला

हरदीप सबरवाल

बच्चे खुश हैं और चहक रहे हैं, सभी के बस्ते बंद हैं क्योंकि आज पढ़ने का दिन नहीं बल्कि बाल सभा में चुटकुले और कविताओं का दिन है, स्कूल की वर्दी में अलग-अलग बच्चे एक जैसे दिख रहे हैं, छोटे-छोटे मासूम पक्षियों की तरह, जैसे हंसों का कोई झुंड तैरता हुआ पानी में कलरव कर रहा हो, कक्षा में शिक्षक भी आज गुस्से में नहीं बल्कि प्रसन्न दिख रहे हैं, उन्होंने रोल नंबर एक को बुलाया, यह बहुत अच्छा बच्चा है, पढ़ाई में होशियार है और सबसे साफ सुथरा भी है।

"तुम कोई कविता सुनाओ?" अध्यापक ने उत्साह वर्धन करते हुए कहा—

बच्चा पहले से ही जोश में था, उसने ऊँची आवाज में कविता सुनाना शुरू किया

"मोटू सेठ सड़क पर लेट
आई गाड़ी फट गया पेट
गाड़ी का नंबर ऐटी एट
गाड़ी पहुँची इंडिया गेट
इंडिया गेट से आई आवाज
चाचा नेहरू जिंदाबाद!"

सभी बच्चे जोश के साथ कविता की पंक्तियों को दोहरा रहे थे। सिर्फ एक बच्चे को छोड़कर, जब वह कविता सुन रहा था तो वह थोड़ा घबरा गया। उसके चेहरे पर डर दिखाई देने लगा था। उसने अपने बगल में बैठे अपने सहपाठी से पूछा, "अगर उसका पेट फट गया तो क्या वो मर गया?"

सहपाठी को यह बात कविता से भी अधिक मनोरंजक लगी, उसने उसकी जांघ पर थप्पड़ मारा और कहा, "हट पागल।"

बच्चा कुछ भी समझ नहीं पाया, अन्य सभी बच्चे खुश और वातावरण में रमे थे, वे सभी आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के विशाल झुंड की तरह थे, जो मस्ती में झूम रहे थे, शिक्षक ने इस बार एक लड़की को उठाया, यह लड़की कक्षा के सब से रईस बच्चों में से एक थी, उसकी रईसी उसके पहनावे, तमीज और बात करने के सलीके से झलकती है, वास्तव में वह इस कक्षा की राजकुमारी की तरह है, लड़की ने एक कविता सुनानी शुरू की—

"तितली उड़ी, बस में चढ़ी
सीट ना मिली, रोने लगी,
ड्राइवर कहता आजा मेरे पास
तितली बोली हट बदमाश",

सभी बच्चे ताली बजाने लगे, लेकिन छोटा लड़का अभी भी परेशान था, विस्मय से चारों ओर देखते हुए, उसने अपने सहपाठी से फिर पूछा, "यह ड्राइवर तितली को क्यों छेड़ता है?"

सहपाठी को अब और भी अधिक मज़ा आया, उसने अपनी कोहनी को उसकी कमर में जोर से मारा और हँसते हँसते पेट के बल हो गया, बच्चे को कमर में दर्द हो रहा था, लेकिन इससे भी अधिक दर्द उसके दिल और दिमाग में हो रहा था।

"सर जी, मैं एक चुटकुला सुनाऊँ?", तीसरी पंक्ति में बैठे एक लड़के ने पूछा। यह लड़का कक्षा में पढ़ाई में सबसे पीछे और शरारत में सबसे आगे है, कक्षा में शोर करने वाले बच्चों में सबसे ऊपर।

"हाँ बिल्कुल, तू भी कोई अच्छा चुटकुला सुना", अध्यापक जी ने स्वीकृति देते हुए कहा।

लड़के ने चुटकुला सुनाना शुरू किया।

एक लड़का अपनी माँ से कहता है, "मम्मी, आपने मुझसे झूठ बोला।"

माँ, "कब, बेटा?"

"मम्मी आप कहती थीं कि मेरी छोटी बहन परी है?"

"हाँ, बेटा।"

"झूठ मत बोलो माँ, मैंने उसे छत से नीचे फेंक दिया पर वह उड़ ही नहीं पाई।"

माँ, "हाय, कहां फेंक आया लड़की को।"

पूरी क्लास हँस रही है और हँस-हँस कर पेट के बल

हो रही है, लेकिन लड़का और भी परेशान हो गया, मानो वह रोने ही वाला था। उसने अपने सहपाठी से पूछा, “क्या उसकी बहन को बहुत चोट लग गई।”

सहपाठी को चुटकुले से जो आनंद आ रहा था, वह बर्बाद हो गया, उसने गुस्से में बच्चे को धक्का दे दिया और कहा, “जा भाग यहाँ से।”

बच्चा अवाक् रह गया।

“अब और कौन चुटकुला या कहानी सुनाएगा?” शिक्षक ने बच्चों से पूछा।

“सर, क्या मैं एक चुटकुला सुना सकता हूँ?” कक्षा में सबसे मजबूत बच्चे ने हाथ खड़ा कर के पूछा।

यह बच्चा कक्षा का सबसे मजबूत बच्चा है और अघोषित रूप से वह पूरी कक्षा पर विशेषकर कक्षा के लड़कों पर शासन करता है।

“हाँ, जरूर, तू भी कोई अच्छा चुटकुला सुना” शिक्षक ने प्रोत्साहित किया।

बच्चे ने उत्साह भरी आवाज में चुटकुला शुरू किया

“एक बार तीन नशेड़ी बैठे थे और आपस में बात कर रहे थे। पहले नशेड़ी ने कहा, ‘भाई, मैं अब गाँव के बाहर ज़मीन खरीद लूंगा और खेती शुरू कर दूंगा।”

“भाई, तुम किस फसल की खेती करोगे? दूसरे नशेड़ी ने पूछा।

“मैं गन्ने की खेती करूंगा,” पहले नशेड़ी ने कहा, “और मैं गन्ने की फसल बेचकर बहुत पैसा कमाऊंगा।”

“भाई तुम गन्ने की खेती करके पैसा नहीं कमा सकते,” तीसरे नशेड़ी ने जैसे अपना फैसला सुनाया।

“तुमने ये क्यों कहा? पहले वाले ने पूछा।

“और नहीं तो क्या, गाँव वाले तेरे खेत में गन्ने को रहने देंगे क्या, वे तो पूरे खेत से गन्ने उखाड़-उखाड़ कर चूसने के लिए ले जाएंगे,” तीसरे नशेड़ी ने कहा।

“गांव वालों की इतनी हिम्मत, उन्हें सबक सिखाना ही पड़ेगा,” पहले नशेड़ी ने गुस्से में कहा।

“क्यों ना हम पूरे गाँव को आग लगा दें,” दूसरे ने कहा।

“हाँ, चलो गाँव को आग लगा देते हैं,” तीसरा नशेड़ी बोला।

तीनों नशेड़ियों ने मिलकर गाँव को आग लगा दी और एक टीले पर चढ़ गए और जोर से चिल्लाने लगे, और चूसो गन्ने, और उखाड़ो गन्ने।

कक्षा में जोर से हँसी फैल गई, बच्चे हँस रहे थे और अत्यधिक आनंद में थे, शिक्षक भी हँस रहे थे, बहुत दिनों बाद ऐसा आनंदमय माहौल बना था। अचानक वो छोटा लड़का जोर से रोने लगा और लगभग चिल्लाते हुए बोला, “सर जी, क्या आग में सारे गांव वाले जल गए?”

सभी बच्चे और शिक्षक विस्मय से उस बच्चे को देखने लगे। एक पल के लिए कक्षा में सन्नाटा छा गया।

शिक्षक ने अपने माथे पर त्यौरी चढ़ाई और जोर से पूछा, “क्या कहा तुमने?” और शिक्षक जोर-जोर से हंसने लगा, बाकी कक्षा भी जोर-जोर से हँसने लगी, बच्चा बिल्कुल नहीं समझ पाया कि सब लोग क्यों हंस रहे हैं, वह समझ नहीं पाया, छेड़छाड़, हिंसा और लिंग भेद जैसे अपराध हमारे चुटकुलों और बाल कविताओं में इतने सरल तरीके से प्रस्तुत किए जाते हैं।

कि यह किसी को अपराध की तरह प्रतीत ही नही होते है, बल्कि इस हिंसा, यौन अपराध और लिंग भेद पर आधारित चुटकुलों का आनंद लिया जाता है। बाकी बच्चों और शिक्षक को एक जीता-जागता चुटकुला मिल गया था, आकाश में उड़ने वाले पक्षियों का झुण्ड अब जंगली भेड़ियों के झुंड में बदल गया था, जिनके हाथों में अचानक एक शिकार लग गया है, और सभी की निगाहें उस पर लगी हुई हैं। बच्चे को सब ने ऐसे घेर लिया था जैसे भेड़ियों का झुंड अपने शिकार को घेर लेता है...और लिंग भेद, यौन अपराध और हिंसा के वार सहता खून से लथपथ एक चुटकुला जमीन पर गिरा हुआ है।

टुकड़े-टुकड़े ज़िन्दगी

हरीश पाठक

कहानी बाद में सुनाऊँगा, पहले मेरा निवेदन सुन लीजिए 'मेरा एक मित्र गत चार सालों से लापता है, एक इंटरव्यू के सिलसिले में बाहर गया था, तब से अब तक घर वापस नहीं आया है, उसके माता-पिता, भाई-बहन सब लोग परेशान हैं, हो सकता है वह अब भी आपके शहर में नौकरी की तलाश में भटक रहा हो, उसकी पहचान बहुत सादा है, मुझे विश्वास है कि आप उसे जरूर पहचान लेंगे, जैसे ही वह आपसे मिलेगा आपको अपने बारे में बताते-बताते रोने लगेगा, रोते-रोते उसकी आवाज सिसकियों में बदल जायेगी, फिर वह आपको अपनी सारी कहानी कह सुनायेगा कि किस तरह उसके पिता ने उसे बड़ी तंगी में पढ़ाया-लिखाया, किस तरह उसने महाविद्यालय की सीढ़ियों को नापा? कब से वह सड़कों से चिपटा है और किस तरह वह अपने उपेक्षित जीवन को बिता रहा है।

यदि वह ऐसा करे तो निस्संकोच आप समझ जाइये कि वही मेरा मित्र है, तो अब आप से मेरा नम्र निवेदन है कि आप उसे अपने पास तब तक बैठाये रखें जब तक कि मैं आपके पास तक न आ जाऊँ।

हाँ, तो उससे मेरी मुलाकात किस शहर में हुई थी यह तो ठीक से ध्यान नहीं है पर इतना जरूर याद है कि मैं भी एक इंटरव्यू के सिलसिले में गया था। वह गर्मी का एक बेहद तपा हुआ दिन था, बाहर-भीतर जहाँ देखो लगता है जैसे किसी ने आग उंड़ेल दी हो।

अंदर इंटरव्यू चल रहा था और बाहर छोटे से बरामदे में बहुत से उम्मीदवार बिलबिला रहे थे, मैं एक बरामदे में एक कोने से टिककर खड़ा था कि तभी एक पतला दुबला सा लड़का जिसके शरीर पर बहुत हल्के-से कपड़े थे, बायें हाथ से पसीने को पोंछता मेरे पास आया और बोला "क्या आपके पास पेन है?" उसकी आवाज से लग रहा था कि वह बेहद घबड़ा रहा है साथ ही भीड़ को देखकर आतंकित है।

पेन उसकी तरफ बढ़ाते हुए एकबारगी मैंने उसे ऊपर से नीचे तक देखा, बरामदे में भीड़ बढ़ती जा रही थी, कोई अपने साथ लाये कागजों से अपनी हवा कर रहा था तो किसी ने बुशर्ट ही उतार दी थी, किसी की जुबान पर अपना रोना था तो कोई इंटरव्यू में घपले की ओर अपने कीमती विचार व्यक्त कर रहा था, कुल मिलाकर बड़ा अजीब-सा माहौल था।

पेन वापस करने के साथ ही वह बोला—"घर खबर भेज देता हूँ कि आज नहीं आ पाऊँगा, नहीं तो माँ बहुत याद करेगी।

शाम को घंटों तक दरवाजे पर मेरी प्रतीक्षा में खड़ी रहेगी, जब आखिरी बस भी आ जायेगी और उसकी सवारियाँ भी धीरे-धीरे घर के सामने वाले कच्चे रास्ते से निकल जायेंगी तो वह बेचैन हो जायेगी और लपककर पासवाले लल्ला के पास जायेगी, बड़े ही नम्र स्वर में उससे बोलेगी "बेटा, जा जरा टीले तक देख तो आ राजन आ गया क्या, शाम को आने को कह गया था, सब लोग तो निकल गये पर वह नहीं आया, चला जा बेटा, लल्ला जब तक लौटकर नहीं आ जायेगा माँ को बराबर मेरी प्रतीक्षा बनी ही रहेगी।"

मुझे उसकी बात में दिलचस्पी आने लगी, उसने कहा—"वैसे बंधु मैं लौट आज ही जाता, बिना इंटरव्यू दिये। आखिर अभी तक कितने ही इंटरव्यू दे चुका हूँ। कहीं कुछ भी तो नहीं हुआ है। इसी कशमकश में मेरे कदम वापस मुड़ने लगे थे पर माँ का चेहरा सामने आते ही मैं नहीं लौट पाया। अभी भी एक आस उसकी आँखों में है कि उसका राजन अफसर बनेगा, दूसरा यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं एक गरीब बाप को बेटा हूँ जिसके पास न तो देने को रिश्वत हैं और नहीं करने को सिफारिश। बस न जाने क्या सोचकर रुक गया।"

उस बातचीत के बाद ही हम लोग आपस में कहीं गहरे अंदर तक जुड़ गये थे। हमने साथ-साथ इंटरव्यू की औपचारिकता को पूरा किया। वह उस दिन पूरे समय तक मेरे साथ रहा। जाते समय हमने आपस में अपने-अपने पते बदले, पत्र-व्यवहार का वायदा करके दूसरे दिन हम एक-दूसरे

से विदा हो गये।

अपने शहर आते ही मुझे राजन की याद सताने लगी, पिताजी की सिफारिश से मैं एक प्राइवेट फर्म में छोटी-सी पोस्ट पर चिपक गया था। इस बीच राजन के कई पत्र आये, नौकरी लगने की सूचना सबसे पहले मैंने राजन को ही दी थी। उसके हर पत्र में अपने सूने और मायूस जीवन का जिक्र होता, माता-पिता की कमजोर हालत का बयान होता, बहन शीला की उम्र की चिंता होती, सबसे बाद में होता पलायन का सीधा रास्ता। कई बार जी में आया एक बार उससे मिल आऊँ पर कार्याधिक्य ने मेरी इस अदम्य इच्छा को तोड़ दिया।

फिर एक दिन उसका एक रजिस्टर्ड पत्र मुझे मिला जो सम्भवतः उसका अंतिम पत्र था, लिखा था– "बंधु, तुमसे मिलने के बाद लगा कि काफी समय बाद कहीं अपनापन मिला है, जिस अपनत्व की तलाश में मैं वर्षों से था वह मुझे तुमसे मिला, पर अब लग रहा है कि इसका भी समय निश्चित था, घर की स्थिति दिनों-दिन बिगड़ती जा रही है।

पिताजी को दमे की बीमारी ने पकड़ लिया है, खाँसते-खाँसते वे बेहाल हो जाते हैं, दिन भर खाट पर पड़े रहते हैं, लगता है कहीं इसी खाट से चिपके न रह जायें और यदि कहीं ऐसी हो ही गया तो निस्संदेह मैं उनका क्रिया-कर्म भी नहीं कर पाऊँगा, कहीं कोई जगह मेरे लिए नहीं बची पर माँ की आँखों में अब भी आस टंगी है। शीला की उम्र बढ़ती जा रही है जैसे ही वह दहलीज पर आती है तेज झटके मेरे शरीर में लगते हैं, उसे देखते ही कुछ लोगों की आँखों में चमक उभर आती है पर मैं इस स्थिति को भी पी लेता हूँ।

कभी-कभी तो बदहवासी में मेरे कदम रेल की समांतर पटरियों की ओर भी फिसलने लगते है पर इसी कारण लौट आता हूँ कि कहीं लोग यह न समझे कि उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सका, माँ और शीला के चेहरे मुझे बुजदिल बना देते हैं। क्या करूँ? लगता है मैं कहीं पागल न हो जाऊँ, पत्र का जवाब तो दिया करो।"

उसके बाद एक दिन अचानक एक मुड़ा-तुड़ा सा पत्र मिला था, जिसमें बड़े लापरवाह अक्षरों में लिखा था– 'बेटा जल्दी आ जाओ, राजन का कुछ पता नहीं है।' सन्न-सा रह गया था। पत्र राजन की माँ ने किसी से लिखवाकर भिजवाया था, राजन कहाँ गया होगा? मेरी कुछ समझ में नहीं आ पाया। उसका चेहरा बार-बार सामने थिरने लगता तो क्या वह जिम्मेदारियों से इतना घबड़ा गया था। यही सब सोचता मैं शाम की बस से उसके गाँव पहुँच गया था।

धुंधलका फैल चुका था, ऊँचे-नीचे कच्चे-पक्के मकान, दूर तक फैला सन्नाटा और उस अजीब-से सन्नाटे में मैं राजन के घर के सामने खड़ा था। पहले दरवाजे पर एक लड़की आयी, मैंने अनुमान लगाया यही राजन की बहन होगी, दरवाजे के भीतर कदम रखा तो एक कोने में खाट पर झुके हुए राजन के पिता थे जैसे ही मैं उनके नजदीक पहुँचा तो सहसा डर गया।

बिलकुल हड्डियाँ ही शरीर में शेष थीं, आँखों में अब भी कुछ चमक रहा था। मुझे गले से चिपटा कर वे जोर-जोर से रोने लगे, थोड़ी ही देर बाद राजन की माँ आ गयी और उसने सब कुछ बता दिया कि किस तरह राजन रात को घबड़ाहट में चिल्लाने लगता था, बचाओ, बचाओ अब और नहीं सह सकता। मैं पागल हो जाऊँगा, और इसी तरह एक दिन यह कहकर घर से चल दिया कि एक इंटरव्यू देने जा रहा हूँ। तब से अभी तक कुछ पता नहीं है। माँ भी सिसकने लगी थी। अब हमारा क्या होगा बेटा, उसके सामने अपने परिवार के भविष्य का प्रश्न था।

भारी मन से वहाँ से चला आया। रास्ते भर ख़्यालों में राजन घूमता रहा। घर आया तो भी राजन को न भूल पाया, कमरे में जैसे ही घुसा सहसा लगा जैसे राजन कमरे में हर ओर बिखरा पड़ा है, कमरे में, मोहल्ले में, शहर में, शहर से देश में, इसी तरह धीरे-धीरे सब जगह राजन बिखरता ही जा रहा है। धीरे-धीरे, सब जगह।

तो सुनिये, अब आप उसे जरूर पहचान गये होंगे तो बस इतना कीजिये, मेरे निवेदन को मत ठुकराइये जब तक मैं न आ जाऊँ आप उसे जाने मत देना।

प्लीज़ हमें साथ रहने दो

डॉ. शकुन्तला कालरा

ज्योति और आलोक दोनों बहन-भाई ट्विन्स हैं। दोनों अब दस वर्ष के हैं। उनकी माँ गीता सरकारी स्कूल में अध्यापिका थीं। चुनाव में ड्यूटी लगी, जिनमें उनका जाना ज़रूरी था।

गीता वहाँ से लौटी तो उन्हें बुखार आ गया। पहले सोचा थकावट के कारण होगा। पर अभी लक्षण कोई नहीं था। विषाणु ने धीरे-धीरे असर दिखाया। दो दिन बाद ही उन्हें बुखार, खाँसी, सांस लेने में दिक्कत महसूस होने लगी।

पर टेस्ट कराया तो पता चला कि वह कोरोना की चपेट में आ चुकी थीं। बुखार बढ़ता गया। बुखार के साथ उनका गला चॉक हो गया। निगलने में भी बहुत तकलीफ होने लगी। पानी तक भी नहीं निगला जा रहा था। सांस लेने में भी तकलीफ हो रही थी। हॉस्पिटल इमरजेंसी में गईं। वहाँ उन्हें डेक्सोना का इंजेक्शन दिया। नेबोलाइज किया और घर भेज दिया तथा घर में उन्हें आइसोलेशन में रहना होगा। वह अलग कमरे में रहने लगी।

"माँ तुम क्या लोगी? दस साल की ज्योति ने लॉबी में दूर से खड़े-खड़े ही पूछा। उसके मुँह पर मास्क लगा था। "बेटी मुँह का स्वाद बड़ा खराब हो रहा है। कुछ भी खाने की इच्छा नहीं है। थोड़ी देर तक ले लूँगी।" असल में ज्योति की माँ गीता बच्ची को थोड़ा आराम करने देना चाहती थी। आजकल घर का काम भी बढ़ गया था। कोरोना में जब पूरा लॉकडाउन था तो मेड भी नहीं आ रही थी। वैसे भी उनको रखने में संक्रमण का बहुत खतरा था। दो दिन तो महेश ने भी जैसे-तैसे रसोई और बच्चों को संभाला। तीसरे दिन उन्हें भी कोरोना हो गया। दोनों अलग-अलग कमरे में थे। मोबाइल से एक-दूसरे से बातचीत होती। इतने छोटे बच्चे कैसे कर पाएँगे? महेश ने अपने घर मम्मी-पापा को फोन किया। दूसरे दिन सुबह ही आगरा से कार से माँ दिल्ली पहुँची। बड़ी सावधानी के साथ उन्होंने पहले अपने हाथों को सैनेटाइज किया फिर घंटी बजाई। बच्चे पहले से इंतजार कर रहे थे। आलोक बाथरूम में कपड़े धो रहा था। इतनी छोटी बच्ची ज्योति उस समय रसोई में बर्तन मांज रही थी। आलोक ने दरवाजा खोला। बाहर दादी के हाथ-मुँह धुलवाए। थोड़ी देर आराम करने के बाद उन्होंने स्नान कर कपड़े बदले और लॉबी में दूर से खड़े-खड़े ही बहू-बेटे से बात की।

"चिंता न करो अब मैं आ गई हूँ। हमें हर तरह की सावधानी रखनी होगी। मुझे श्वेता ने फोन पर सब समझा दिया है। ज्योति और आलोक का मैं पूरा ध्यान रखूँगी। इन्हें रसोई का अब कोई काम नहीं करना पड़ेगा।" दोनों बच्चों को बाँहों में भरते हुए माँ ने कहा। बड़ी मनौतियों के बाद उनकी दादी बनने की मुराद पूरी हुई थी। सास बहू दोनों ने कई व्रत-अनुष्ठान किए थे। शादी के छः साल बाद कई ईलाज कराने के बाद गीता की गोद भरी थी। इतने लाड़लों को इस तरह काम करते देख दादी का जी भर आया। दादी ने पूरी रसोई संभाल ली। बहू-बच्चों को समय पर नाश्ता देना, खाना देना आदि काम वह खुद करने लगी। बच्चे अपने-अपने काम खुद कर लेते थे। गीता ने दोनों बच्चों को ऐसी ट्रेनिंग दे रखी थी। दोनों बच्चे रात को दादी के साथ सोते। वह उन्हें चुन-चुनकर प्रेरक कहानी सुनाती। हर कहानी उनमें आत्मविश्वास भरती। कठिनाई में हिम्मत बनाए रखना सिखाती। कहानी सुनते-सुनते बच्चे जब सो जाते तो वह लॉबी में आकर गीता-महेश से कुछ देर बातें करती। दोनों के कमरे साथ-साथ लगे थे। लॉबी में खड़े होकर एक साथ दोनों से बात हो जाती थी।

"माँ! बच्चों के साथ-साथ आप अपना भी ख्याल रखो। हमें आपकी बहुत चिंता है।"

"बेटा महेश तुम्हें कोरोना कैसे हुआ? क्या तुमने मास्क लगाकर नहीं रखा था?"

"नहीं माँ ऐसी बात नहीं है। कोरोना पॉजिटिव आते ही उसने अपने को अलग कमरे में कर लिया था। दो दिन बाद मुझे भी बुखार आया और कोरोना पॉजिटिव आया।"

दोनों दवाई डॉक्टर की सलाह से ले रहे थे। गीता का बुखार नहीं उतर पा रहा था। उस रात उनका ऑक्सीजन लेवल भी काफी कम हो गया। सांस लेने में दिक्कत आने

लगी। गला चॉक होने लगा। पानी निगलने में भी मुश्किल। श्वेता को फोन किया। फौरन ही उन्हें नजदीक के अस्पताल में दाखिल कराया। इंजेक्शन दिया। धीरे-धीरे तबीयत में सुधार आने लगा। महेश की बहन श्वेता स्वयं डॉक्टर है। इसलिए पहचान होने के कारण उन्हें बेड मिलने में उतनी मुश्किल नहीं हुई। उसी अस्पताल में श्वेता के क्लासमेट मिस्टर खन्ना भी थे। गीता की तबीयत में सुधार आ रहा था। डॉक्टर खन्ना निश्चिंत थे। अचानक उनका आक्सीजन लेवल गिरने लगा। उन्हें वैंटीलेटर पर रखा और दोपहर को हार्ट-अटैक हुआ। डॉक्टरों के निरीक्षण में वह ठीक हो गई। उन्होंने दोनों बच्चों से बात की और यही कहा मैं दो-तीन दिनों तक ठीक होकर घर आ जाऊँगी। भाग्य को शायद यह मंजूर नहीं था। देर रात उन्हें दूसरा अटैक पड़ा, जिसे वह झेल नहीं पाई और हमेशा-हमेशा के लिए अपनो प्यारे घर-संसार को रोता-बिलखता छोड़कर चली गई। श्वेता उस समय भाभी के पास थी। खुद एक डाक्टर होते हुए भी वह कुछ नहीं कर सकी। उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी घर में भैया को फोन करने की, माँ को बताने की। पर बताना तो था। श्वेता ने फोन किया। फोन माँ ने उठाया—

"माँ, भाभी नहीं रहीं" कहकर श्वेता फूट-फूट कर रोने लगी।

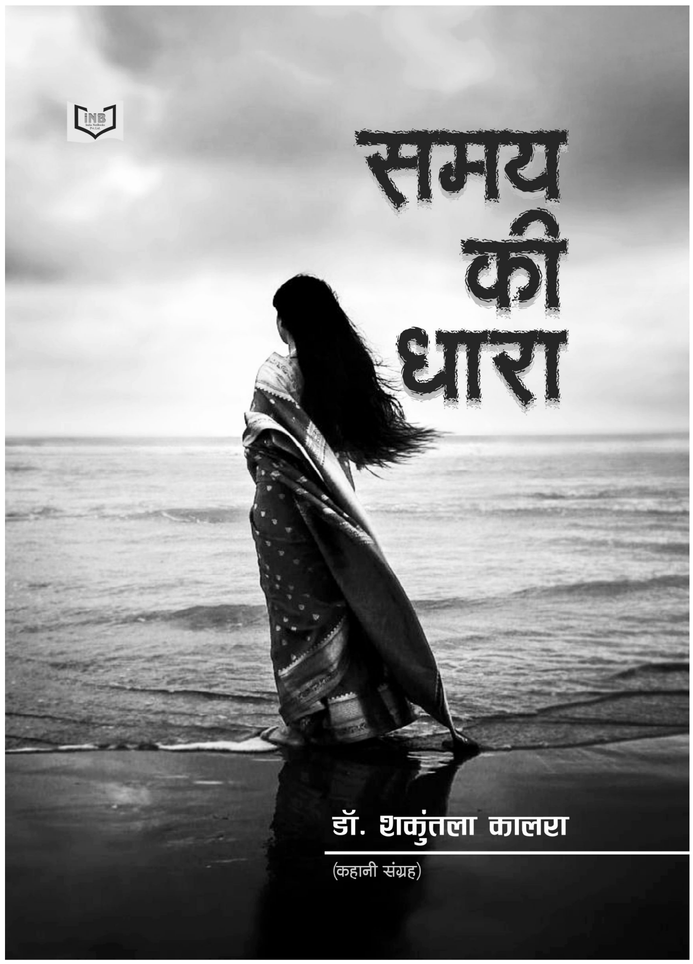

"अरे, ऐसे कैसे हो सकता है। शाम तक तो डॉक्टर और तुम बता रही थीं कि वह ठीक हो रही है। अचानक कैसे हो गया?" माँ भैया को कैसे बताऊँ। बताना तो पड़ेगा। अच्छा आप फोन रखो। मैं भैया के फोन पर बात करती हूँ। आप लॉबी में खड़ी रहना। भैया घबरा जाएँगे। ठीक है मैं फोन रखती हूँ। महेश को नींद कहाँ आ रही थी। उसका तो पूरा ध्यान गीता की तरफ था। आस-पास, दाएँ-बाएँ, टी.वी. पर इतने खराब-खराब न्यूज़ सुन-सुनकर वैसे भी मन डरा-सा रहता। वे माँ से कुछ पूछते इससे पहले ही उनके फोन की घंटी बजी। फोन श्वेता का था—

"बोलो श्वेता सब ठीक है न? गीता कैसी है? ऑक्सीजन लेवल ठीक है न? कई सवाल एक साथ कर दिए। उधर से श्वेता के जोर-जोर से रोने की आवाज ने उन्हें आशंकित कर दिया।"

"महेश भाभी हमको छोड़कर चली गई"

"पर थोड़ी देर पहले तो तुमने कहा था वह ठीक हो रही थी।"

"भैया कोरोना ने उनके फेफड़ों को प्रभावित किया और उन्हें कॉर्डिअक अरेस्ट हो गया। कुछ घंटों के अंतराल में दो

अटैक आए और डॉक्टर उन्हें बचा नहीं पाए। अच्छा भैया मैं फोन रखती हूँ। आप माँ और बच्चों को देखो।"

"मैं बच्चों को क्या देखूँ? उन्हें गले लगाकर ढाँढ़स भी नहीं बंधा सकता। सिर पर हाथ रखकर इतना भी नहीं कह सकता कि मैं हूँ न। मिलकर रो भी नहीं सकते। माँ के नजदीक नहीं जा सकता। यह कैसी यातना भरी स्थिति है। कहते-कहते वह दहाड़ मारकर रोने लगे। रोने की आवाज सुनकर दोनों बच्चे जाग गए और पापा, दादी को रोता देखकर कुछ भी जाने बिना रोने लगे।

"ज्योति, आलोक बेटा तुम्हारी माँ हमें छोड़कर चली गई। रूठ गई वह हमसे।"

"नहीं माँ ऐसा नहीं हो सकता। आपने हमसे प्रॉमिस किया था कि आप जल्दी ही ठीक होकर घर वापस आएँगी। आपने प्रोमिस तोड़ा है। मेरी आपसे कुट्टी।"

ज्योति कुछ समझ ही नहीं पाई कि यह क्या हो गया आलोक ज्योति को चुप कराता और खुद भी रोता जाता। महेश बेचारे मजबूर बच्चों के आँसू भी नहीं पोछ पा रहे थे। अपने कमरे में ही खड़े रोते रहे। माँ बेटे को ढाँढ़स नहीं बंधा पा रही और बेटा माँ के आंचल में फूट-फूटकर रोना चाहता है। पर छू भी नहीं पा रहा। माँ बेटे के कंधे पर हाथ रखकर उसे दिलासा देना चाहती है पर स्पर्श नहीं कर सकती। पूरी रात सब जागते रहे, रोते रहे और गीता की बातें करते रहे। महेश रोए जा रहे थे। कैसी मजबूरी थी। अस्पताल भी नहीं जा सकते थे। श्वेता अस्पताल में रही। वहाँ की औपचारिकताएँ पूरी करने में काफी समय लगा।

महेश की तबीयत अचानक बिगड़ गई। एक कोरोना और दूसरा गीता की अप्रत्याशित मौत का झटका वह सहन नहीं कर पाए। बच्चों से दूरी, माँ से दूरी उनसे बर्दाश्त नहीं हो पा रही थी। पर कोरोना की कल्पना से ही वह सिहर उठे और दहाड़ मारकर रोने लगे। श्वेता जब घर आई तो उसे लगा महेश भैया की तबीयत बिगड़ रही है। भाई के साथ भाभी के दुःख में रो वह भी नहीं पाई कि उसने एम्बुलेंस मँगवाई और उसी अस्पताल में दाखिल करवा दिया।

दोनों बच्चे माता-पिता को खोकर अनाथ हो गए। दोनों बच्चों को श्वेता बुआ ने बाँहों में कसकर भरा और फूट-फूटकर रोने लगी। वह जानती थी ये बच्चे माता-पिता के कितने लाड़ले थे। फूलों की तरह पाला था उन्होंने। कभी एक दिन के लिए भी वह उन्हें कभी कहीं अकेला नहीं भेजती थी। न ननिहाल कभी अकेले रहे। न कभी दादा-दादी के पास। जहाँ जाते चारों जाते। कभी शनिवार रात डिनर के लिए श्वेता के यहाँ जाते और देर हो जाती तो श्वेता हमेशा कहती भैया आज बच्चों को यहीं छोड़ दो।

बच्चे भी कहते आज बुआ के यहाँ रह जाएँ पर दोनों ने उन्हें कभी एक दिन के लिए भी कहीं नहीं छोड़ा था। बुआ, बच्चों को बहुत प्यार करती थी और आज वह उन्हें भगवान के भरोसे छोड़कर दोनों एक साथ चले गए। न जाने अंतिम समय उनके मन में क्या आया होगा, मृत्यु ने उन्हें कितना लाचार बना दिया होगा। अपने हृदय के टुकड़ों को अकेला छोड़ दिया। न जाने कितने विचारों को मंथन चला होगा। भैया के प्राण भाभी की सांसों में बसते थे। नहीं रह पाए वह उनके बिना।

दादा-दादी बच्चों को कितना भी प्यार करें, पर वे उनके माता-पिता की जगह नहीं ले सकते थे। कुछ दिनों के लिए वे बच्चों को अपने साथ आगरा ले गए। स्कूल की तो छुट्टियाँ थीं। चाचा-चाची भी बच्चों को बहुत प्यार करते। बच्चों की उदासी कम नहीं हुई। होती भी कैसे यह उदासी तो उम्रभर की थी। कैसा समय था। न उनके मित्र घर आ सकते थे, न ये किसी के पास जा सकते थे। पार्क में खेलने के लिए भी कोई बच्चा बाहर नहीं आता था। दादी उन दोनों को शाम को थोड़ी देर बॉलकनी में ले बैठती। पर पार्क में कोई बच्चा दिखाई नहीं देता था। श्वेता रोज़ बच्चों से मिलने आती। कभी-कभी दो-तीन दिन के लिए अपने घर भी ले जाती।

एक दिन श्वेता ने माँ से कहा—"माँ मैं आपसे कुछ माँगूं तो आप मुझे देंगी।"

"क्या दे सकती हूँ।"

"आप ज्योति को मुझे दे दीजिए।"

श्वेता की शादी को दस साल हो गए थे। उसे भी अभी तक संतान सुख नहीं मिला था। श्वेता, महेश से यूँ तो छोटी थी, पर उसकी शादी पहले हुई थी। श्वेता की आँखों से

झर-झर आँसू बह रहे थे। भाभी मुझे माफ करना, आज मैं बच्चों को अपने साथ ले जा रही हूँ। एक दिन के लिए नहीं हमेशा के लिए।

कुछ दिन बाद दादा-दादी बच्चों को लेकर दिल्ली वापस आ गए। घर में बच्चों के पास मम्मी-पापा की ढेरों स्मृतियाँ थीं। दोनों उनकी एलबम देखते और याद कर रो पड़ते। दादा-दादी ने फैसला किया कि वे बच्चों को हमेशा के लिए आगरा ले जाएँगे। वहाँ उनका बड़ा पुश्तैनी घर था। छोटा बेटा नितिन और बहू अंकिता भी साथ रहते थे। एक उनका बेटा था जो अभी पांच साल का ही था।

चाचा-चाची का प्यार पाकर शायद वे अपना कुछ दुख भूल सकें। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि इस उम्र में उन्हें भी सहारे की जरूरत थी। बहू-बेटे की अकाल मृत्यु के भारी दुःख से वे दोनों बुरी तरह से टूट गए। दिल्ली में वे अकेले नहीं रह सकते थे। बच्चों को साथ ले जाना ही उन्हें सबसे उचित विकल्प लगा था।

दिल्ली उनके लिए नया शहर था। यहाँ वह जब भी आए एक-दो दिन के लिए आए। कार से आए और कार से चले गए। ज़्यादा से ज़्यादा श्वेता के घर जाते। अक्सर श्वेता ही पति के साथ उन्हें मिलने आ जाती। भाई-बहन मिल बैठते तो अच्छी रौनक लगती। पिछली बातें याद कर-करके दादी की आँखों से आँसू ढुलक पड़े। क्या किया जाए? चिंता में डूब गई। चारों ओर उदासी ही उदासी पसरी है उसी घर में।

ज्योति और आलोक को जब पता चला कि वह दोनों भी साथ नहीं रहेंगे तो वे रात अपने कमरे में फूट-फूटकर रोए। "पहले मम्मी-पापा हमें छोड़ गए। अब हम दोनों भी साथ नहीं रहेंगे। दोनों इतने छोटे हैं हमारी बात कौन सुनेगा" ज्योति ने कहा।

"बच्चे पूरी रात बात करते रहे। दुख और दर्द में सिसकते रहे। मम्मी-पापा की तस्वीर के आगे हाथ जोड़कर आलोक यही प्रार्थना करते लगा कि आप हमें भी अपने पास बुला लो। हम दोनों एक-दूसरे के बिना नहीं रह पाएँगे।" रात रोते-रोते कब बच्चों की आँख लग गई उन्हें पता ही नहीं चला। दादी प्लीज आप हमें बांटो मत। हम एक-दूसरे के बिना जी नहीं पाएँगे। हम जहाँ भी रहेंगे दोनों एक साथ रहेंगे। कहते-कहते ज्योति सिसकियाँ लेने लगी। दादी की आँखें भी भर आईं। उसे लगा, यह तो हम अनजाने में बच्चों के साथ अन्याय कर रहे थे। उनका रोम-रोम कलपने लगा। हम भी कितने बदर्द हैं दादी ने दोनों बच्चों को बाँहों में भर लिया और एक लंबी सांस भरते हुए कहा—"नहीं बच्चों, मैं तुम दोनों को अपने साथ ले जाऊँगी। अभी बूढ़ी हड्डियों में इतनी ताकत है।

नितिन, श्वेता से चार साल छोटा था। "आलोक को हम रख लेंगे मां। आयशा को भाई मिल जाएगा।"

श्वेता रो दी। माँ मुझे निराशा मत करों मेरी झोली में ज्योति डाल दो।

"नहीं श्वेता, बच्चे बांटने की चीज नहीं कि एक नितिन ले और एक तुम। दोनों को मैं रखूंगी। बच्चे जहाँ चाहेंगे वहीं रहेंगे। आगरा या दिल्ली यहीं अपने मकान में अपनी माता-पिता की स्मृतियों के साथ।"

श्वेता फूट-फूटकर रोने लगी और बड़ी कातर दृष्टि से बच्चों की ओर देखा मानो उनसे ही उन्हीं को मांग रही हो। रात बहुत हो गई। श्वेता रात को बच्चों के साथ ही सोई। बुआ की प्यारभरी थपकी बच्चों को माँ की थपकी लगी। नींद में ज्योति ने श्वेता बुआ के आंचल का कोना कसकर पकड़ लिया और बड़बड़ाने लगी—"माँ तुम हमें छोड़कर मत जाओ।"

श्वेता ने डबडबाई आँखों से भैया-भाभी की तस्वीर की ओर देखा। श्वेता को लगा जैसे भाभी कह रही हो हाँ श्वेता अब तुम ही इनकी माँ हो। दोनों की माँ। ज्योति और आलोक अब तुम्हारे बच्चे हैं। सुबह श्वेता उठी नए फैसले के साथ। ज्योति और आलोक साथ रहेंगे। उन्हें कोई अलग नहीं कर सकता। मैं भी नहीं। माँ भी नहीं और नितिन भैया तथा अंकिता भाभी भी नहीं।

कान्दिवली की लड़कियाँ

ममता कालिया

"हाय ऊपरवाली, नीचेवाली, सब पिक्चर चली गयीं। हम भी चलें? आज इतवार है न।" सरला ने शरद की बाँह पकड़कर इसरार किया।

"क्यों, इतवार आते ही पिक्चर जाना जरूरी है क्या?"

"बिल्कुल।"

"इतनी फिल्में केबिल टी.वी. पर देखती हो, पेट नहीं भरता?"

"घर की पिक्चर की मत पूछो। यह कोई देखने में देखना है? कभी बच्चे उठा देते हैं, कभी तुम्हारे दोस्त आ टपकते हैं, कभी बिजली चली जाती है।"

"यह तो तुम्हारी किस्मत है। देखो, कल इतवार है। मैं जी भरकर सोऊँगा। इतवार आना कोई सजा नहीं है जो मैं तीन घण्टे दमघोटू गर्मी में तुम्हारे साथ सिनेमा हॉल में फँसूँ। मैं पिक्चर नहीं जाऊँगा।"

"फिर मैं मंजू को लेकर चली जाऊँ?"

"तुम्हारी अक्ल का दीवाला निकल गया है? बाई के साथ पिक्चर जाओगी?"

"वैसे तो तुम बड़े प्रोग्रेसिव बनते हो। मंजू के साथ जाने में क्या बुराई है?"

"क्या मंजू मेरा विकल्प है?"

"तुम्हें करना कुछ नहीं है, बस बैठे-बैठे बहस।" सरला ने मुँह फुला लिया। शरद बेफिक्र हो गया। यह तय है कि अब सरला मंजू को लेकर भी फिल्म देखने नहीं जायेगी। दरअसल, वह एक फॉर्मूला जिंदगी जीना चाहती है, जिसमें आराम ही आराम है। जड़ आराम। मंगल को व्रत रखेगी, बुध को मठरी बनायेगी, बृहस्पतिवार को फिर व्रत रखेगी, शुक्र को बाँसवाली झाड़ से घर भर के जाले उतारेगी, शनि को पतिदेव से प्यार करेगी और इतवार को, बाप रे बाप, पिक्चर चलने की जिद।

शरद कितने वर्षों से इस फॉर्मूले से बाहर जीने के लिए हाथ-पाँव मार रहा है। उसके लिए नौकरी और विवाह दोनों फॉर्मूलागत मजबूरियाँ रहीं। उसका अलमस्त कलाकार मन लगातार इन दोनों फॉर्मूलों को उलाँककर एक तरोताजा तरंगमय दुनिया में कदम रखना चाहता है। उसके मनोजगत् में इतना कुछ घटित होता रहता है कि कमरे में अपनी प्रिय कुर्सी पर बैठे-बैठे वह पूरे संसार का नेतृत्व सँभाल सकता है। इस काम के लिए उसे किसी नौटंकी नेतागीरी की दरकार नहीं। अगले चुनाव में कौन जीतेगा अगला नाटक कैसे लिखा जायेगा, अगली कला समीक्षा का रुख़ कैसा होगा, बिजली और पानी के संकट का समाधान कैसे हो, इन सब समस्याओं पर उसका अपना मौलिक नजरिया है।

लेकिन सरला को ये सब बातें फिजूल की माथा पच्ची लगती हैं।

ऐसा नहीं कि सरला अच्छी पत्नी नहीं। उसने उसकी समस्त प्राकृतिक जरूरतें पूरी कीं। उसने समय पर दो स्वस्थ सुन्दर बेटों को जन्म देकर इस घर में खुशियों की झड़ी लगाई। वह परिवार के हर संकट में काम आयी। उसके कारण यह घर सुख-समृद्धि से भरा रहा। पढ़ी-लिखी है। हिन्दी के साथ अंग्रेजी का भी बेहतर ज्ञान है, लेकिन उसकी सोच-विचार वही है जो उसकी नानी-दादी या शरद की नानी दादी की रही होगी।

दफ़्तर में स्थिति और भी जानलेवा है। शरद के दायें बड़े बाबू और बायें छोटे बाबू बैठते हैं। इस लिहाज से वह बिचला बाबू है। दफ़्तर पहुँचते ही अक्सर बड़े और छोटे बाबू की 'तू-तू, मैं-मैं' हो जाती है। इसके बाद उन दोनों में शीतयुद्ध जारी रहता है। बड़े बाबू स्पष्टीकरण माँगते हुए मेमो शरद की मेज पर रख देते हैं। शरद मेमो छोटे बाबू की मेज पर सरका देता है। चपरासी बैठा खैनी मलता रहता है। छोटे बाबू जवाब लिखकर कागज शरद की मेज़ पर रख देते हैं। शरद की कोशिश रहती है, उसकी मेज़ पर कोई कागज पड़ा न दिखे। वह कागज बड़े बाबू की मेज़ पर डाल देता है। जब शरद को लगता है, वह और अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकता, वह उठकर फाइल सेक्शन में चला जाता है। वहाँ धूल, मच्छर, गन्दगी और गर्मी है, पर युद्ध नहीं है।

जून में तबादलों की सूची में शरद का भी नाम आ गया। उसे पदोन्नति पर मुम्बई भेजा जा रहा था। शरद का मन झूम उठा। आखिर जड़ता का ताला टूटा तो बड़े बाबू ने जानकार की तरह कहा, "मेडिकल सर्टिफिकेट लगाकर तबादला रुकवा लो।"

शरद ने कहा, "बड़ी मुश्किल से कुएँ में से निकल रहा हूँ। आप मुझे वापस कुएँ में धकेलना चाहते हैं।"

"नयी जगह में नयी मुसीबतें आयेंगी" बड़े बाबू ने कहा, "कुएँ से निकल कर खाई में न पड़ जाना।"

"बड़े बाबू, नयी खुशियाँ भी तो आयेंगी। तबादले से क्या डरना? नयी जगह का डर होता तो सेंट्रल सर्विस में आता ही क्यों?"

मन-ही-मन शरद को लगा, बड़े बाबू उससे जल रहे हैं। आखिर वह मुम्बई की वरली शाखा का डीलिंग क्लर्क होगा, यह क्या कम बड़ी बात है? नयी जगह नये लोग मिलेंगे, नये तजुर्बे होंगे और फिर वेतन भी बढ़कर मिलेगा।

"ख़ाली महँगाई भत्ते का फर्क पड़ेगा" उसके साथियों ने समझाया।"

इससे क्या? तबादले और तरक्की का चोली-दामन का साथ है। अपनी जगह से हिलेंगे नहीं तो आगे कैसे बढ़ेंगे?" शरद ने सबको चुप कर दिया। घर का मोर्चा जीतना दफ्तर से ज्यादा विकट था।

सरला ने समाचार सुनकर कहा, "यहाँ अच्छी-भली कट रही थी, सरकार को भी क्या सूझी?"

शरद चिढ़ गया, "तुम्हारे फॉर्मूले से सरकार नहीं चलती। कोई ख़ासियत देखी होगी मुझमें, तभी तो भेज रही है।"

"कैसे रहोगे वहाँ? तुम्हें तो चाय भी बनानी नहीं आती। यहाँ तो मैं तुम्हें गुड्डे की तरह तैयार करके दफ्तर भेज देती हूँ।"

"तुम मुझे घर का तीसरा मुन्ना मानती हो, यह भी मुझे सख़्त नापसन्द है।

"मेरा तो तुम्हें सब नापसन्द है। दो रोज़ अकेले रहोगे तो पता चलेगा।"

"पिण्ड छूटेगा।" मन-ही-मन कहा शरद ने। ऊपर से बोला, "डार्लिंग जाकर देखने में क्या हर्ज है? तरक्की पर जा रहा हूँ, यह भी तो सोचो।"

"हम लोग भी चलें साथ?"

"पागल हो? यहाँ बच्चे पढ़ रहे हैं, उनका जमा-जमाया स्कूल है। फिर मुम्बई में एक अकेले को ठिकाना तो शायद मिल भी जाय, पूरे लश्कर का इन्तजाम कहाँ से होगा?"

बच्चे शाम को खेलकर लौटे। जब उन्होंने सुना, पापा मुम्बई जा रहे हैं, वे बिसूरने लगे, "पापा, हम भी चलेंगे।" शरद ने अण्टू-बण्टू को घुड़क दिया, "कोई नहीं जायेगा। मन लगाकर पढ़ाई करो। अगर ममी से तुम्हारी शैतानी की ख़बर मिली तो आकर बहुत मारूँगा।"

शरद ने हिसाब लगाकर देखा, घर पर आधा वेतन भेजने के बाद भी उसके हाथ में दस हजार बचेंगे। उसके एक सहकर्मी ने बताया था कि दादर के कोहीनूर लॉज में हजार रुपये में एक बेड भर जगह मिल जाती है। सुबह की चाय और नाश्ता इसमें शामिल है।

शरद ने सरला की सारी दिक्कतें मुँह जुबानी हल कर दीं।

"बच्चों की स्कूल की फीस वे खुद जमा कर दिया करेंगे।"

"बिजली का बिल सोनी साब ले जायेंगे।"

"मकान का किराया बैंक में डाल देना, मैं मित्तल का एकाउंट नम्बर बता दूँगा "बच्चों को विज्ञान पढ़ाने के लिए कोचिंग क्लास में भेज देना।"

नये शहर में अपना रहने का ठिकाना जमाकर शरद ने अपने दफ़्तर पर नज़र डाली। दफ़्तर तकरीबन वैसा ही था जैसा वह अपने नासिक में छोड़ आया था। फर्क था तो इतना कि यहाँ कलह और सुलह इतनी साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ रही थी। तीन महिला कर्मचारी भी थीं– नीरा देसाई, पृथा कुलकर्णी और मारिया डिसूज़ा नीरा और मारिया विवाहित थीं और हमेशा घर जाने की जल्दी में रहतीं। पृथा कुलकर्णी कम्प्यूटर ऑपरेटर थी उसकी नज़र ज्यादातर अपने डेस्कटॉप पर एकाग्र रहती वह ऊँची एड़ी की सैण्डिल पहनती। जब वह ऑफिस के लकड़ी के फर्श पर चलती तो ऐसा मालूम होता कि वह अपनी एड़ियों से फर्श पर 'टक

टक' टाइप कर रही है वह कान्दिवली से आती और लंच में कान्दापोहा लाती।

शरद को यह देखकर धक्का लगा कि दफ्तर में तीनों महिलाएँ पुरुषों की उपस्थिति से तटस्थ और उदासीन थीं। वे मशीनी अन्दाज में नपी-तुली बोली बोलतीं। जहाँ नीरा का

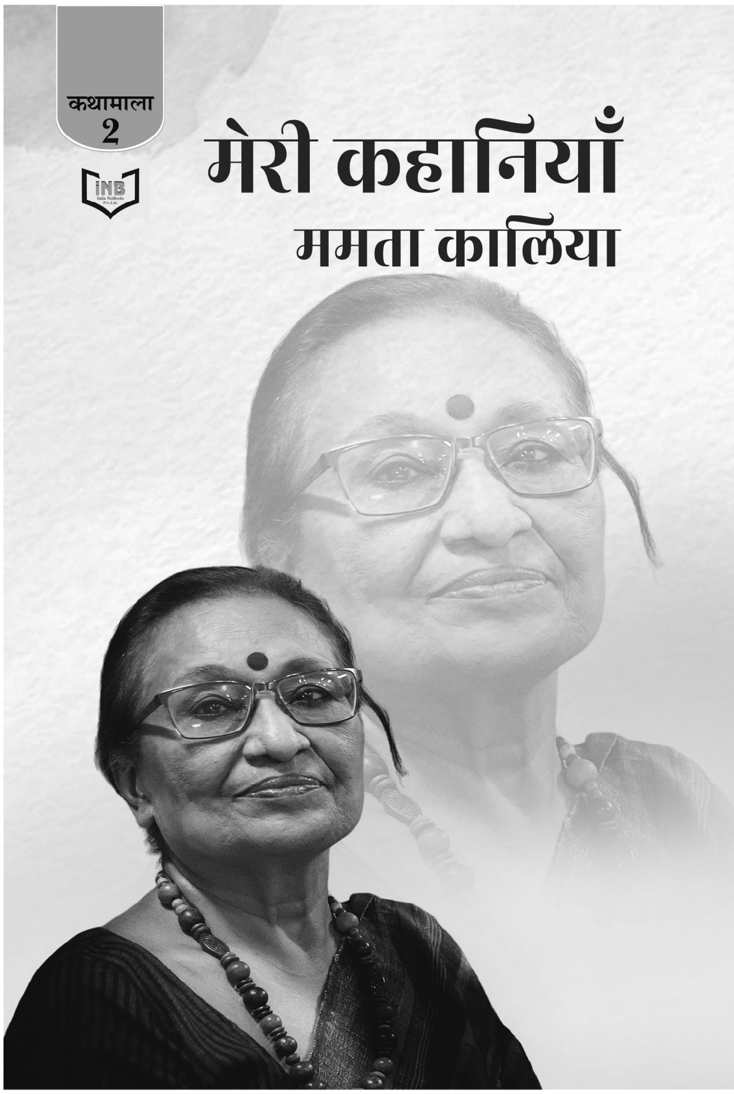

तकियाकलाम था 'साख' (अच्छा) वहाँ मारिया बात-बात में "आई मीन" कहा करती पृथा कुलकर्णी कम बात करती, इसलिए उसके शब्द भण्डार का पता जल्द नहीं लग पाया। वह तो एक दिन उसके सिस्टम में वायरस ढूँढ़ने और निकालने में शरद ने उसकी मदद कर दी तब जाकर उसने नज़रें उठाकर उसे देखा उसने मुँह से धन्यवाद नहीं दिया, मगर उसकी आँखों में आभार छलक रहा था। लंचटाइम पर उसने शरद के पास आकर पूछा, "कान्दापोहा खाओगे?"

"कान्दापोहा क्या?"

"कान्दापोहा मंजे कान्दा पोहा।"

थोड़े दिनों के परिचय के बाद वे वापसी के वक़्त साथ-साथ बाहर निकलने लगे। शरद को अफसोस होता कि उसे लोकल की जगह थी। .बी.एस.टी. की बस में सवार होना पड़ता। एक बार शरद ने पृथा से पूछा, "तुम कहाँ रहती हो?"

पृथा ने हँसते मुख से जवाब दिया, "कान्दिवती में रहती हूँ, कान्दापोहा खाती हूँ"

"कान्दा माने क्या?"

पृथा मुँह पर हाथ रखकर हँस दी, "अइयो, कान्दा मंजे नहीं जानता? कान्दा मंजे अनियन, अनियन।"

"क्या कांदे से ही तुम्हारे गाँव का नाम बना है?" शरद ने पूछा। उसे मुम्बई का इतिहास-भूगोल जानने की उतनी ही हड़बड़ी थी, जितनी पृथा को जानने की।

पृथा ने कहा, "पहले यहाँ खाण्डोली गाँव था। अंग्रेजों ने नाम बिगाड़कर कान्दिवली कर दिया।"

"बहुत दूर है क्या?"

"दूर तो है, पण एक बार लोकल में बैठ जाओ तो देर नहीं लगती।"

"तुम कहाँ रहते हो?"

"यहीं दादर।"

"कितना लकी है न आप। बस-ट्रेन का कोई बांधा

नहीं।"

शरद को पृथा अच्छी लगी। उसे अपना मुम्बई में होना अच्छा लगा। उसे अपना दफ्तर भी अच्छा लगने लगा जहाँ पृथा कुलकर्णी काम करती है।

जब सरला का फोन आता, वह जानना चाहती कि शरद अपने खाने नाश्ते का इन्तज़ाम कैसे कर रहा है। शरद बताता कि जिस लॉज में वह रहता है, वह थोड़े और रुपये लेकर हर सुविधा जुटा देता है। शरद कहता" बस, तुम्हारे सिवा और यहाँ कोई कमी नहीं है।"

सरला सुनकर निहाल हो जाती।

बहुत जल्द इंटरनेट और परिचितों की मदद से शरद ने कान्दिवली के बारे में अनेक तथ्य इकट्ठे कर लिए। उसने शुक्रवार को कहा, "पृथा, कल शनिवार है। मैं कल तुम्हारी कान्दिवली में एम.जी. मार्ग पर काले मारुति को देखने आऊँगा। उसका चारों तरफ बड़ा प्रताप फैला हुआ है।"

"तुम बड़ी मुश्किल हिन्दी बोलता, पण तुम आना।"

शरद हिन्दी भाषी था। उसे अपनी भाषा के लिए अक्सर यह टिप्पणी सुनने को मिलती। नासिक में भी मराठी का बोलबाला था। मुम्बई में सभी भाषाएँ सुनने को मिल जातीं। कोहेनूर लॉज भी एक तरह का मिनी भारत था। उसके बगल के बेडवाले निरंजन वागले ने ही उसे बताया था कि कान्दिवली में काला मारुति मन्दिर में एक काला पण्डित रहता है जो घोड़ों की रेस का नम्बर एकदम सही बताता है। शनिवार को उससे मिलो तो ज़्यादा अच्छा रहता। उसने कहा, "अक्खा हिन्दुस्तान में उससे असरदार पण्डित नहीं होगा।"

शरद की मन्दिरों और पण्डे पण्डितों में कोई आस्था नहीं थी, लेकिन उसने वागले की बात का अनुसन्धान करने का मन बनाया तो सिर्फ इसलिए कि उसके दिमाग़ पर आजकल कान्दिवली छायी हुई थी। जिज्ञासा का दूसरा बिन्दु यह भी था कि सारी दुनिया में सिन्दूर पुते लाल हनुमान स्थापित नज़र आते हैं, यह काले हनुमान का क्या चक्कर है?

शुक्रवार की रात बेचैनी में कटी। कल वह क्या कपड़े पहनेगा, कौन-सा डियो लगायेगा से लेकर उसके ख़्यालों में यह भी था कि उसे वहाँ पहुँचकर पृथा को मिस्ड कॉल देनी है। पृथा ने बताया कि शनिवार को उसके कामकाजी भाई-भाभी घर में होते हैं और उन्हें फोन पर फालतू की बातचीत बिल्कुल गवारा नहीं।

सुबह पौने चार बजे उसे नींद आयी। जब वह सोकर उठा, नौ बज रहे थे। चाय का वक़्त ख़त्म हो चुका था और नाश्ता भी साढ़े नौ के बाद मिलना असम्भव था। शरद ने डाइनिंग हॉल में जाकर जल्दी से दो स्लाइसों पर मिक्स्ड फ्रूट जैम लगाया और खाते-खाते वापस अपने बिस्तर पर आ गया। वागले अपने बिस्तर पर नहीं था। वह या तो नहा रहा था या नहा-धोकर कहीं निकल गया था। यह विचित्र था कि शनिवार या इतवार, कोई भी रहवासी दिन में बिस्तर पर लेटा रहना पसन्द नहीं करता था। भले ही वह जाकर शिवाजी पार्क के समुद्री मैदान में वक़्त काटे या दाना चुगते कबूतरों को देखने में घण्टों बरबाद करे, वह लॉज के बिस्तर पर से गायब रहता।

लोकल ने बड़ी जल्द शरद को कान्दिवली स्टेशन पर ला पटका। स्टेशन के अगल-बगल सजी दुकानों से अच्छा खासा मार्केट बना हुआ था। शरद ने सोचा, वह वापसी में यहाँ से सरला और बच्चों के लिए कुछ सस्ते, मगर अच्छे कपड़े ख़रीदेगा।

ऑटो में महात्मा गाँधी मार्ग पर जाते हुए शरद को खुशी हो रही थी कि उसके शरीर पर ऐसा कोई चिह्न नहीं था जो दर्शाये कि वह विवाहित है। क्या होता अगर स्त्रियों की तरह पुरुषों के लिए भी मंगलसूत्र पहनना अनिवार्य होता। अब तो कुछ लोगों में एक अँगूठी भर का चलन है, वह भी अनिवार्य नहीं ऐच्छिक है। शरद ने शादी पर दी अँगूठी की रस्म नकार दी। उसने अँगूठी सरला को दे कर कहा, "यह भी तुम्हीं पहनो, मुझे तबालत लगती है।"

शरद छह फुट का सुन्दर-स्वस्थ नौजवान था। स्कूल के दिनों में कबड्डी और कॉलेज के दिनों में कसरत से उसके शरीर में कसाव और चुस्ती बनी हुई थी। उसे अपने डील-डौल पर थोड़ा गुरूर भी था।

मन्दिर के आगे कारों, स्कूटरों की बेतरतीब भीड़ थी। लगता था, यहाँ निःशुल्क पार्किंग है अथवा सब भगवान

भरोसे अपनी गाड़ी छोड़कर अन्दर चले गये थे। मन्दिर की ऊपरी मंजिल में, काले-चिकने चट्टानी पत्थर से तराशे गये हनुमान की प्रतिमा भगवान की कम, पहलवान की ज्यादा लग रही थी। अनुपम केवल वह सफेद सिल्क के फूलों का हार था, जो विलोम होने के साथ विलक्षण भी था। वातावरण में चन्दन के साथ कुछ सस्ती सुगन्ध की अगरबत्तियाँ भी गन्धायित थीं। गर्भगृह से सटे हुए कक्ष में काले मारुति समान ही आबनूसी चेहरेवाला एक व्यक्ति मस्तक पर टीका धारण किये, शुभ्र धोती कमीज में अपने पॉजिटिव का नेगेटिव दिखाई दे रहा था। यह यहाँ का पण्डित था। उससे मिलनेवाले लोग एक गोल घेरे में बैठे हुए थे। सभी समृद्ध और विशिष्ट नज़र आ रहे थे। शरद ने देखा, हर आदमी उठकर उनके पास जाता, कान में कुछ खुसफुस मन्त्रणा करता। पण्डित आँख बन्द कर चौथाई मिनट ध्यान करता, फिर हाथ की उँगलियों से कोई संख्या बताता। आगन्तुक उन्हें साष्टांग प्रणाम करता और उनके सम्मुख रखे दानपात्र में कई नोट ठूंस देता। पण्डित पास रखी लुटिया से एक घूँट जल पीकर अगले आगन्तुक को इशारा करता। "इसकी प्रैक्टिस अच्छी चल रही है," शरद ने मन में सोचा। वह बाहर प्रांगण में निकल आया। उसे कुछ पूछना नहीं था। तभी उसे दूर से पृथा कुलकर्णी आती दिखाई दी। वह यह देखकर निराश हुआ कि वह खरामा-खरामा पैदल चली आ रही थी। उसके चेहरे पर मित्र मिलन की कोई उत्कण्ठा या उत्साह नहीं दिखा। दरअसल, यह काफी मामूली किस्म की लड़की है, शरद को लगा और उसका अहम् इस बात से प्रसन्न हुआ कि यह शरद की उदारता है कि वह पृथा को अपनी मित्रता का अवसर प्रदान कर रहा है।

आते ही पृथा ने पूछा, "देवदर्शन झाला क्या?"

"वॉट इज झाला? शरद हँसा।

पृथा ने माथे पर हल्का-सा हाथ मारा, "देवा रे देवा, झाला नहीं समझते क्या? झाला मंजे हुआ।"

"हुआ, हुआ, अब यहाँ से निकल चलें?"

पृथा ने यकायक कहा, "रघुलीला में नयी पिक्चर आयी है, चलो चलते हैं।"

शरद को धक्का लगा। उसे पिछले शहर और अपनी शरीकेहयात का ध्यान आ गया। इस पिक्चर नाम के बवाल पर उसने कितनी बार पत्नी का दिल तोड़ा था। उसने भरसक ठण्डेपन से कहा, "तीन घण्टे पिक्चर में चुपचाप बैठकर क्या करेंगे? इससे अच्छा है, मॉल में घूमें। तुम्हें पसन्द आये तो मैं तुम्हें कोई गिफ्ट देना चाहूँगा।"

"न बाबा, मेरा भाई दस सवाल पूछेगा, कौन दिया, कायको दिया? मेरे को झूठ बोलना अच्छा नहीं लगता।"

"ओके, न सही गिफ्ट, ऐसे ही मॉल में घूमेंगे। कॉफी पियेंगे। पिज्जा भी खा सकते हैं।"

"आई हेट प्रिाा। कॉफी तो रघुलीला में भी मिलेगी।"

मजबूरन शरद को पिक्चर जाने पर राज़ी होना पड़ा। पी.वी.आर. की पाँच सौ रुपये की दो टिकट ख़रीदने पर शरद को कष्ट हुआ। नासिक में इतने पैसों में दो फिल्में देख सकते थे, लेकिन वहाँ गर्लफ्रेण्ड कहाँ मिलती?

पी.वी.आर. में 'पी.के.' लगी हुई थी, शरद की देखी हुई। शरद ने कहा, "यह तो मेरी देखी हुई फिल्म है।"

"तो क्या? मैंने भी दो बार देखी। बहुत मस्त मूवी है।"

उन्हें काफी पीछे कोनेवाली कुर्सियाँ मिलीं तो शरद खुश हुआ। पृथा ने बैठते ही उचककर कहा, "अरे पॉपकॉर्न तो लाये ही नहीं।"

शरद पॉपकॉर्न लेने बाहर बरामदे में आया। सादा पॉपकॉर्न सत्तर रुपये का था और मसाला पॉपकॉर्न एक सौ बीस का। शरद ने सादे पॉपकॉर्न का एक ठोंगा खरीदा।

पृथा ने बड़ी उमंग से पॉपकॉर्न दोनों के बीचवाले खाने में फँसाया और एक मुट्ठी भरकर बोली, "अब आयेगा पिक्चर का मजा।"

ताज्जुब कि दो बार देखी हुई 'पी.के.' पृथा इतनी तल्लीनता से देख रही थी जैसे पहली बार हो जबकि शरद के अन्दर इन्तज़ार, ऊब और बेचैनी तूफान उठाये हुए थीं। एक फीलिंग उसका फोकस गड़बड़ा रही थी। बार-बार उसे लग रहा था, वह नासिक के नॉवेल्टी थिएटर में सरला के साथ बैठा हुआ है। वह अपना चश्मा साफ करता और वर्तमान में लौटता। जब पृथा अपना हाथ पॉपकॉर्न लेने को ठोंगे में डालती, उसी समय वह भी अपना हाथ पॉपकॉर्न लेने के लिए बढ़ाता। पृथा विद्युत गति से अपना हाथ हटा लेती।

वह एक-दो पॉपकॉर्न उठाकर हाथ बाहर निकाल लेता। पृथा फिर, मुट्‌टी भर पॉपकॉर्न निकालकर अपनी नज़र स्क्रीन पर टिका देती और 'पी.के.' की हरेक हरकत पर हँसती जाती। कुढ़ जाता शरद। कितने पिटे हुए लतीफों पर हँस रही है पृथा। इसका बुद्धिविकास अवरुद्ध है शायद। अगली बार फिर यही हुआ। पृथा ने जैसे ही पॉपकॉर्न के लिफाफे में हाथ डाला, शरद ने भी अपना हाथ फँसा दिया। एक बार भरपूर स्पर्श हो गया। "सॉरी", पृथा ने कहा और बिना पॉपकॉर्न लिए अपना हाथ अलग कर लिया।

शरद ने उसकी मुट्‌ठी में पॉपकॉर्न देना चाहा। उसने नहीं लिया।

"बस।" पृथा ने हाथ के इशारे से कहा।

तभी मध्यान्तर हो गया।

शरद ने कहा, "मैं तो बोर हो रहा हूँ। इससे इच्छा है कहीं बाहर बैठें।"

"मैं अभी आयी," कहकर पृथा तेजी से बाहर की तरफ लपकी। उसकी रफ़्तार देखकर शरद को लगा, उसे वॉशरूम जाने की जरूरत है।

मध्यान्तर नाममात्र को था। अभी उठनेवाले वापस आकर कुर्सियों पर बैठे भी नहीं थे कि 'पी.के.' फिर शुरू हो गयी। पृथा उतनी ही रफ्तार से वापस आयी। अँधेरे में टॉर्च की रोशनी के सहारे वह अपनी सीट पर पहुँच गयी।

उसके हाथ में पॉपकॉर्न का एक और ठोंगा था। उसने पहलेवाले अधभरे ठोंगे में नये ठोंगे से थोड़ा पॉपकॉर्न उँडेला और उसे शरद को देकर इशारे से कहा, "इसे अपने सीट के गोल छेद में रखना।" नये पॉपकॉर्न का ठोंगा वह अपनी सीट के गोल खाने में फँसाकर एक बार फिर पॉपकॉर्न और पी. के. का आनन्द लेने लगी। शरद को इस बार पॉपकॉर्न बेस्वाद लगी। उसे 'पी.के' भी बेस्वाद लग रही थी।

'पी.के.' ख़त्म होने से दस मिनट पहले पृथा ने कहा, "चलो, बाहर निकल चलें।"

"छुट्‌टी मिली" के भाव के साथ शरद उठ दिया। 'रघुलीला' में ही बड़ा-सा फूडकोर्ट बना हुआ था। पृथा बोली, "मैं तुमको ट्रीट देगी। कान्दापोहा और कॉफी चलेगा न?"

"रोज कान्दापोहा खाकर पेट नहीं भरा क्या?" शरद ने शरारत से कहा।

"अरे नहीं शरद जी, अगर आप आकरा (ग्यारह) जगह कान्दापोहा खायेगा, आपको आकरा तरह का स्वाद आयेगा। अपना-अपना हाथ का अलग टेस्ट होता।" पृथा ने जानकार की तरह बताया।

वाकई 'रघुलीला' में कान्दापोहा की प्लेट में कान्दा और वटाना (प्याज और मटर) के साथ-साथ काजू-किशमिश भी पड़े हुए थे। स्वाद अलग था।

अचानक पृथा ने पूछा, "आप अपना फैमिली कभी लाते शरद जी?"

"फैमिली?" शरद ने अबूझ उत्तर दिया।

"मंजे बीवी-बच्चा लोग। ले आइए न। इधर कान्दिवाली में कई नये मकान ख़ाली पड़े हैं। मैं एजेंट से बात कर लूँगी।"

शरद कुछ शर्मसार-सा हो गया। उससे कहते न बना, "कैसी फैमिली, किसकी फैमिली?"

उसे बड़ी जोर से यह चेतना आयी कि पृथा जैसी कम्प्यूटर ऑपरेटर के लिए उसका स्टेटस ढूँढ़ निकालना कोई मुश्किल नहीं रहा होगा।

पृथा ने काउंटर पर जाकर बिल चुकाया। शरद अभी विचलित ही था।

हालाँकि अँधेरा हो चुका था, पृथा के चेहरे पर घर जाने की कोई हड़बड़ी नहीं थी। औपचारिकता में शरद ने मरी-मरी जुबान में कहा, "मैं तुम्हें छोड़ने घर चलूँ?"

"नको-नको, मैं चली जाऊँगी। घर नगीच ही है।"

"आजकल सड़क पर खतरा रहता है।"

"मैन, ख़तरा तो हर जगह रहता है। अपन ने कराटे सीखा है तो किसलिए?" पृथा ने कहा और पूरे आत्मविश्वास से 'रघुलीला' से बाहर निकल ली।"

"तुमको ऑटो माँगता क्या?" वह शरद से पूछ रही थी। "मैं आगे जाकर बस पकड़ेंगा।" शरद ने कहा और दायीं तरफ मुड़ गया।

चलते-चलते शरद ने पाया कि फॉर्मूलों से बाहर निकलना आसान नहीं होता है।

सुनो मधुमालती

नीरजा माधव

रात है। धुँधली-सी याद की तरह। वह लड़की है। बिल्कुल साफ, चटक, मधुमालती के सफेद नन्हें खिले फूल की तरह। मधुमालती की एक विशेषता होती है। सूरज की रोशनी में उसके फूल गुलाबी रंगत ले लेते हैं तो रात होते ही वे अनगिनत चाँदनी के पुष्प बन जाते हैं। सफेद, तारों की तरह, अँधेरी हरी पत्तियों के बीच टिमटिमाते हुए। उस लड़की की आँखें भी टिमटिमा रही हैं। अरुन्धती अपने साथी तारों के साथ उसकी आँखों में उतर आई है। वह लड़की गुनगुना रही है, अपनी माँ का गीत—मोरे पिछवरवा लवगिया का गद्दिया, लवंग चुवै सारी रात, नाजो का सोहाग बढ़े। लवंग की ठंडी सुरभि उसके चारों ओर हवाओं में घुल रही है। वह मुस्कुरा रही है। एक मीठी मुस्कुराहट। उसकी उँगलियाँ ढोलक पर थाप देने की मुद्रा में नृत्य कर रही हैं।

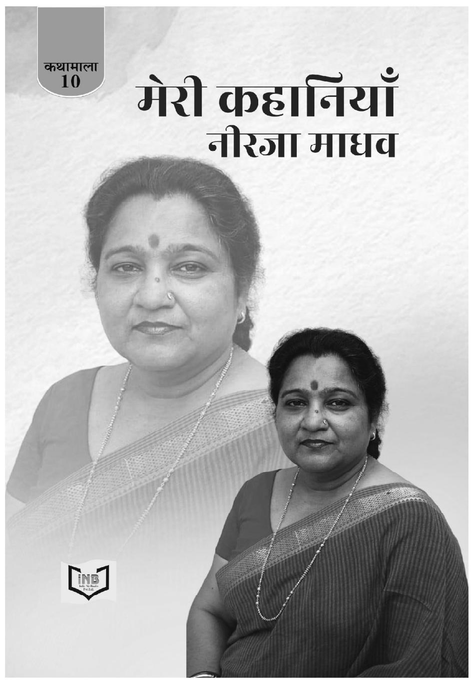

मैं उसे गीत के बीच से खींचकर बाहर लाना चाह रही हूँ, पर वह चुपके से अपनी बाँह छुड़ा कुलाँचे भरती माँ के आगे-आगे दौड़ पड़ी है। गोतिन के यहाँ विवाह पड़ा है। रात में सोहाग गाने के लिए गाँव-भर की औरतें इकट्ठा हैं। ये सभी औरतें एक-दूसरे की गोतिन हैं। रिश्ते में देवरानी-जेठानी या सास-ननद भी हो सकती हैं, पर कार-परोजन में ये सभी गोतिन-दयादिन हो जाती हैं। उस लड़की को अच्छा लगता है माँ के साथ गोतियाउर करना। रात में बाबूजी की आँख बचाकर दूसरे के घर सोहाग गाने जाना। माँ को गर्व होता है कि उनकी लड़की के अलावा गाँव की किसी लड़की को सोहाग पर ढोलक बजाना नहीं आता। यह शऊर तो बस उसी लड़की में है। कई बार उसकी ढोलक के थाप पर नाचने के लिए खड़ी हुई किसी गोतिन की भोंडी मुद्रा पर ठहाकों से रात का गझिन सन्नाटा टूट जाता है। उस समय लड़की की उंगलियाँ ढोलक पर और तेज थाप देने लगती हैं। उसकी अपनी हँसी हथेलियों की गति बढ़ा देती है। जैसे बढ़ती जाती है यादों की तीव्रता, समय के साथ। यादें, जो कभी साथ नहीं छोड़तीं। नवजात, वह भी नींद में कभी हँसता है तो कभी ओठों को रोने की मुद्रा में सिकोड़ता है। वह लड़की भी अपने नये-नये पैदा हुए भाई को नींद में बिदुर काढ़ते देख माँ से पूछ रही है—

"ये क्यों रो रहा है?"

"इसे सपना आ रहा है।" माँ अपने आँचल को सँभालते हुए बोल रही।

"किसकी याद आ रही है?" लड़की की जिज्ञासा लम्बी हो उठी है।

माँ को कल्पना करनी पड़ी है। उस लड़की को कहानी के बिना बात समझ में नहीं आ सकती। चटपट वह एक लघु कहानी सुना देती हैं— इसे अपनी पहले जन्म वाली माँ याद आ रही हैं सपने में। भगवान इससे मजाक में कहते हैं कि तुम्हारी माँ मर गई तो यह बिदुर काढ़कर रोने लगता है और तुरन्त ही भगवान कह देते हैं कि नहीं, नहीं, तुम्हारी माँ जिन्दा है, तो यह नींद में ही हँसने लगता है।

बचपन में सुनी वह कहानी आज तक याद है इस लड़की को। स्मृतियाँ मृत्यु से प्रारम्भ होकर मृत्यु तक जाती हैं। मैं इसे स्मृति में नहीं जाने देना चाहती। नहीं तो यह फिर डूब जायेगी आँसुओं में। इसका पति जो फौज में कर्नल

था अब नहीं है। बहुत प्यार करता था इसे। बी.ए. में ही पढ़ती थी, तो पिताजी ने विवाह कर दिया। अच्छा घर-वर पा वह भी तो बहुत खुश थी। एक दिन रात में गोति ने सुहाग गा रही थीं तो वह रोक न सकी थी अपने को। ढोलक की थाप पर ठुमक उठी थी। साथ की सहेलियाँ जल उठीं थीं उसके भाग्य पर। गोति ने आश्चर्य से एक-दूसरे की आँखों में देख व्यंग्य से हँस पड़ी थीं। ऐसे भी कोई नाचता है अपने ही ब्याह में? लाज-हया तो रह ही नहीं गया आज के जमाने। पर उस लड़की को कहाँ फिक्र किसी की! अपने में मस्त। उसका यही खिलन्दड़ा स्वभाव तो उसके फौजी पति को बहुत अच्छा लगता था। उसे तो भगवान ने अनमोल सौगात दे दी थी इस लड़की के रूप में। पर भगवान को कुछ और ही स्वीकार था। पिता ने उसका एडमिशन फिर से करवा दिया था। ताकि उसका मन लगा रहे किसी ओर। आर्थिक स्थिति ठीक न होते हुए भी उन्होंने इस लड़की को कड़वी स्मृतियों से दूर रखने के लिए पढ़ने के लिए भेज दिया था। पिता भीतर ही भीतर विवाह के अपने निर्णय पर क्षुब्ध थे। इतनी जल्दी न करते तो उस लड़की को ये दिन न देखना होता। पर करते क्या? हानि, लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ। मैं डरकर इस लड़की को स्मृतियों से बाहर लाना चाहती हूँ। इसे कोई नाम देना चाहती हूँ। आप भी इसे किसी नाम से पुकार सकते हैं— चम्पा, जूही, लिली, गंगा, सृष्टि या कुछ भी। मैं इसे मधुमालती ही पुकार लेती हूँ। एक प्रतीक ही तो होते हैं नाम भी। पहचाने जाने के लिए जरूरी। मधुमालती को भी पहचाना जाता है। अपनी हास्टल की दोस्तों के बीच वह एक गाने-बजाने वाली मस्त लड़की के रूप में है, पर रात के एकान्त में चुपचाप अपनी किताबें खोल शान्त होकर पढ़ाई करने वाली भी। मधुमालती की तरह ही दिन-भर गुलाबी चंचलता ओढ़े, रात होते ही स्निग्ध चाँदनी की तरह शान्त और रहस्यमयी। अपनी स्मृतियों में दौड़ लगाती किसी हिरनी की तरह।

ऐसी ही किसी रहस्यमय और शान्त-सी रात में मधुमालती अपनी फैलती सुगन्ध को बटोरकर खड़ी हो जाती है मेरे सामने चुपचाप। मुझसे कुछ फुसफुसाती-सी। धुँधली सी पुरानी यादें, पर साफ-साफ याद हैं मुझे। वह लड़की हास्टल में नाच रही है। अपनी कई दोस्तों के साथ। माँ का गाया चहका गीत। होली की हुड़दंग में वह खिलन्दड़ी तितली की तरह इठला रही है। गर्ल्स हॉस्टल के बड़े से कॉमन रूम में सब ठुमक रहे हैं। चहका के बोल समवेत स्वर में गूँज रहे हैं, पैजनिया हमारी झमक बाजे पैजनिया। मधुमालती की देह भी मद्धिम हवा के झोंके संग हिलती कोमल लता की तरह डोल रही है। रह-रहकर वह कोने में पड़ी टूटी मेज पर ढोलक के थाप दे आती है। एक जोश भर जाता है लड़कियों में। तालियाँ लय में बजने लगती हैं। यह जश्न है होली में घर जाने से पहले हास्टल वाली होली का। रंग अबीर से सबके चेहरे रंगे पुते मधुमालती के लिए इसमें कई और रंग घुले-मिले हैं। नहीं, प्रेम का नहीं। एक दूसरी छोटी सी खुशी का। उसे ट्यूशन पढ़ाने का काम मिल गया है। किसी सामान्य परिवार में नहीं। राजघराने की युवरानी को ट्यूशन पढ़ाना है। आजादी से पहले सचमुच के राजा। उसे जरूरत है पैसों की। कुछ महँगी किताबें, जिन्हें वह अपने पॉकेट खर्च से नहीं खरीद पाती। बाबूजी से हॉस्टल खर्च के अतिरिक्त और अधिक माँगने में संकोच होता है। कहाँ से लायेंगे बेचारे? वह खुशी से इतरा रही है। उसके विभाग के एक प्रोफेसर ने उसका नाम राजघराने में भेजा था। राजा साहब पुराने जमाने के महाराज। युवरानी को इन्टरमीडिएट की परीक्षा दिलानी थी। अपना ही कॉलेज है पास में। पढ़ने भले न जाएँ पर परीक्षा देने तो जाना ही पड़ेगा। हाथी, घोड़ा, पालकी की आदत अभी भी पूर्ववत्।

युवरानी को पढ़ाने के लिए कोई संस्कारिक लड़की ही चाहिए। प्रोफेसर साहब ने मधुमालती का नाम दे दिया। मधुमालती बहुत खुश है। वह राजघराने की 'कुलगुरु' बन गई है। भले ही कुछ महीनों के लिए। संकोच में ट्यूशन फीस नहीं पूछ पाई। अब राजा खानदान है तो सामान्य से अधिक तो होगा ही। फिर कौन बहुत दूर जाना है। हास्टल के पीछे बहती नदी और उस पर बने पीपा वाले फल को पार करते ही राजा साहब का किला है। दो घण्टे में आना-जाना और पढ़ाना, सब हो जायेगा। बस, अंग्रेजी ही तो पढ़ाना है। अपनी क्लास भी नहीं छूटेगी।

मधुमालती बहुत खुश। पहले ही दिन किले में पहुँची

तो उसकी भेंट महाराज जी से हुई। युवरानी के पास तक पहुँचने से पहले उस ट्यूशन वाली लड़की का इन्टरव्यू होना जरुरी जो था। मधुमालती का हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। डर और खुशी दोनों मिश्रित। जैसे मधुमालती के फूलों की गुलाबी और सफेद दोनों रंगत। राजमहल के गेट पर खड़ी युवरानी की दासी उसे लेकर महाराज के कक्ष में पहुँची थी। चारों तरफ शीशमहल की आभा। शीशे का इतना महीन काम तो उसने किसी फिल्म में नहीं देखा था। चारों ओर मधुमालती ही फूलों की तरह झिलमिला उठी। एक ओर नक्कासीदार आसन पर महाराज जी विराज रहे थे। दासी ने प्राचीन चिर अन्दाज में राजा साहब को सलाम ठोंका और दरवाजे के पास खड़ी हो गई। राजा साहब की संस्कारिक आँखें मधुमालती से प्रश्न पूछ रही थीं। कुछ देर बाद उनके ओंठ भी लरजे जैसे गुफा के ऊपर उढ़के दो पत्थर किसी ने हटा दिये हों।

"संस्कृत भी जानती हो?"

"जी हाँ, थोड़ा-थोड़ा। बी.ए. में था।" मधुमालती उनकी आवाज से सहम उठी।

"हूँ। युवरानी को हिन्दी भी पढ़ा सकती हो?"

"जी, पढ़ा दूँगी।"

राजा साहब ने दासी को संकेत किया तो वह मधुमालती को अपने साथ लेकर युवरानी से मिलाने चल दी।

कितनी खुश थी वह लड़की। हिन्दी भी पढ़ायेगी वह युवरानी को। दोहरी फीस, दोहरी खुशी। मैं हैरान-सी देख रही हूँ उस खिलन्दड़ी लड़की को। सामान्य लड़कियों की तरह क्यों नहीं सोच पाई वह? फिल्मों के खलनायक की तरह कहीं राजा उस पर झपट्टा मार देता तो? कपड़े फाड़ देता तो? अकेली ही तो गई थी वह नदी पार कर। किले की छत से फेंक देता नदी में तो? पर वह मुस्कुरा रही है, थिरक रही है। होली के बहाने अपनी इस छोटी-सी सही, खुशी को भी उत्सव की तरह साझा कर रही है वह। डिजर्टेशन में टाइपिंग आदि पर लगभग तीन-चार हजार रुपये खर्च होने हैं। बाबूजी पर अतिरिक्त भार वह नहीं डालेगी। उनके ऊपर पूरे परिवार के खर्च की जिम्मेदारी है। वह टयूशन फीस से अपना यह खर्च निकाल लेगी।

हॉस्टल में लड़कियों का होलियाना मूड परवान चढ़ रहा है। सब मिलकर लगभग चिल्लाने वाले बेसुरे अन्दाज में चहका गा रही हैं— मोरे सेजिया से उड़ गये दुइ कागा, मोर सइयाँ अभागा ना जागा। कुछ ताली पीटकर इस गाने पर हंस रही हैं। मनुष्य अत्यन्त आखलाद के क्षणों में अपनी मिट्टी, अपनी लोक संस्कृति से ही जाकर जुड़ता है। यह चहका भी पूर्वांचल की मिट्टी का एक लोकप्रिय गीत है। लड़कियों के बहाने भारत का दक्षिण, पश्चिम, उत्तर भी जुड़ रहा है इस मिट्टी से। थिरकने के लिए बस एक धुन चाहिए। बोली भले न समझ में आए। हॉस्टल की सभी लड़कियाँ चाहे वे केरल, पंजाब, गुजरात या जम्मू की हैं, इस गाने की धुन पर थिरक रही हैं। मधुमालती भी नृत्य की मुद्रा में गोल-गोल घूम रही है। इस गोल भँवर में उसका अतीत डूब गया है। वह खुश है। नाच रही है। वार्डन के गुस्से की परवाह किसी को नहीं है। मेस के मैनेजर और रोटियाँ सेंकने वाली महराजिन भी कॉमन रूम के दरवाजे पर खड़े होकर यह दृश्य देख रहे हैं। उनके मुँह हँसी की मुद्रा में खुले हुए हैं। मधुमालती ने उन दोनों को पकड़कर भीतर खींच लिया है और अपने दोनों हाथों से उन्हें थामकर नृत्य करवा रही है। मेस मैनेजर मोटा-सा अधेड़ आदमी है। वह शरमा रहा है लड़कियों के बीच नाचने में। रजेसरा महराजिन विधवा हैं, बूढ़ी हैं। अपनी सफेद साड़ी सँभालते वे मधुमालती का मन रखने के लिए दो ठुमके लगा रही हैं और लजाकर फिर से दरवाजे के बीच खड़ी हो गईं। लड़कियों का एक जोरदार ठहाका। रजेसरा महराजिन लाज से दोहरी हुई जा रहीं।

मधुमालती की आँखों में उम्मीद की एक बढ़ी हुई नदी लहरा रही है। उसे याद आ रही हैं युवरानी, जिसे पहले दिन पढ़ाते हुए वह लगातार उनके शरीर पर जगमगाते गहनों को कौतूहल से निहारती रही थी। पहले ही दिन युवरानी ने यह भी बताया कि वे एक अधिकारी की बेटी थीं और राजघराने में विवाह तय होने के बाद बहुत प्रसन्न थीं, पर अब यह सब उन्हें वैफदखाने जैसा लगता है। कहीं बाहर निकलकर आजाद घूमने-फिरने का उनका भी मन करता है, पर राजघराने में यह प्रथा नहीं है। वे किले की छत पर दासियों के साथ चिब्बी-डाड़ी खेलती हैं। मधुमालती मुस्कुरा उठी।

रानियाँ भी उसकी तरह ही होती हैं। वैसे ही खेल खेलती हैं, जैसे वह। पर वह बन्धन में नहीं है, युवरानी बन्धन में हैं। उसे युवरानी पर तरस आया।

"कभी बाहर खाने का मन हो, जैसे होटल-वोटल?" वह पूछ बैठी।

"नहीं, घर में ही बनवाकर खाना है। खाना बनाने वाला महाराज आकर पूछ जाता है। क्या खाने का मन है?"

युवरानी उदास थी। मधुमालती भी उदास हो गई उनकी बेचारगी।

उस लड़की ने एक दिन पूछ लिया–

"क्या पसन्द है? मैं बाहर से खरीद कर लेती आऊँगी।"

"नहीं, बाहर वाचमैन देख लेगा तो बड़े दाऊजी से कह देगा।" युवरानी भोलेपन से बता रही थी। सभी राजा साहब को बड़े दाऊजी ही फकारते हैं।

"मैं अपने बैग में ले आऊँगी। वॉचमैन मेरा बैग नहीं देता।"

"अच्छा तब मेरे लिए रसमलाई ले आइएगा। महाराज अच्छा नहीं बना पाता।"

दूसरे दिन रसमलाई खरीदने के लिए उसने अपनी रूममेट से डेढ़ सौ रुपये उधार लिये थे और श्रीराम मिष्ठान से रसमलाई पैक करवाकर राजमहल पहुँची थी। उसकी आँखों में युवरानी को प्रसन्न कर पाने की खुशी थी। रूममेट को पैसे तो वह ट्यूशन फीस मिलते ही वापस कर देगी। राजघराने की कुलगुरु है वह। फिर एक मुस्कुराहट तैर गई है लड़की के ओठों पर। सामान्य परिवारों की तरह दो चार सौ रुपये थोड़े ही देंगे राजा साहब। इतना तो देंगे ही कि उसके डिजर्टेशन का पूरा खर्च निकल आयेगा। कुछ पैसे बच जायेंगे, तो माँ के लिए एक वॉयल की ही सही, साड़ी खरीदेगी। माँ कितनी खुश होगी।

उस दिन भी उस लड़की की आँखों में वही उम्मीद तैर रही थी, जब तीन महीने ट्यूशन पढ़ाने के बाद वह अन्तिम बार युवरानी से गुडबॉय करके आ रही थी। बाहर राजा साहब के सचिव खड़े थे। उन्होंने एक पॉलिथिन बैग उसे पकड़ाते हुए लिफाफा हथेली पर रख दिया।

"ये तीन महीने की ट्यूशन फीस।"

"जी।" उसका मन चंचल हो रहा था लिफाफे के भीतर ताक-झाँक करने को।

"और ये आपके लिए एक सूट का कपड़ा। युवरानी जी जयपुर गईं थीं, तो आपके लिए ले आईं थीं।"

"जी।" उसने चोर निगाहों से पॉलिथिन में से झाँकते नारंगी और हरे रंग के दो कपड़े देखे थे। कन्ट्रास्ट कलर। ओह, कितना सुन्दर लगेगा सिलकर क्षणभर के लिए कर्नल पति की स्मृति आकर उसे छूते हुए निकल गई। यह रंग पसन्द था उन्हें। नदी के ऊपर बने पीपे के पुल से उस लड़की की आटो गुजर रही थी और उसने अन्य संवारियों की आँखें बचाकर लिफाफे के भीतर झाँका। एक पाँच सौ और एक सौ रुपये की नोट दिखाई पड़ी। उसने सावधानी से फिर देखा। कहीं पॉलिथिन में गिरे तो नहीं हैं? छः सौ रुपये ही थे। उसकी आँखें में तैरती उम्मीद एकाएक नदी की उफनती लहरों में कूद कर आत्महत्या कर बैठी थी। मैं बेचैन हो उठी हूँ। अपनी मेज पर रखे ग्लोब को यूँ ही घुमा दिया है मैंने। पूरी धरती अपने सभी सागरों, नदियों, पहाड़ों के साथ मेरे सम्मुख अपनी धुरी पर नाच उठी है। मैं अपनी उंगलियाँ चटकाते हुए उस लड़की की उम्मीद को बचाने के लिए नदी में कूदना चाहती हूँ, पर वह वेगवती नदी समुद्र में मिल चुकी है। लड़की अब भी मेरी बगल में आकर खड़ी हो गई है। सोचते हुए कि सीमा पर माइनस टेम्परेचर में बिना पलक झपकाए निगरानी करते हुए तोड़ा था दम जिस किसी ने, उसकी उम्मीद क्या थी? सुबह की पीली रोशनी में मधुमालती के फूल फिर गुलाबी हो रहे हैं। वह खिलन्दड़ी लड़की फिर कुछ याद कर हँस रही है। उन्मुक्त, बेपरवाह। उम्मीद की मृत्यु से पैदा होते एक नवजात उम्मीद की गुलाबी रंगत को निहारते हुए। मैं हैरान हूँ। यह लड़की क्यों खड़ी हो जाती है मेरे पास बार-बार समझाते हुए कि यादें मृत्यु के पदचाप को चिन्हित करने वाली दूब से हरियाई एक पगडण्डी हैं। मैं देख रही हूँ अब भी उस लड़की को, जो मधुमालती है, धूप में कुछ और, चाँदनी में कुछ और।

मिर्ची के रंग

लोकतंत्र का पर्व

सन्तोष खन्ना

बहुत दिनों के अथक प्रयास अंततः रंग लाये। आज देश के धुरंधर, अनुभवी और पूर्णतया निराश हो चुके सभी नेता एक महत्वपूर्ण विषय पर विचार-विमर्श के लिए बैठक करने के लिए एकत्रित हुए। बैठक बहुत बढ़िया जा रही थी। सब नेता अपने-अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। अब बारी थी उस अनुभवी नेता के भाषण की जिन्हें लंबे समय तक सत्ता सुख भोगने और सलाखों के पीछे भी लंबे समय तक रहने का समृद्ध अनुभव था और बैठक के आरंभ में यह कहते सुने गये थे कि अब मैं फिट हो गया हूँ, सबको फिट कर दूँगा। सबकी निगाहें उनकी शोहरत के अनुसार उनसे कोई धांसू सुझाव सुनने के लिए एक नई आशा से चमक उठीं। उन्होंने अपना भाषण आरंभ किया, हमारा यह प्रयास हमेशा याद किया जाएगा। हमारा उद्देश्य बड़ा पावन और मनभावन है कि लोकतंत्र मर रहा है, उसे कैसे जिंदा किया जाए? उसी पर आप सबके सुझावों के लिए यह बैठक बुलाई गई है। भाई, तानाशाह बड़ा अन्याय कर रहा है। यह लोकतंत्र हम इसलिए तो नहीं लाए थे कि बस तानाशाह सत्ता सुख भोगता रहे, बाकी सब रटे-रटाए जुमले ठोकते रहें, लोकतंत्र मर रहा है, उसकी हत्या की जा रही है। अभिव्यक्ति की आज़ादी पर पहरा है। यह कैसा लोकतंत्र कि हम पूरा परिश्रम कर रहे हैं पर सत्ता में कभी एक ठों जगह नहीं मिल पाती। सत्ता ने हमारे लिए दरबार में ताले ठोक रखे हैं। सत्ता का सुख केवल तानाशाह के हिस्से में ही है। उसने हमारे पीछे ईडी सीबीआई लगा दिए हैं। बहुत अन्याय है भाई। बहुत समय हो गया सत्ता से बाहर। हम सब कंगाल हो रहे हैं। कहीं कोई रोटी पानी का जुगाड़ नहीं हो रहा। क्या हमारा कोई परिवार नहीं। तानाशाह न करें अपने लिए रोटी-पानी का जुगाड़, नहीं है उसका कोई परिवार। बस एक झोले में ही है उसका पूरा संसार। पर हमारा तो परिवार है पर वह कभी बबुआ के पीछे ईडी-सीबीआई लगा देता है, कभी लुगाई के पीछे और कभी परिवार के किसी दूसरे के पीछे। यह तानाशाह अब बिल्कुल बर्दाश्त के बाहर है। उसने ईडी सीबीआई हमारे परिवार के पीछे लगा रखी है।

"झूठ! झूठ! सरासर झूठ!" नेता जी भाषण की रों में बहते जा रहे थे। उनके भीतर से कहीं कोई कुलबुलाहट हुई और उन्होंने उस कुलबुलाहट को बहुत रोका पर विफल रहे। अच्छे-खासे भाषण देत-देते उनके मुँह के भाव बदले और वह अपनी आत्मा को लताड़ की मुद्रा में भड़क उठे।

शेष नेता उनको हैरान परेशान हो आँखें फ़ाड़ देखने लगे।

"भैया, यह तुम बोले? वैसे सच ही बोला भैया।"

तानाशाह ने नहीं तुम्हारे पीछे बहुत पहले कांग्रेस ने ईडी सीबीआई लगाई थी। एक अन्य नेता जिनका मुँह आश्चर्य से खुला-का-खुला रह गया था उसने अपने मुँह पर हाथ रखने की कोशिश की पर जुबान फिसली तो फिर फिसलती ही चली गई।

इस बार अब सब की बारी उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़ देखने की थी।

"क्या भैया! क्या आप लोगों ने हमें लांछित करने के लिए बुलाया है।" कांग्रेस के नुमाइंदे ने रुआंसा होकर कहा और वह एक वरिष्ठ नुमाइंदे की ओर देख बोले, 'हमने तो कहा था इस बैठक में हमारा क्या काम? पर आप नहीं माने। अब भुगतो।'

'शांत! शांत! शांत' वरिष्ठ नुमाइंदे ने हल्के से उनके हाथ को दबाते हुए कहा—

'यह आपने सच कैसे बोल दिया? सच तो यही है कि आप के विरुद्ध केस कांग्रेस के जमाने के हैं।' एक और नेता ने जीभ को दाँतों के बीच दबाते हुए अस्फुट स्वर में कहा—

'आप खाक लोकतंत्र की रक्षा करोगे, अपनी आत्मा को

तो चुप करा नहीं सकते। आपने बैठक पर मट्ठा डाल दिया, हमारे प्रयासों में पलीता लगा दिया। चले थे लोकतंत्र को जिंदा करने। जो इस मौके पर अपनी आत्मा को चुप नहीं करा सका, वह लोकतंत्र खाक चलाएगा? वह घास ही चखता नजर आएगा। मजे तो तानाशाह लूटता रहेगा।' एक बुजुर्ग से दिखने वाले नेता ने रुआंसा होकर कहा।

'मैं बहुत हैरान हूँ भाई जी, आपने तो कई वर्षो तक

सत्ता चलाई, खूब कमाई भी की कि साथ पुश्तों की गरीबी दुम दबाकर भाग खड़ी हुई। आज अचानक कैसे दे रहे अंतरात्मा की दुहाई।'

एक और राजनेता बोले।

'आत्मा! आत्मा! आत्मा! यह किस चिड़िया का नाम है। आत्मा कुछ है भी तो हम उसे जूते के तलवे में दबाकर रखते हैं और देश विदेश में दिन-रात चिल्लाते हैं, लोकतंत्र मर गया है। अभिव्यक्ति की आजादी पर पहरा है। अल्पसंख्यकों को दबाया जा रहा है जबकि सब मजे लूट रहे हैं। तानाशाह ने सबके पीछे हमारे पीछे ईडी-सीबीआई लगा रखी है।'

यह नेता इतना बोल रहे थे कि कहीं उनकी अंतरात्मा ने भी सिर उठा दिया और वह कह उठे—

'झूठ! झूठ! कुफ्र मत तोलो। तुम्हारे विरुद्ध तो तब से केस चल रहे हैं, जब तानाशाह केंद्र में कहीं आसपास भी नहीं था। वह उससे दो वर्ष पहले की बात है।'

चारों ओर सन्नाटा पसर गया। कांग्रेस के वरिष्ठ नुमाइंदे ने सिर पीट लिया। लोकतंत्र को बचाने के प्रयास विफल हो गए। एक अनजान, अदृश्य, जूते की नोक पर रखे जाने वाली आत्मा अतीत से भूत की भांति प्रकट हुई और सच्चाई का ढिंढोरा पीटने लगी।

सब निराश-हताश हो मुँह लटकाए बैठे थे कि तभी मेंजों पर चाय-समोसे आ गए। सबने राहत की सांस ली और फिर शुरू हो गया हँसी मजाक का दौर। वही नेता जिनकी कभी की मर चुकी आत्मा आज बेवक्त ही जिंदा हो गई, उन्होंने अपने चिर-परिचित खुशनुमा स्वर में एक चिर युवा नेता की ओर मुखातिब हो कर कहा, 'बरखुरदार, अब आप अपनी शादी कर ही डालो। तुम्हारी महतारी खुश हो जाएगी और हम सब को भी बाराती बनने का मौका मिलेगा।'

अब चाय की चुस्की में हँसी के फव्वारे फूट रहे थे।

सर्व भिक्षा अभियान

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

भारत में शिक्षित लोगों द्वारा भिक्षा माँगने की अद्भुत परंपरा रही है। सब लोग भिक्षा न माँगें, इसलिए शिक्षा को सीमित किया जाता था। ब्राह्मणों ने शिक्षा बनाम भिक्षा का अधिकार अपने लिए सुरक्षित रख लिया। शेष तीन वर्ग न शिक्षा पाते थे और न ही भिक्षा। समय का पहिया घूमा। आधुनिक काल में सरकार के दिमाग में यह आया कि भारत के पिछड़े होने का एक कारण या यूँ कहें कि प्रमुख कारण शिक्षा है।

सरकार के दिमाग में कोई बात आ जाए, तो समझो कि कुछ-न-कुछ परिणाम तो निकलेगा ही। सरकार तो सरकार होती है। सरकार में से यदि 'सर' हटाकर 'बे' लगा दिया जाए, तो ऐसी सरकार बेकार हो जाती है। अब 'सर' अंग्रेज़ी का हो या हिंदी का, 'सर' बड़ा महत्वपूर्ण है। 'सर' स्वयं में सम्मान, सत्ता, सोच, समृद्धि, सुख, साधन, सुविधा, सुरक्षा और न जाने क्या-क्या समाहित किए रहता है। इसलिए सरकार के सर में यह विचार आया कि समस्या की जड़ ही काटी जाए तथा भारत को समृद्ध, संपन्न और उन्नत राष्ट्र बनाया जाए।

समस्या की जड़ थी अशिक्षा, इसलिए सरकार ने अशिक्षा का कलंक मिटाने के लिए सभी को शिक्षा प्रदान करने की कमर कस ली। सरकार जब कमर कस लेती है, तो रास्ते में आने वाली सारी बाधाओं की कमर, अकड़ और पकड़ ढीली कर देती है।

सरकार ने हमेशा की तरह समस्या का समाधान ढूँढ़ने के लिए एक समिति बना दी। समिति ने हमेशा की तरह बहुत मेहनत और ईमानदारी से देश-विदेश का दौरा करके एक नई-नवेली योजना प्रस्तुत कर दी। सरकार ने हमेशा की तरह समिति के सुझावों पर विचार करने के लिए एक उप-समिति बना दी। उप-समिति ने हमेशा की तरह समिति के सुझावों में थोड़ा संशोधन करके अपनी संस्तुति दे दी। सरकार ने फिर से हमेशा की तरह उप-समिति की संस्तुतियों को स्वीकार करके उसे लागू करने के लिए जोर-शोर से अभियान चला दिया। इस अभियान का नाम रखा गया 'सर्व शिक्षा अभियान'। इस अभियान में चूँकि 'शिक्षा' शब्द आया था, इसलिए इस अभियान को लागू करने की पूरी जिम्मेदारी शिक्षकों को सौंप दी गई। अभी तक विद्यार्थी (विद्या की चाह रखने वाला) विद्यालय को तलाशता हुआ वहाँ तक पहुँचता था। शिक्षक को गुरु मानकर उसे भगवान से बढ़कर मानता था, अर्थात् प्यासा कुएँ के पास जाता था। 'सर्व शिक्षा अभियान' ने इस परंपरागत विचारधारा को शीर्षासन करवा दिया। अब कुआँ प्यासे की तलाश में घर-घर जाने लगा।

विद्यालय में सबसे निरीह प्राणी शिक्षक ही होता है, जिसे आधुनिक भारत में 'टीचर' कहा जाने लगा है। 'टीचर' शब्द का 'फटीचर' शब्द से ध्वनि साम्य है, इसलिए टीचर को 'फटीचर' मानने में किसी को कोई आपत्ति, परेशानी, दुविधा या समस्या नहीं हुई। धीरे-धीरे विद्यालय, विद्यार्थी, अभिभावक और समाज ने मिलकर टीचर को फटीचर होने का अहसास इस हद तक करवा दिया कि आज कोई भी युवा, भले ही सारी ज़िंदगी फटीचर बना रहे, टीचर बनने को तैयार नहीं है।

'सर्व शिक्षा अभियान' में ये शिक्षक रूपी टीचर घर-घर जाकर विद्यार्थियों की खोज करने लगे। बिन बुलाए मेहमान की तरह आए इन टीचरों को देखकर बच्चे और उनके माता-पिता नाक-भौं सिकोड़ने लगे। सरकार को जब यह खबर मिली तो उसकी आँख, नाक, कान सब खड़े हो गए। उच्च स्तरीय बैठक बुलाई गई। समस्या पर लंबी-चौड़ी चर्चा परिचर्चा, चिंतन-मंथन, विचार-विमर्श सब कुछ हुआ। 'सर्व शिक्षा अभियान' को हर हालत में सफल बनाना ही है, इसलिए किसी भी कीमत पर हर बच्चे को स्कूल पहुँचाना ही है। चाहे उसके लिए नाक रगड़नी पड़े, हाथ-पैर जोड़ने पड़ें, पैरों पड़ना पड़े, सिर के बल खड़ा होना पड़े या एड़ी से चोटी तक का जोर लगाना पड़े।

उच्च स्तरीय बैठक में जाहिर है, उच्च स्तर के अधिकारी थे। उच्च स्तर का अधिकारी वह होता है, जो उच्च स्तर से आया हो या उच्च स्तर से न भी आया हो, लेकिन आने के बाद उच्च स्तर का हो गया हो।

उच्च स्तर की बैठक में शामिल अधिकतर अधिकारी भरे पेट के घरों से आए थे और जो भूखे पेट के घर से आए थे, वे भी अब भरपेट खा लेने के बाद भूखे पेट के दिनों को बिसरा चुके थे। उन्हीं उच्च स्तरीय अधिकारियों में एक अधिकारी ऐसा भी था जो 'भूखे भजन न होहि गोपाला' के कथन को भुला नहीं पा रहा था। वह अपने भूखे पेट के दिनों को हमेशा याद रखता था। उसने सुझाव दिया कि 'सर्व शिक्षा अभियान' को सफल बनाना है, तो बच्चों को दोपहर का भोजन स्कूल में ही दिया जाए। उसके सुझाव को कुछ ने बुझे मन से, तो कुछ ने जगे मन से स्वीकार कर लिया। एक और उच्च अधिकारी को अपने स्कूली दिनों की याद आ गई।

उसने सुझाव दिया कि इन बच्चों को मुफ्त वर्दी, किताबें, कॉपियाँ, पेन, पेंसिल भी मुफ्त में दी जाएँ। एक और महिला उच्च अधिकारी ने लड़कियों के लिए वजीफ़ा देने का सुझाव भी दे दिया।

बैठक में प्राप्त सुझावों को सुनकर माननीय मंत्री महोदय की बाँछें खिल गईं। उनका चेहरा पूर्णिमा के चाँद-सा चमकने लगा। उन्होंने तुरंत ये सारे सुझाव स्वीकार कर लिए और इन्हें लागू करने की जिम्मेदारी विद्यालय के सबसे कुशल, कर्मठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, प्रतिभाशाली, ईमानदार, विनम्र और आज्ञाकारी कर्मचारी को सौंप दी। उस कर्मचारी का नाम मुझे लिखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि समझदार को इशारा काफी है और आप सभी समझदार सहृदय पाठक हैं।

विद्यालय का शिक्षक कोल्हू का बैल होता है। उसकी आँखों पर राष्ट्र निर्माता, कुशल, कर्मठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, प्रतिभाशाली, ईमानदार, विनम्र और आज्ञाकारी कर्मचारी आदि आदि विशेषणों की पट्टी बाँध दी जाती है। लिहाजा वह बिना ना-नुकुर किए विद्यालयी शिक्षा रूपी जुआ अपने कमजोर कंधों पर रखकर आजीवन उसे खींचता रहता है। 'सर्व शिक्षा अभियान' का जुआ भी इसी कोल्हू के बैल के कमजोर कंधों पर रख दिया गया।

नई नीतियों, नए नियमों और नई योजनाओं के परिणाम थोड़े ही समय में दिखाई देने लगे। अब शिक्षक रूपी टीचरों को देखकर बच्चे और उनके अभिभावक दरवाजा बंद नहीं करते थे। बच्चों के लिए स्कूल अब आकर्षण का केंद्र बनने लगे। वहाँ वर्दी, किताबें, कॉपियाँ, पैन, पेंसिल और दोपहर का खाना बच्चों के लिए, और उससे भी ज्यादा उनके अभिभावकों के लिए, महत्वपूर्ण हो गया। विद्यालय 'विद्या' का 'आलय' न होकर भोजनालय, मौजालय, मस्तालय, ऊधमालय बनने लगे। पढ़ने वाले को पढ़ने से कोई लेना-देना नहीं और पढ़ाने वाले को पढ़ाने के लिए न समय, न सुविधा, न साधन और न अवसर ही दिया जाता।

धीरे-धीरे 'सर्व शिक्षा अभियान' आगे बढ़ने लगा। इसमें एक और बाधा आनी शुरू हुई। बच्चे पहली दूसरी कक्षा से ही फ़ेल होने शुरू हो गए और नियमानुसार उन्हें विद्यालय से निकालने की कार्रवाई की जाने लगी। सरकार को लगा कि इस नियम से तो 'सर्व शिक्षा अभियान' की हवा ही निकल जाएगी और यह 'टांय-टांय फिस्स' होकर रह जाएगा।

सरकारी अधिकारी का अर्थ होता है सरकार के अधिकार को भोगने वाला। सरकारी अधिकारी चाहे तो हथेली पर सरसों उगा सकता है, सूरज को दीया दिखा सकता है, अमावस को पूर्णिमा बना सकता है, नाकों चने चबवा सकता है, ईंट-से-ईंट बजा सकता है आदि-आदि। यानी उसके शब्दकोश में असंभव शब्द छपने से रह गया होता है। उसके लिए आठवीं कक्षा तक किसी को फ़ेल न करने का नियम बना देना बाएँ हाथ का खेल था। ऐसा ही हुआ। सरकार ने घोषणा कर दी कि आठवीं कक्षा तक विद्यार्थियों की परीक्षा ही नहीं ली जाएगी, ताकि कोई विद्यार्थी फ़ेल होने के कारण स्कूल से निकाला न जा सके। इसे ही कहते हैं, 'न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी।'

इस प्रकार पूरे देश में सभी लोगों को आठवीं कक्षा तक की अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा देने के संविधान के नीति-निर्देश को पूरा करने का संकल्प सरकार ने पूरा कर

दिखाया। इससे संविधान निर्माताओं की आत्मा को थोड़ी शांति मिली। आठवीं कक्षा तक फ़ेल न होने की जानकारी जैसे ही विद्यार्थियों को मिली, उन्होंने राहत की साँस ली और वे चैन की बंसी बजाने लगे। पढ़ने, याद रखने, परीक्षा में उत्तर देने और फ़ेल होने की पीड़ादायक स्थितियों से मुक्ति पाते ही विद्यार्थी तनावमुक्त, निर्द्वंद्व, निडर, आत्मविश्वासी और आत्मनिर्भर हो गए। बच्चों के लिए पढ़ाई, परीक्षा और शिक्षा उसी प्रकार महत्वहीन हो गए, जैसे बिजली आने के बाद दीपक। शिक्षक निरीह से निरीहतम, विवश से विवशतम और लाचार से लाचारतम होते चले गए। यानी विशेषण की उत्तमावस्था तक पहुँच गए। शिक्षक अपने विद्यार्थी काल में अपने शिक्षकों से भयभीत रहते थे और अब अपने शिक्षण काल में अपने विद्यार्थियों से भयभीत रहने लगे।

'सर्व शिक्षा अभियान' पूरे जोर-शोर से चलता रहा। आठवीं कक्षा तक फ़ेल करने की नीति न होने के कारण अनेक विद्यार्थी नवीं पास होकर संतुष्टि सागर में गोते लगाने लगे, तभी उच्च अधिकारियों ने पाया कि दसवीं की बोर्ड परीक्षा 'सर्व शिक्षा अभियान' में एक बाधा बन गई है। बच्चों को तनाव मुक्त करने और 'सर्व शिक्षा अभियान' को आगे बढ़ाने के लिए उच्च अधिकारियों ने एक नया प्रयोग किया। इसके अंतर्गत विद्यार्थियों को आंतरिक मूल्यांकन में अधिक-से-अधिक अंक देने का फॉर्मूला निकाला गया, ताकि बच्चे दसवीं की बोर्ड परीक्षा में असफल होकर आत्महत्या करने से बच सकें।

अब विद्यालयों में आंतरिक मूल्यांकन में अधिकाधिक अंक देने की अंधी दौड़ शुरू हो गई। 'उसकी कमीज़ मेरी कमीज़ से उजली कैसे' की तर्ज़ पर 'उसके विषय में मेरे विषय से अधिक अंक कैसे' की गला-काट प्रतियोगिता शुरू हो गई। जिन विषयों में प्रथम श्रेणी पाना भी किसी स्वप्न से कम नहीं होता था, उन विषयों में भी शत-प्रतिशत अंक आने लगे। 75 प्रतिशत अंक, जिसे 'विशेष योग्यता' (डिस्टिंक्शन) कहा जाता था और जो पूरे जिले या प्रदेश में एक-दो विद्यार्थियों के ही आते थे, की औकात अब दो कौड़ी की भी नहीं रह गयी थी। एक दौर था, जब मैट्रिक में उत्तीर्ण हो जाने या द्वितीय श्रेणी पा जाने पर पूरे मोहल्ले में मिठाइयाँ बाँटी जाती थीं, वहीं अब ऐसा दौर आ गया कि 95 प्रतिशत अंक मिलने पर घर और मोहल्ले में मातम छाने लगा। विद्यालय अब 'अंकालय' बन गए थे।

विद्यालयों को यह भी छूट दी गई कि वे चाहें तो अपने विद्यार्थियों को बोर्ड परीक्षा में बैठने दें और यदि चाहें तो अपने स्तर पर ही उन्हें दसवीं में उत्तीर्ण कर दें। इससे विद्यार्थियों और विद्यालयों दोनों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। बच्चे दसवीं कक्षा तक बिना किसी बाधा के उत्तीर्ण होने लगे।

'सर्व शिक्षा अभियान' ने पिछले कुछ ही वर्षों में हमारी अशिक्षा के कलंक को धो दिया। साक्षरता दर अभूतपूर्व वृद्धि को प्राप्त हुई। अब विद्यालय के दसवीं कक्षा में उत्तीर्ण हो चुके होनहार विद्यार्थी घरेलू काम-धंधों और रोजगार से भला कैसे जुड़ते? हाथ से करने वाले काम अब उन्हें छोटे-मोटे और अपने स्तर के अनुकूल न लगने के कारण स्वीकार्य नहीं थे। 'सर्व शिक्षा अभियान' के कारण उनके मन में बड़ी-बड़ी आशाएँ जगने लगीं सुनहरी सपने आने लगे। कुछ विद्यार्थी कीचड़ में कमल की तरह खिलने लगे। अधिकतर विद्यार्थी कीचड़ का अंग बनकर रह गए। अनेक विद्यार्थी आकर्षक अंक भी पाने लगे, तो कुछ बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ हथियाने लगे।

महानगर से होते हुए नगर, शहर और गाँव में कुकुरमुत्तों की तरह उग आए निजी विद्यालयों और संस्थानों ने 'सर्व शिक्षा अभियान' को सफल बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने अपनी पूरी फ़ीस वसूलने और सुविधा शुल्क पाने के उद्देश्य से अंक और उपाधियाँ उदारतापूर्वक बाँटनी शुरू कर दीं।

विद्या, ज्ञान, आत्मविश्वास और बौद्धिक विकास से रहित ऐसे 'मेधावी-होनहार' युवाओं की फौज तैयार होने लगी। सबका लक्ष्य था उच्च वेतन वाली आकर्षक नौकरी। नौकरी मध्यकाल में 'एक अनार सौ बीमार' वाली कहावत को चरितार्थ करती थी, तो आधुनिक काल में इसके लिए एक नई कहावत गढ़ने की आवश्यकता मुझे महसूस हुईए जो इस प्रकार है– 'एक अनार, लाख बीमार।' कंप्यूटर नौकरियों को खाता चला गया और 'सर्व शिक्षा अभियान'

तथाकथित 'पढ़े-लिखे मेधावी होनहार' युवाओं की फौज बनाता चला गया। 'अति होनहार बुद्धिमान, पढ़े-लिखे' युवा नौकरियों की माँग की तुलना में कई गुना अधिक आपूर्ति करने के कारण छोटी-मोटी नौकरी करने के लिए विवश होते चले गए। चपरासी के पद के लिए भी बी.ए., एम.ए., पीएच.डी जैसे आवेदक आने लगे। वे कटोरा हाथ में लिए नौकरी की भिक्षा माँगने के लिए कार्यालय-दर-कार्यालय, कंपनी-दर-कंपनी भटकने लगे। 'सर्व शिक्षा अभियान' से वंचित रह गए बच्चे अपने पारिवारिक कार्य और अन्य हाथ से किए जाने वाले कार्य सीखकर न केवल स्वयं रोजगार पाने में सफल हुए, अपितु दूसरों को भी काम देने में सक्षम होते गए। मजदूर, राजमिस्त्री, बढ़ई, कुम्हार, लोहार, धोबी, मोची, नाई, ढाबे वाले, समोसे टिक्की, छोले-भटूरे बेचने वाले, घर में झाड़ू-पोंछा करने वाली मेड जैसे उपेक्षित और छोटे-मोटे काम करने वाले धीरे-धीरे महत्वपूर्ण होते गए। 'माँग अधिक और आपूर्ति कम' होने के कारण उनकी मासिक आमदनी बी.ए., एम.ए., इंजीनियरिंग, एम.बी.ए. करने वाले 'सर्व शिक्षा अभियान' के 'होनहार पढ़े-लिखे युवाओं' से अधिक होने लगी। शिक्षा से वंचित युवा अपनी शर्तों पर काम करने और मनचाही राशि कमाने लगे, जबकि 'सर्व शिक्षा अभियान' से सिंचित युवा नौकरी की भिक्षा पाने के लिए दर-दर भटकने लगे। 'सर्व शिक्षा अभियान' कब 'सर्व भिक्षा अभियान' में बदल गया, किसी को कानों-कान खबर न हुई।

व्यंग्य

चूं चूं का मुरब्बा

विवेक रंजन श्रीवास्तव

वे सारे लोग झूठे हैं जो सोचते हैं की चूं चूं का मुरब्बा वास्तविकता न होकर, सिर्फ एक मुहावरा है। अपनी उम्र सीनियर सिटीजन वाली हो चुकी है, पर वयस्क होते ही वोटिंग राइट्स के साथ उठा सवाल कि चूं चूं का मुरब्बा वाले मुहावरे का अर्थ, आखिर क्या होता है? राज का राज ही रहाँ बस यही लगा कि चूं चूं का मुरब्बा किसी बेहद भद्दे, बेमेल मिश्रण को कहते हैं। मसलन कश्मीरी दम आलू में कोई कच्चा कद्दू मिला दे, या रबड़ी मलाई में प्याज लहसुन का तड़का लगा दिया जाए, तो जो कुछ बनाता हो शायद वैसा होता होगा चूं चूं का मुरब्बा। शादी हुई तो जीवन का सारा भार रसोई शास्त्र ही नही हरफन मौला मैने तो पहले ही बता दिया था, या मैं तो जानती थी कि यही होगा जैसे जुमले जब तब उछालने में निफण पत्नी से इस रहस्यमय रेसिपी के संदर्भ में पूछा। पत्नी जी ने भी मुस्कराते हुए पूरी व्यंजन विधि ही बता दी। उसने कहा कि सबसे पहले चूं चूं को धोकर एक सार टुकड़ो में काट ले, नमक लगाकर चांदनी रात में दो रात तक सूखा ले। चीनी की चाशनी एक तार की तैयार कर चांदनी में सूखे चूं चूं डाल कर ऊपर से जीरा पाउडर डालें। फिर अगली आठ रातों को फनः आठ आठ घंटे चांदनी रात में रखे।

आठवें दिन चूं चूं का मुरब्बा खाने के लिए तैयार हो जाता है। रेसिपी मिल जाने के बाद से मेरी समस्या बदल गई अब मैं चूं चूं कहा से लाऊं, देश विदेश, भाषा विभाषा, धर्म जातियों, शास्त्रों उपशास्त्रों के अध्ययन, नौकरी की अफसरों के आदेशों, मातहतों की फाइलों को पढ़ा समझा पर चूं चूं को समझ ही नही पाया।

थोड़े बहुत बाल सफेद भी हो गए हैं, मिली जुली सरकारें देखी, चौदह के, उन्नीस के परिवर्तन देखे, अब पक्ष विपक्ष की चौबीस की तैयारी देख कर मन में संशय उभरता है कि जिस प्रकार उसूल की घरेलू गौरश्वया सियासत के जंगल में गुम हो रही है। कहीं कभी इतिहास में इसी तरह सत्ता का स्वाद चखने के लिए राजाओं, बादशाहों की लड़ाइयों में उन शौकीन सियासतदानों ने कही चूं चूं के मुरब्बे का इतना इस्तेमाल तो नहीं कर डाला कि चूं चूं की प्रजाति ही डायनासोर सी विलुप्त हो गई है। अस्तु अपनी खोज जारी है। आपको चूं चूं मिले तो जरूर बताइए, मेरे चूं चूं के मुरब्बे वाले यक्ष प्रश्न को अनुत्तर रहने से बचाने में मदद कीजिए।

पांडेय जी नया साल और एजेंडा

लालित्य ललित

नया साल उतना ही करीब है जितना मौसम में हुई महंगी मटर। पहले चालीस रुपये किलो। भीड़ देख कर तीस कर देता है चौरसिया।

पांडेय ने पूछ लिया क्यों भइया ये फॉर्मूला काहे!

कहने लगा कि पांडेय जी मैं लोगों को देखकर सब्जियों के दाम बढ़ाता देता हूँ। जो लेने वाले होते हैं सब्जियाँ, उनकी शक्ल जरा अलग किसिम की होती है।

पांडेयजी घर पर। सोचा कि साल इत्ती जल्दी बीत जाता है कि अब क्या बताए। जो कुछ सोचते है वह सब जल्दी घट जाता है। अब देखो न दुआ जी लम्बी यात्रा पर निकल गए। बड़े भले आदमी थे। अन्तर्मन ने कहा कि अब कौन अमर अमृत पीकर आया है जो लम्बी पारी खेलेगा!

उधर मन है और मन में कई तरह के विचार आते हैं। जिसका कोई आज तक अनुसंधान नहीं कर पाया है कि ऐसा क्यों होता है!

बहरहाल पांडेय जी आजकल सोचते बहुत हैं। आखिर सर्दी है और एक उम्र के बाद सर्दी लगती भी बहुत है। आखिर चाय पी जाए तो कितनी पी जाए। इधर रामखेलावन ने कहा कि पांडेय जी आप हमारी बात नहीं सुनते हैं! ये क्या बात हुई! हमारी इच्छा है कि इस जाते हुए साल में मन में रह जायेगा कि अपन बैठकी नहीं कर पाए। पांडेय जी ने कहा कि ये तो बड़ी खबसूरत बात कही। कर लेते हैं बैठकी। इसमें कौनों बड़ी बात है। बुधवार बढ़िया है, मिलने के लिए, वैसे भी अंदर की बात पांडेय जी न मंगलवार को बैठते और न वीरवार को। यह उनकी परम्परा है जिसे वे पुश्तैनी तरीके से मनाते आए हैं। बहरहाल पांडेय जी ने अपनी सहमति रामखेलावन को दे दी। पर पांडेय जी के मन में यह भी था कि दस बजे से पहले घर पहुँचना जरूरी है। आजकल सरकार ने रात का कर्फ्यू जो लगा दिया है। पांडेय जी को मैसेंजर में लंदन वाले दोस्त ने पूछा कि पांडेय जी हालात कैसे हैं! पांडेय जी ने कहा कि अखबारों ने और चैनल्स ने अपना काम शुरू कर दिया है। डराने में वे लोग आगे हैं। हमने तो दूरी बना ली है, इन लोगों से। यह सही बात है कि दूसरी लहर ने किसी को भी कहीं का न छोड़ा।

अब यह नहीं पता कि ओमिक्रोन क्या रंग दिखायेगा। जो होगा, देखा जाएगा। पर प्रीकाशन जरूरी है। लोग हैं कि मानते नहीं। उधर अन्तर्मन ने कहा कि लातों के भूत बातों से कहाँ मानते हैं! उधर चीकू ने कहा कि पापा जी! इस बार नया साल मनाने बाहर चले!

कहीं आउटिंग पर चलते हैं। पांडेय जी ने कहा कि बेटा, बात तो तुम्हारी सही है, पर ओमिक्रोन बढ़ रहा है, देखना यह है कि चले घूमने और कहीं अटक गए तो फिर क्या होगा! चीकू कहने लगा कि पापा जी क्या होगा! अपनी छुट्टियाँ बढ़ जाएँगी।

पांडेय जी सोचने लगे। ये बच्चे भी न कमाल के हैं। इन्हें अपनी मस्ती से मतलब है, बाकी दुनिया जाए भाड़ में!

चीकू ने कहा कि पापा क्या सोचने लगे!

पांडेय जी ने कहा कि कुछ नहीं बेटा। मैं तो सोच रहा हूँ कि घूमना तो बढ़िया रहता है। इससे न केवल यात्रा होती है बल्कि कुछ-न-कुछ सीखने को भी मिलता है। अब चीकू की चेहरे की खुशी देखते ही बनती है। जो पांडेय जी ने देखी। वे भी मुस्कराते हुए अपने बचपन को याद करने लगे। तभी रामप्यारी ने कहा कि साग बना दूँ। मौसम ठंडा है न!, पांडेय जी ने सर हिलाया कि रामप्यारी ने कहा कि चक्की से मक्की का आटा भी ले आओ।, अब जा कर समझे पांडेय जी आखिर रामप्यारी इतने प्यार से क्यों बोल रही है! दरअसल भारतीय पति जो होते हैं वे स्वभाव से भोले होते हैं, पर भोले भंडारी नहीं। पत्नियाँ अच्छे से सब जानती समझती भी हैं। पांडेय जी ने सोचा कि काहे को घर से बाहर जाए। बढ़ता हुआ कोरोना और उसका नवीनीकरण!

पता नहीं ये क्या गुल खिलाएगा!

पांडेय जी को रामप्यारी ने कहा कि क्या कहते हो जी! चलोगे क्या!

पांडेय जी ने कहा देवी जी। बात सुनिए। आजकल

कहीं बाहर जाने का धर्म नहीं है। घर से बाहर तभी निकलो जब निकलना बेहद ही अनिवार्य हो। समझ रही हो न!

रामप्यारी शुरू हो गई। हम जब अपने घूमने के लिए कहते हैं, आप फौरन मना कर देते हो। अपने दोस्तों के लिए आपके पास समय की कमी नहीं। लेकिन हमारे लिए कहोगे कि बाहर जाना सेफ नहीं। समझा करो।

अब पांडेय जी का ब्लड प्रेशर बढ़ने लगा। उन्होंने कहा कि– जब एक बार मना कर दिया तो कर दिया। समझी।

रामप्यारी ने आंखें तरेर कर देखा तो पांडेय जी ने करवट ली और कम्बल ओढ़ लिया। ताकि लगे कि भाई बहुत थका हुआ है और नींद आ रही है। नए-नए आइडिया भिड़ाने में पांडेय जी का कोई मुकाबला नहीं।

पांडेय जी को आज रामप्यारी ने कस कर डांट लगाई। कहा कि आपको पता भी है क्या

कोरोना का रिश्तेदार ओमिक्रोन बाहर छुट्टे सांड की तरह घूम रहा है। कुछ हो गया न!

समझ सकते हो न पांडेय जी!

हमारा क्या होगा!

पांडेय जी ने कहा कि अन्नपूर्णा जी, समझ सकता हूँ। बताइए मैं क्या करूं कि आपके चेहरे पर खुशी आ जाए!

रामप्यारी ने कहा कि कल से मेट्रो में जाना बंद। समझ आई बात! पांडेय जी ने कहा कि देवी की जय हो। पर अंदर से पांडेय जी खुश नहीं थे। उनको तो लगा था कि मेट्रो से जाएँगे तो मेन गेट पर टिक्की-बर्गर खाएँगे। इससे दो बातें होगी। एक तो आत्मा प्रसन्न होगी। दूसरे उस गरीब आदमी को रोजगार मिल जाएगा आखिर सबके मन की और विकास की कितनी बातें पांडेय जी सोच लेते हैं।

लेकिन सब धरा का धरा रह गया।

पांडेय जी ने सोच लिया था कि असली पति वह होता है जो पत्नी से जुबान नहीं चलाता। यह गुण पांडेय जी ने राधेश्याम गोड़बोले से ट्रांसफर कर लिया था। गोड़बोले की भी बोलती बंद रहती है और रामखेलावन की भी फुलमतिया के सामने।

पांडेय जी ने सोचा कि नए साल पर वे अपना एजेंडा बनाएँगे। जो उनका कल्याण भी करेगा और एक आदर्श भी विकसित करेगा।

नए साल के एजेंडा में शामिल हैं यह मुख्य बातें।'

1. वे खूब लिखेंगे और दुनिया को दिखाएँगे कि वे कितने बेहतर हैं।

2. वे और अपनी किताबों को बेहतर बनाने की कोशिश करेंगे।

3. वे इस वर्ष कम-से-कम लाइव कार्यक्रम करेंगे। रामप्यारी को बड़ी दिक्कत होती है कि लाइव सब बेकार के प्रोग्राम होते हैं।

4. सम्मान देने वाले आयोजकों से पहले ही कन्फर्म कर लेंगे कि आने व जाने का मार्ग व्यय देंगे, तो तभी आएंगे।

5. पहले ही प्रकाशकों से रचनाओं के संबंध में अनुबन्ध करना जरूरी करेंगे।

6. यात्राओं को अपने जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बनाएँगे।

7. परिवार के सदस्यों का जन्मदिन जब भी होगा वे अवकाश करेंगे और उनके जन्मदिन पर बाहर खाना खाने जाएंगे।

8. घर में ऑफ़िस की कोई बात नहीं करेंगे।

9. कोशिश करेंगे कि परिवार को एक बार विदेश की यात्रा आने वाले वित्तीय वर्ष में करवाएँगे (कौन से वाला वित्तीय वर्ष, इसकी कोई जानकारी नहीं)।

10. कोशिश करेंगे कि छुट्टी वाले दिन वे ब्रेकफास्ट अवश्य बनाएँगे।

11. कोरोना के बाद एक दिन सिनेमा जरूर दिखाएँगे। फिलहाल सिनेमा जैसे पॉपकॉर्न घर पर खिलाने की व्यवस्था अवश्य करेंगे।

चीकू ने कहा कि मम्मी पापा ने नए साल के लिए एजेंडा बनाया है। पापा ने कहा है कि अभी नहीं बताऊंगा। नया साल आने दो।

उधर रामखेलावन ने कहा कि पार्टी तो बनती है। उधर रामप्यारी ने कह रखा है कि घर से ऑफ़िस और ऑफ़िस से घर ही जाना है, समझे न!

आजकल पत्नी से डरने लगे हैं पांडेय जी। आखिर प्यारे

पति जो ठहरे।

सोते हुए पांडेय जी ने देखा कि देविका गजोधर कहीं किसी दूर गांव गई है और उन्हें बुलाने का नाटक कर ही है। पांडेय जी मुस्कुराने लगे। तभी रामप्यारी ने देखा कि साहब तो सोते हुए भी मुस्कुराते है। वाकई में बड़े प्यारे और दुलारे है पांडेय जी।

आज बड़े दिनों बाद पांडेय जी क्रिएटिव हुए। सोचने लगे कुछ नया सा—

हर लम्हा तुम्हारा है
जैसा जीना चाहते हो
जैसा बनना चाहते हो
जैसा बनाना चाहते हो
वो सब
तुम्हारे ऊपर निर्भर है
तुम किस तरह
अपना पहला पांव रखते हो
अच्छा या बुरा
चिंतन और चैतन्य से
भरा हुआ तुम्हारा आत्मविश्वास
यदि
सार्थक दिशा की ओर
तुम्हें ले जाएगा तो
सच मानिए
बुरा विचार नहीं होगा
हर अच्छे काम के लिए
वर्षों की साधना लगती है
कोई एक दिन में महात्मा नहीं हो जाता
अच्छे-अच्छे महापुरुषों की जीवनी यह बतलाती है
यही बात
कुछ समय उनके लिए निकालो
सोचो कि
उन्होंने अपने जीवन में
क्या संघर्ष किया
क्या पाया
सब इसी संसार के हैं
इसी संसार के थे
और इसी संसार के रहेंगे
निश्चित ही यह तय है
100 में से 99 लोग 80 लोग तो
देशाटन को नहीं निकलेंगे
कुछ जरूर जाएँगे, घूमेंगे, तफरी करेंगे
और कुछ दिनों में
उन्हें उनका घर पुकारने लगेगा
कुछ ऐसे होते हैं
जो विरले होते हैं जो कोस-कोस, गांव-गांव
एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक लोगों से मिलते हैं
उनकी बोलियों को समझते हैं
उनके इतिहास और उनके साहित्य से
परिचित होते हुए
आगे बढ़ते हैं और
महसूस करते हैं
कि हमारा जीवन दर्शन कितना वृहद्
कितना विस्तृत है
हमारा देश कितना प्यारा है कितना मनमोहक है
मोह लेता है हमारा देश कितना अच्छा है
यदि आप एक कदम बढ़ाएँगे तो
सामने वाला दो कदम बढ़ाएगा
आपसे मिलने को
लोगों से मिलिए
लगातार मिले यही जीवन है
यही दर्शन है और यही जीवंतता है
यही गतिशीलता है
मिल कर देखो
जीवन यही है
दर्शन यही है
समझो!
आप को समझने के लिए लोग बैठे हैं
आपका स्वागत के लिए लोग बैठे हैं
लेकिन एक बात तो
आपके ही माननी होगी

जैसा दोगे वैसा ही मिलेगा
इसलिए मैंने यह महसूस किया
कि मैं विनम्रता एक ऐसा अस्त्र है
जिसके आगे सारे के सारे शास्त्र और शस्त्र समर्पित है
इसलिए विनम्रता का दामन ना छोड़िए
हँसमुख रहिए
पढ़िए-लिखिए लोगों से मिलिए

यही जीवन है
यही दर्शन है
यही सत्य है सत्य का दामन न छोड़िए
नमस्कार
खुश रहिए
हरि ॐ।

तभी रामप्यारी ने कहा कि सुनिए जी, आज तो बड़ी देर लगा दी, उठने में। क्या दफ्तर नहीं जाना क्या!

पांडेय जी ने देखा कि घड़ी ने सात बजा दिए। इससे पहले तो कभी नहीं हुआ ऐसा!

रामप्यारी ने कहा कि ब्रेकफास्ट पैक कर दिया और लंच भी।

पांडेय जी फिर ट्रैफिक में। आज दफ्तर का पहला दिन। नए साल में। लग रहा है कि पतझर से लोगों में भी वसन्त छाने लगा था। कुछ लोगों ने झुंड बनाकर एक-दूसरे के कमरे में नया साल मुबारक हो। इसका उच्चारण करते घूम रहे है। पांडेय जी कभी किसी कमरे में नहीं जाते थे।

सोचने लगे कि जमाना बदल रहा है और लोगों का नजरिया भी।

मोबाइल पर राधेश्याम गोड़बोले का मिस कॉल देखा। फोन लगाया कि नम्बर लगा नहीं। सोचने लगे कि पता नहीं कहाँ बैठे हैं!

राधेश्याम गोड़बोले भी गजब नेचर वाले व्यक्ति हैं। मिलते हैं पहली फुरसत में, उनसे। आखिर आदमी दिलेर भी है और दिलदार भी। पांडेय जी को रामखेलावन से मिलना था। पर जैसे ही येलो अलर्ट जारी हुआ उनकी गतिविधियों पर भी ब्रेक लगा। मेट्रो में जाना बंद किया और अपनी खटारा में फिर से लौट आये। भइया जान बचेंगी तो जिएंगे, मुर्दे क्या खाक जिएंगे। बहरहाल पांडेय जी ने देविका गजोधर को मन-ही-मन स्मरण किया और खुश होने आए काल्पनिक प्रयास करने लगे। आखिर डिस्टेंस एजुकेशन में भी पढ़ाई सम्भव है। और जब देविका हो स्मृति में तो और क्या चाहिए। बहरहाल जीवन में खुशनुमा माहौल बना रहना चाहिए। आख़िर उत्सवधर्मिता भी कोई चीज है। वैसे पांडेय जी टच वुड बड़े प्यारे इंसान हैं। ऐसा सपने में पांडेय जी को आभास हुआ। सोते-सोते पांडेय जी बिस्तरे से गिर गए।

रामप्यारी ने कहा कि—ये क्या हुआ कि इतने सपने लेते ही क्यों है!

पांडेय जी कुछ नहीं बोले। पत्नी के सामने भी चुप रहना चाहिए, वरना लेने के देने भी पड़ सकते हैं!

पांडेय जी ने रामप्यारी से कहा कि— सुनो अन्नपूर्णा जी, नया वर्ष मंगलमय हो। तुम स्वस्थ रहो और अपने पति को खुश रखो। रामप्यारी ने कहा कि आप भी न आज समय से घर आ जाना। आपके लिए ब्रेड-पकौड़े बनाऊँगी।

पांडेय जी को सुनकर ऐसे फील हुआ कि मानो ओमिक्रोन नाम का शैतान उनके मुहल्ले से कहीं कौसों दूर भाग गया हो। शनिचर कहीं का, जी हलकान कर रखा है। और नहीं तो...

ओमिक्रोन ने सुन लिया और खतरनाक हँसी हँसता हुआ बगल के अमरूद के पेड़ पर चढ़ गया और विमर्श करने लगा कि उसकी अगली रणनीति क्या होगी!

उधर आम आदमी पहले ही डरा हुआ है कि मेट्रो में सीमित एंट्री, मॉल-मन्दिर बन्द आदमी जाए तो जाए कहाँ!

तभी बगल के घर से चौबे जी के पिटने की खबर आई। मुहल्ला जमा हो गया कि दगडू पुलिस भिये ने सायरन बजाते हुए फटफटी निकाल कर मौसम को गर्म कर दिया। आखिर लोगों की बढ़ती सर्दी भी तो ठीक करनी है कि नहीं।

पांडेय जी भी रजाई में दुबक गए। सर्दी में डंडे का बजना भी बड़ी टीस देता है। चीकू कोई पूछे तो कह देना कि पापा के सर में दर्द है। वे सो रहे हैं और पांडेय जी सोते सोते मखनवड़ा के सपने लेने लगे। आखिर वे दूरदर्शी जो ठहरें।

मानसून, माननीय और मतवाले बादल

मुकेश राठौर

एक समय था जब मानसून दनदनाता हुआ आता था। वह आता तो धूल खाए आसमान में बादलों की कतार लग जाती मानो ऊंटों का कारवां चला आ रहा हो। धरती हरी चुनर ओढ़ उसका स्वागत करती और जब लौटता तो सिमट-सिकुड़कर विदाई देती। मगर अब मानसून दबे पैर ऐसे आता है जैसे पैरोल पर छूटा कोई नेता! लोग स्वागत में खड़े रह जाते हैं और वह चोर दरवाजे से चुपचाप खेतों में घुस जाता है और लिखने लगता है 'हल का हार्दिक अभिनंदन'। जिसे पढ़ना आता है मानसून की कूट भाषा वह जुट जाता है बुआई में और जो नहीं समझ पाता मानसून की भाषा वह बैठा रहता है मेढ़ पर।

अबके मानसून समय से आया तो लगा अच्छी शुरुवात ने आधा काम कर दिया। वेल बिगन इस हॉफ डन, लेकिन खेती-किसानी में आधा काम कभी पूरा नहीं माना जाता। गाड़ी के एक पहिए, जोड़ी के एक बैल की तरह। आधे बीजों का उगना, आधे फल का पकना, आधी फसल का कटना और उपज के आधे दाम मिलना-किसान की पूरी बर्बादी का सबब होता है। "कहते हैं किसान को आषाढ़ में उत्साह और कंवार में अक्ल आती है।" उत्साह के अतिरेक में वह पोटली में बंधी पाई-पाई मिट्टी में दबा देता है और फिर फसल पकने तक खुद दबता चला जाता है खाद, दवाई, निंदाई, गुड़ाई...के बोझ तले। यूं तो उसके लिए लाख योजनाएँ बनती हैं, लेकिन टूटी खाट पर वह सिरहाने सिर रखकर सोए या पायताने-कमर सदैव बीच में ही रहती है। जब कंवार में अक्ल आती है तो कोने में बैठ विचारता है ये बोता तो ऐसा होता, वो बोता तो वैसा। 'ये सच है कि हल चलाने और बैल चराने वाले मैले-कुचैले पंचेधारी' किसान को समाज में सम्मान मिलना अब भी बाकी है। ये बात और है कि उसे सम्मानस्वरूप कुछ रुपए मिलने लगे हैं, लेकिन यह वैसा ही है जैसे जले के गाल पर उसी की जांघ की चमड़ी काटकर चस्पा कर दी जाए।

बहरहाल, वर्षा की लंबी खेंच से जब नवयौवना फसलों से सजी धरती ने हरी चुनर उतार पीली चुनर ओढ़ी, तो किसानों के चेहरे भी पीले पड़ने लगे। 'किसान के चेहरे का मेलेनिन फसल के क्लोरोफिल पर निर्भर करता है। जब फसल बदरंग हो जाए, तो उसकी रंगत कैसे बरकरार रहें! जब मानसून नजर चुरा लें तो नजरें माननीयों पर आकर टिक जाती हैं। मानसून के मारों की पीड़ा माननीयों से बेहतर कौन समझ सकता है! कभी तो लगता है मानसून और माननीयों की सांठ-गांठ है। जब से माननीय उदार हुए, किसान उधार होते ही 'उधर' निहारने लगते हैं। गोया यह भी एक कृषि कार्य-सा हो गया। यह जानते हुए भी कि मालिक का दिया ही पुराता है माननीयों का दिया नहीं।

किसान सूखे सावन से मुरझाई फसलों के नमूने लेकर क्षेत्रीय माननीय के पास पहुँचे। वे मीडिया से मुखातिब थे। भीतर वारे, बाहर नारे लग रहे थे। 'हमारी मांगें पूरी करो', 'अब और कौन सी नई मांग लेकर आ गए' फुसफुसाते हुए माननीय झट नमूदार हुए। आते ही किसानों पर बिफर पड़े। बोले, उत्सव की बेला में क्यों ढेला फेंक रहे हो टीवी वगैरह देखते हो कि नहीं! हम कहाँ से कहाँ पहुँच गए। तुम हो कि...!!

किसान बोले, 'माननीय हम भी टीवी देखते हैं बल्कि एक नंबर वाला चैनल ही देखते हैं। बेशक आपकी तरह हम भी देश की उपलब्धियों से गौरवान्वित हैं। होना भी चाहिए। हम तो चाहते हैं कि देश वहाँ-वहाँ जाए, जहाँ पहले कभी कोई नहीं गया। कभी बादलों पर भी जाइए। मानसून में दिखने वाले काले बादल सिर्फ मतवाले ही नहीं होते। जैसा प्रायः समझा जाता है। उन्हें कहा तो जाता है सब कुछ, समझा जाता है कुछ-कुछ, मगर वे होते हैं बहुत कुछ। उनमें भी कभी गहराई से खोजिए जल और जीवन...।

माननीय बगलें झांकने लगे, शायद किसानों के लिए जल और अपने लिए जीवन तलाश रहे थे।

स्वास्थ्य साहित्य

पॉलिसिस्टिक ओवेरियन सिंड्रोम (PCOS)

डॉ. आराधना सिंह बुंदेला

पॉलिसिस्टिक ओवेरियन सिंड्रोम (PCOS) महिलाओं की एक समस्या है जिसमें महिलाओं के ओवेरियन (अंडाशय) में छोटी-छोटी सिस्ट बन जाती हैं और ओवरी का आकार भी बड़ा हो जाता है इसे ही "पॉलिसिस्टिक ओवरी" कहा जाता है।

सितंबर के महीने को पॉलिसिस्टिक ओवेरियन सिंड्रोम (PCOS) जागरूकता महीने के रूप में मनाया जाता है, जिसके चलते इस महीने में पीसीओएस के बारे में विभिन्न जागरूकता अभियान चलाये जाते हैं और महिलाओं को इसकी रोकथाम एवं इलाज के बारे में बताया जाता है जैसे कि–

हार्मोन का संतुलन बिगड़ जाता है

जब महिलाओं में प्रजनन से संबंधित हार्मोन का संतुलन बिगड़ने लगता है तो पीसीओएस हो जाता है। दरअसल, पीसीओएस में पुरुष हार्मोन यानी एंड्रोजन का स्तर बहुत बढ़ जाता है। लेकिन दूसरी तरफ महिला हार्मोन प्रोजेस्ट्रॉन की बहुत कमी हो जाती है। इस कारण लंबे समय तक पीरियड्स होने में परेशानी होती है। इसके अलावा पीसीओएस होने पर उस तरह से प्रतिक्रिया नहीं करता है जैसा करना चाहिए।

क्या है इसके लक्षण :

1. पीसीओएस होने पर पीरियड्स में अनियमितता होने लगती है। या तो बहुत देर से पीरियड्स आते हैं या समय पर नहीं आते हैं।
2. एंड्रोजन ज्यादा होने के कारण स्किन में कालापन बढ़ने लगता है, खासकर बगल में।
3. पीसीओएस होने पर मूड चेंज हो जाता है।
4. शरीर के मध्य भाग में वजन बढ़ने लगता है।
5. पेडू में अक्सर दर्द करता है।
6. अवसाद, बेचैनी, ब्लीडिंग और नींद की भी परेशानियाँ हो सकती हैं।
7. PCOS के लक्षण विभिन्न महिलाओं में अलग-अलग हो सकते हैं जैसे कि माहवारी में अनियमितता, चेहरे पर मुँहासे और बाल आना, बालों का झड़ना और इसके कारण गर्भ धारण करने में भी समस्या आ सकती है।

पीसीओएस का कारण क्या है

हालांकि अब तक यह प्रमाणित नहीं हुआ है कि पीसीओएस का असली कारण क्या है लेकिन माना जाता है कि अगर परिवार में माँ या बहन को पीसीओएस है तो इसके होने का जोखिम ज्यादा है। इसमें इंसुलिन की सक्रियता बढ़ जाती है जिसके कारण अंडाशय पर बुरा असर पड़ता है। इससे अंडोत्सर्ग यानी अंडा रिलीज नहीं होता।

क्या है इसका इलाज

पीसीओएस से पीड़ित महिलाओं का इलाज उनकी उम्र पर निर्भर है। डॉक्टर उम्र और लक्षण के आधार पर इलाज करना शुरू करते हैं। यदि वजन बढ़ा हुआ है तो वजन में 10 प्रतिशत तक कमी लाने से बहुत सकारात्मक असर देखा जा सकता है। इसके अलावा डायबिटीज की दवा से भी इसे ठीक किया जा सकता है। अगर आप प्रेग्नेंसी के बारे में सोच रही हैं तो डॉक्टर से परामर्श लेना बेहद जरूरी है।

भारत का संविधान, संस्कृति और कानून : एक पाठक की दृष्टि में

सतीश चंद्र रस्तोगी

किसी पुस्तक के बारे में मुझ जैसे साधारण पाठक के लिए जो आलोचना/समालोचना की विधा से अपरिचित हो, अपनी प्रतिक्रिया देना एक दुरूह कार्य है। यह कार्य और भी दुरुह हो जाता है जब पाठक और लेखिका के एक ही कार्यालय में लगभग पांच से भी अधिक दशक पूर्व सहयोगी के रूप में जीवन यात्रा शुरू की हो। लेखिका न केवल आयु में पाठक से बड़ी हो वरनः कार्यालय में वरिष्ठ भी हों। अलबत्ता, यह बात अलग है कि कालांतर में लेखिका ने उसी कार्यालय में मूलधारा को छोड़कर दूसरा कार्य क्षेत्र अपना लिया हो। समस्त कार्यकाल में लेखिका की छुपी हुई योग्यता से परिचित होने का कभी कोई अवसर नहीं मिला।

उम्र के जिस पड़ाव पर हम पहुँच चुके हैं उस पर उनकी योग्यता एवं उपलब्धियों से परिचित होने पर एक गर्व की अनुभूति होती है, इतना ही नहीं, उन्होंने मुझे भी संसदीय प्रक्रिया के बारे में अर्जित जानकारी और अनुभव को पाठकों के साथ सांझा करने का एक मंच प्रदान किया 'महिला विधि भारती' पत्रिका में मेरे आलेख प्रकाशित किये गये हैं।

विचाराधीन पुस्तक के अंतिम आवरण पर वर्णित लेखिका की उपलब्धियों को पढ़कर मैं स्वयं को उनके सामने बौना महसूस करता हूँ पर कहीं से यह आवाज आती है की लेखिका हिंदी भाषा को न केवल रचनात्मक साहित्य से बल्कि विधि संबंधी लेखन से समृद्ध करने में यथाशक्ति प्रयासरत हैं और उन्होंने अपने नाम को सार्थक करते हुए अपनी लेखनी को निरंतर कार्यरत रखा है। उनके इसी प्रयास का एक उदाहरण है विवेच्य पुस्तक भारत का संविधान संस्कृति और कानूनः इस पुस्तक में लेखिका ने तीन अलग-अलग विषयों को एक ही फलक पर लाकर उल्लेखनीय कार्य किया है। भारत के संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेदों को सरल एवं प्रवाहपूर्ण भाषा में प्रस्तुत कर आम पाठकों के लिए सुगम कर दिया है। लेखिका के अनुसार कानून सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त साधन है बशर्ते वह समाज की जमीनी सच्चाई से मेल खाता हो और उसे पूरी सजगता और ईमानदारी से लागू किया जाए।

संस्कृति क्या है? इसकी भी सरल शब्दों में व्याख्या करने का लेखिका द्वारा सफल प्रयास किया गया है। उनके अनुसार राष्ट्र का समूचा जीवन जिस आचार व्यवहार, मूल्यों और मानदंडों, विचार और चिंतन, संगीत, साहित्य और कला पर आधारित होता है वही उसकी संस्कृति होती है। सभ्यता भौतिक उन्नति को प्रतिपादित करती है तो संस्कृति उसकी संपूर्ण मानसिक निधि का प्रतिनिधित्व करती है। 'संस्कृति विस्तार है तो सभ्यता स्थिरता, सभ्यता में भौतिक पक्ष प्रधान होता है तो संस्कृति में विचारक पक्ष प्रबल होता है। यदि सभ्यता शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। समृद्ध संस्कृति से उन्नत सभ्यता का निर्माण होता है सभ्यता बताती है कि हमारे पास क्या है और संस्कृति बताती है कि हम क्या हैं?' इसी भाग में लेखिका का कथन है कि संस्कृति का निर्माण धीरे-धीरे होता है जिसमें हजारों वर्ष लगते हैं। संस्कृति के मुख्य तत्वों के बारे में भी पाठकों को अवगत कराने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है।

इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति को इसलिए लिया गया है कि लेखिका इस बात को रेखांकित कर सके कि भारतीय संविधान भारतीय गरिमा और भारतीय एकता का प्रतीक है क्योंकि भारत का संविधान भारत की उदात्त और समृद्ध संस्कृति का दस्तावेज या महाप्रतिमान है। यदि हम भारत की उद्देशिका अथवा प्रस्तावना का अध्ययन करें तो उसमें सम्पूर्ण संविधान की आत्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। भारत की सभ्यता और संस्कृति की 'सत्यम्, शिवम् और सुंदरम' की अवधारणा इसमें साकार हो उठी है।

यही नहीं, भारतीय संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट मानदंडों से अनुस्यूत इस संविधान के महाग्रंथ में सम्मिलित चित्र

भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत के संविधान की प्रकाशित होने वाली पुस्तकों में प्रायः यह चित्र नदारद होते हैं। लेखिका का कहना है कि– 'भारत के संविधान की मूल प्रति में भारत के प्रसिद्ध चित्रकार नंदलाल बोस के बने चित्र सम्मिलित किए गए हैं। ये सभी चित्र भारतीय संस्कृति की गाथा कहते हैं। इसमें एक चित्र है वैदिक काल का। इसमें किसी आश्रम का चिहून है मध्य में गुरु बैठे हैं और उनके शिष्यों को दर्शाया गया है बगल में एक यज्ञशाला बनी हुई है। भारत के संविधान में भारतीय संस्कृति के आदर्श राम और कृष्ण, महात्मा बुद्ध के साथ-साथ गुरु गोविंद सिंह और शिवाजी के भी चित्र दर्शाये गए हैं। संविधान में सम्मिलित चित्रों के अध्ययन से यह पता चलता है कि संविधान में भारत की संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों को सम्मिलित किया गया है। वर्तमान में संसद के भीतर संसद सदस्यों के व्यवहार का वर्णन कर लेखिका ने राष्ट्र की दुखती रग को छू लिया है। संसद सदस्यों की निर्हरताएँ और लाभ के पद संबंधी जटिल विषय को लेखिका ने विभिन्न न्याय निर्णयों का उदाहरण देकर यथासंभव सरल बनाकर आवश्यक जानकारी देने का सफल प्रयास किया है। संविधान में न्यायपालिका का जो स्थान है इसका संक्षिप्त वर्णन काफी उपयोगी बन पड़ा है। पुस्तक उन कानूनों का भी उल्लेख करती है जो जन-जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। संक्षेप में, यही कहा जा सकता है कि पुस्तक न केवल आम पाठक के लिए उपयोगी है, वरन् इस क्षेत्र में शोध करने वाले शोधकर्ताओं के लिए भी बहुत उपयोगी है। आज जब पुस्तक पढ़ने का प्रचलन काफी कम हो गया है, जिससे उनका प्रकाशन व विक्रय भी प्रभावित हुआ है, तब भी मेरा मानना है कि प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालय और संस्थाओं द्वारा अपने अपने पुस्तकालयों के लिए खरीदी जाएगी जो राजनीतिशास्त्र और विधि की शिक्षा प्रदान करते हैं। विधानमंडलों, विशेष कर हिंदी भाषी क्षेत्र के सदस्यों के लिए भी यह पुस्तक एक महत्वपूर्ण संदर्भ-ग्रंथ के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

कविता

"बाकी सब ठीक है"

कमलेश कुमार दीवान

मैं हमेशा गलती ही करता हूँ
उनके साथ प्यार में दुलार में स्नेह के संसार में
सबके साथ व्यवहार में, स्वीकार में, इंकार में
हमेशा गलती ही करता हूँ बस ग़लती ही करता हूँ
और गलते जाता हूँ हमेशा मैं ही
बाकी सब ठीक है।
मैं तनाव से टूटता भी हूँ, सपनों से रूठता भी हूँ
संकल्प लेता हूँ, शपथ खाता हूं
कि अब त्रुटियाँ न हो, गलतियों से बचा रहूँ
फिर फिर त्रुटियाँ गलतियाँ करता ही हूँ
अपनों के लिए, जो अपने नहीं रहते
सपनों के लिए जो सपने हीं रहते हैं
मनाने, महसूस करने और देखते रहे उन्हें,
जो कभी मेरे थे मुझसे ही थे
गलतियाँ तो आदत हो गई है
आज भी गलतियाँ करता हूँ
गलतफहमियाँ पालता हूँ,
चुकाता जाता हूं उनका मूल्य
प्यार में, दुलार में, व्यवहार में दो
स्वीकार और इंकार के संसार में
पैसों से, समय से और विचार से
गलतियां करता हूँ गलतियों पर हूँ
और गलत रहते हुए गलता जाता हूँ
सोचता हूँ गलत ही सही हूँ
जीने के लिए गलतियाँ ही जरूरी है
बाकी सब ठीक ही है।

धर्मपाल महेंद्र जैन की कविताएँ

यादें

तुम्हारी यादें अनुप्राणित कर
भर देती हैं कोमल भाव, रस, लय
और इतना कुछ
कि प्यार जीवंत हो जाता है।
तुम्हारी अनुपस्थिति में मैं
आकार देता हूँ अनुभूतियों को
मेरी उँगलियाँ
तुम्हारे कल्पित स्पर्श से संचित ऊर्जा
पहुँचा देती है मेरे भीतर तक।
वे जब भी बुनती हैं तुम्हें
आकृतियाँ नहीं होती वहाँ
कि तुम रेखाओं में घिर जाओ
देह नहीं होती वहाँ
या उससे लिपटी लिसपिसी लिप्सायें
कि सीमाओं में बंध जाये तुम्हें देखना।

बार-बार भीतर झाँकने की कोशिश में
जब तुम होती हो मन में
होती हो अपनी समग्रता के साथ।

सलीक़े से जीने में

हर सुबह सोचता तो यही हूँ
अब से, सलीक़े से जियूँ
उठकर बाहर निकलूँ
ताज़ी हवा में गहरी साँसें भरूँ
एलर्सली पार्क तक तेज़ चलूँ
या दौड़ लूँ कुछ देर
प्राणायाम यूँ भी बस का नहीं है।
जो भी मिले राहगीर
मुस्कुराकर नमस्कार कर लूँ
कुछ खिलते फूलों से सीखूँ
कुछ उड़ते पंछियों से और
किसी चट्टान पर इत्मीनान से बैठ
उगते हुए सूरज के
रंग पकड़ने की कोशिश करूँ।
हर सुबह सोचता तो यही हूँ
बिस्तर में पड़े-पड़े,
यकायक ध्यानस्थ हो जाता हूँ
या झपकी लग जाती है।
सलीक़े से जीना इतना सरल है।

नदी

किसी सोते से टपकती है जलधारा
पहाड़ के पठार पर
लहरों के वलय टूटने लगते हैं
कुछ दूर ठहरने लगता है पानी
उसकी ऊपरी सतह पर
सब शांत होता है।
सामने का किनारा
आकाश का रंग चुरा लेता है
ऐसे बनती है नदी।
ऐसे बनती है नदी
बहते-बहते गढ़ती है रास्ते
चट्टान पाती है तो उससे टकराती है
खिलखिलाती है
और तट बना लेती है उसे।
नदी ख़ुश है कि कोई है
जो उसे थामता है, बांधता है
कितना भी कठोर हो पत्थर
पानी की सादगी में घुलने लगता है धीरे-धीरे
प्रेम है जो सदियाँ गुज़ार देता है वहाँ।
सार्थक हो उठता है
उसका नदी बनकर बहना।

सुनील गज्जाणी की ग़ज़लें

1.

जब भी स्मृतियों में आऊँ, मुझे सुनना मत कुछ पढ़ लेना
हर कवि की प्रेम कविताओं में हूँ, बस मर्म वो समझ लेना!

प्रेम मर्यादित, अपरिभाषित, प्रेम सागर-सा, पर्वत-सा भी
प्रेम की पीड़ा प्रेम ही जाने प्रेम एक विश्वास समझ लेना!

दूरियाँ भूगोल में हैं मन तो कहे तेरे मेरे प्रीत की कथा
रोम-रोम देह में तुम, रचे-बसे एक एहसास की तरह!

व्यक्त क्या करूँ या करूँ कुछ अपने प्रेम का नामकरण
अंतस प्रेम प्रिय मेरा, हो तुम मेरी सांस, अरदास की तरह!

2.

दरवाज़ा मगर दीमकों का घर हो चुका
घर था विवाद में अब मक़ान हो चुका!

लत लगी है तुझसे मिलने की अब तो
बंदिशें, घर अब निगेहबान हो चुका!

ख़ानाबदोश बस्तियाँ हैं उनका रिवाज़ नहीं
इमारतों का जाने क्या-क्या रुझान हो चुका!

मेरी सूरत सवालों भरी नज़र से मत देखो
दौर देखे, चेहरा वक़्त का निशान हो चुका!

3.

कितना मखमल-सा आदमी है
शायद कांटों में पला आदमी है!

मख़मल में टाट के कसीदे
कितना ज़मीं से जुड़ा आदमी है!

हिमालय ग़वाह हर वक़्त का
वो हर दौर से गुज़रा आदमी है!

भीड़ से किसका पता पूछ रहा वो
आज भी काग़ज़ों में उलझा आदमी है!

आदमी खुद को ही चुनौती दे रहा
उसूलों की राह जो खड़ा आदमी है!

4.

जुबां कुछ हद में रहें तो अच्छा है
जुनूं सरहद पे रहे तो अच्छा है!

जुबां एक सलीका ज़िंदगी जीने का
जुबां दिलों में उतरें तो अच्छा है!

तेरी ख़्वाहिशों अंदाज़ा है मुझे
ढो मत इन्हें अंजाम दें तो अच्छा है!

सियासत तहज़ीब बदल चुकी
तू आँखों की पट्टी हटाए तो अच्छा है!

जुबां का कोई ज़िस्म नहीं होता
इसकी तासीर तू समझे तो अच्छा है!

5.

हल्की थपकियाँ तेरी बेशक़ीमती दौलत-सी
डूब जाता नींद में माँ, तेरी गोद लगे अमृत सी

अनपढ़ हो फिर भी कुशलता से पढ़ लेती हो
अद्‌भुत कलेजा माँ तेरा मौन हूँ मुझे जान लेती हो

माँ उजले प्रतिबिम्ब की भान्ति पिता के जीवन में
धूप-छाँव हरेक पथ खड़ी पिता के सम्बल में

किनारे पाठ-पूजा, मंदिर-वंदिर माँ है नास्तिक
गृहस्थी, गऊ ग्रास पहले माँ हो गई आस्तिक।

हरिहर झा की कविताएँ

धरती माँ को घाव लगा है

ऊष्मा झाँके सूरज ले कर, धरती माँ को घाव लगा है।
छीने जेवर, अंग भंग फिर
मनमाना बँटवारा होता
नालायक है मानव
ज्वाला में झुलसा कर पूँजी ढोता
शरीर छलनी, लहू लगा पर माँ का आँचल, प्रेम पगा है।

मँझधार फँसे कहाँ किनारा
सभी घोंसले, बेबस रोते
घबराहट में, कहाँ उड़ गए
राह भटकते, मैना तोते
झुरमुट गायब, मॉल बनाकर, भोले वन को, खूब ठगा है।

नभ में चमकी, बिजली
बादल से कहती थी आ जा छूले
गिरी धरा पर, डसा पवन को,
जो सावन में झूला झूले
अंगारों का बाना, ऋतु ने मानवता को दिया दगा है।

बेबस डाली, जड़े खोद ली
फटे तनों से निकले सिक्के
अंधे खड्डे से भविष्य की
सोना, चाँदी टप-टप टपके
चोट सहन कर पोषण देती रहती माँ का
दिल सलगा है।

डायन नाचे

डायन नाचे, हिम्मत छूटे।
गीत भयंकर कोई गाए
मुँह से कौर छीन कर खाए
भयप्रद मुखड़ा देख-देख कर
धोखा पगडंडी खा जाए
सौदागर की गठरी लूटे, डायन नाचे, हिम्मत छूटे।

नाच पिशाचों में दिखलाए
चिल्लाहट कानों में छाए
हा-हा, हू-हू मुँह से निकले
कचरे की पुतली बन जाए
झाडू पलटे, धुआँ दिखाए, डायन नाचे, हिम्मत छूटे।

घोर अँधेरा, दन्त दामिनी
लपके पल में देख कामिनी
झमझम, घमघम पायल बाजे
क्या क्या खेल करे पिशाचिनी
अफ़वाहों के किस्से झूठे, डायन नाचे, हिम्मत छूटे।

फीते नाप चलाने आते
खड्डा खोदे, यंत्र चलाते
किरणें कौंधी तमस दूर हो
पोल खड़े थे, तार मिलाते
बिजली देखी, डायन पलटे, भूत-प्रेत के किस्से झूठे।

बुद्धिनाथ मिश्र के दोहे

रोकना जरूरी है

मेड़ों पर, खेतों में
उग आये जंगल को
रोकना जरूरी है।
कविता में अनियंत्रित
छंदहीन शब्दों को
टोकना जरूरी है।

बहुत जानमारू है
विज्ञजनों की चुप्पी
ठकुरसुहाती में फूली
कलसी के सँग कुप्पी

चिरकुट की बस्ती में
बढ़ती आबादी पर
चौंकना जरूरी है।

कंधे पर तापस के
कपियों की उछल-कूद
चातक को तरसाती
स्वाती की एक बूँद

बदजुबान, बेलगाम
लावारिस पशुओं को
हाँकना जरूरी है।

टूट गयी चलनी जो
अन्न को फटकती थी
भूसे को फेंक सिर्फ
दाने को रखती थी

दुर्गन्धित घोंघों को
दूर कहीं ले जाकर

रोटी देता खेत है

सड़कें लाती हैं विकास, पर
रोटी देता खेत है
बिना खेत के महल-अटारी
धूप चमकती रेत है।

झूठी शानो-शौकत लेकर
साहब बड़े तबाह हैं
कोरोना के एक डोज में
रंक हो गये शाह हैं
जिनके पांव नहीं पड़ते थे
कभी जमीं पर भूल से
उनकी पीठ कहे, कैसे
पड़ती कुदरत की बेंत है।

मुट्ठी भर की आवश्यकता
चुटकी भर सिंदूर सी
इतने भर के लिए जिंदगी
कितनी है मजबूर सी
पेट अकेला नहीं, बीच में
नाभि चेतना की वापी
जीवन की पहली सूची में
रोटी कमल समेत है।

घर बैठो, घरवालों के सँग
बातें कर लो प्यार से
प्रीत लगा लो चाहे जितनी
निभती है दो-चार से
उड़ लो नभ में किंतु करोगे
रैन बसेरा डाल पर
मन की शांति और अपनापन
देता यही निकेत है।

जगदीश चंद चौहान की कविताएँ

अपना हिन्दोस्तान

विविधताओं से भरा ऐसा
एक सतरंगी आसमान हो,
ख्वाब बुनने का सभी को
जहाँ मुकम्मल सामान हो।

नित नई कोंपलें फूटती रहें
ऐसा कोई सुंदर उद्यान हो,
मौजमस्ती में सब खेलें-कूदें
ऐसा खुला कोई मैदान हो।

खिड़कियाँ झरोखे खुले हों
ऐसा हवादार सा मकान हो,
ऊँच-नीच का कोई भेद न हो
समतामूलक एक विधान हो।

नव सृजनता खूब फले-फूले
विचारों का जहां सम्मान हो,
मुश्किलें, बंदिशें न हो जहां
सबके लिए ऐसा मुकाम हो।

भय त्रास घुटन से मुक्त हो
ऐसे समाज का निर्माण हो,
हर रोज़ खुलकर हंस सकें
ऐसा नित नया पैग़ाम हो।

हर समस्या का जहां कोई
सौहार्दपूर्ण सा समाधान हो,
पूरी दुनिया जहाँ में उसकी
एक अलग सी पहचान हो।

हरेक छोटे-बड़े देशवासी को
अपने वतन पर अभिमान हो,
सुख शांति खुशियाँ हों जहां
ऐसा अपना हिन्दोस्तान हो।

कौन हैं ये...?

देश के अन्नदाता को
ये कौन बरगलाता है
कौन है जो बर्षों से उसे
झूठे सब्जबाग दिखाता है

शतरंज की विसात पर
अपने मोहरे उसे बनाता है
उसके मजबूत कन्धों से
ये कौन बंदूक चलाता है
शोषित को शोषित कर
उसका हमदर्द बन जाता है
कौन उसे उकसाकर
चौन की बंसी बजाता है
किसी अनजान भय का
बनावटी डर दिखाता है
ये कौन है जो उसकी
खून-पसीने की कमाई
उसके हिस्से की मलाई
कैसे यूँ चट कर जाता है

जबतक तू जानेगा नहीं
हक़ीक़त पहचानेगा नहीं
कोई तुम्हें बहकाता रहेगा
अदृश्य भय दिखाता रहेगा

तुम्हारे नाम से अपनी
राजनीति चमकाता रहेगा
अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये
तुझे सड़कों पर सुलाता रहेगा।

डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ

आईना होती ज़िन्दगी

जिन्दगी
एक बार फिर
बन गई चलचित्र
और खुलने लगी
एक के बाद एक
ज़िन्दगी की परतें
और वह छवियों
जो बनीं थी जीवन के जो
गाने लगीं
नृत्य करने लगी
मानस में
जाग उठीं
सारी स्मृतियों
और दिखने लगीं
सारी ज़िन्दगी की
सारी कहानी
और इतिहास
आईने की तरह
देखना होगा
यह फिर से
आईना होती ज़िन्दगी

कठिन है

कितना कठिन है
किसी की सोच को
सही में समझ लेना
और उससे भी कठिन है
स्वयं की सोच को
स्वयं समझ लेना।

मेरे ही शून्य में

रात सूनी है
मन में उचाट
अन्यमनस्कता
और चिन्ता—
जानी भी
अनजानी भी।
जागता रहूँगा
इसी के साथ
शून्य में
और बहती रहेंगी
यामिनी
प्रभात
और संध्या
यूँ ही अश्रान्त
और मेरा उच्चाटन
मंडराता रहेगा
मैं खोजता रहूँगा
अनथक
अश्रान्त
मेरे ही शून्य में॥

तुष्टीकरण

घिरे रहे हैं
आपदा के घन
विकट
घनघोर।
देश को ले जाएगा
तुष्टीकरण
किस ओर?

सन्तोष खन्ना की कविताएँ

मुट्ठी में सूरज

मुट्ठी में सूरज भरने की
ख्वाहिश तो कर
वह पास आ मुस्कुराये गा
अपनी रश्मियों से तन मन को
चूम चूम जाये गा।

कभी सागर के सीने पर
चलने का मन तो बना
सूरज के दहकते साये में
लहरों का रेला लहक लहक
किनारे छूने आयेगा।

गगन के सितारे गिनने का
तसव्वुर तो कर
खुलेंगे गणित गलियारे
आर्यभट्ट भास्कर मुस्करायेंगे
अनसुलझे रहस्य खुलते जायेंगे।

मन के सूरज देखने की
अद्भुत होती है जिजीविषा
धीरे-धीरे धैर्य धर
उतर जाओ अनदेखी वादियों में
सहस्र सूरज का नज़ारा नज़र आयेगा।

युद्ध

दुनिया के कोने कोने में
कितनी ही
विचारधाराओं का
दम भरा गया
इन के लिए कई बार GB
कई-कई देशों में
भयंकर युद्ध लड़ा गया
शायद सब थी
चांद आसमान-सी
हर कोशिश
रही नाकाम
जंग अब भी जारी है
विचारधाराओं के नाम।

ईश्वर

मेरे साथ ही पैदा हुआ मेरा ईश्वर
आज वह मुझ से हो गया बड़ा
बुलाती हूँ पास दूर रहता खड़ा
बतियाना चाहती हूँ नहीं बोलता
मेरा मन रहता अब डरा डरा।

कभी कभी खो जाता वह
ब्रह्माण्डीय खोंहों में
करोड़ों सूर्यों की उष्णता में समा
कैसे समझूँ उसे
कैसे बनाया उसने
अनन्त अपार संसार
सन्नाटे का पारावार
शून्य की माला में
पिरो डाले
सागर और पहाड़
कभी कभी दहाड़
खोल देता तीसरा नेत्र
दांव पर लग जाती मानवता
होने लगता विनाश
तब अनायास ही मुंद जाती
मेरी आंखेए मेरे भाव
प्रार्थना में बंध जाते मेरे हाथ
और बुदबुदाते होंठ
ओ कल्याणी शिव
अपना विरद बचाओ
कल्याणकारी रुप दिखाओ
सब पर अपनी करुणा बरसाओ।

पुस्तक समीक्षा-1

काल के कपाल पर हस्ताक्षर (हरिशंकर परसाई की प्रामाणिक जीवनी)

समीक्षक : राहुल देव

आने वाला वर्ष हिंदी व्यंग्य के शलाका पुरुष हरिशंकर परसाई का जन्म शताब्दी वर्ष है। इस अवसर पर वरिष्ठ लेखक राजेंद्र चंद्रकांत राय द्वारा हरिशंकर परसाई की जीवनी 'काल के कपाल पर हस्ताक्षर' सेतु प्रकाशन द्वारा प्रकाशित होकर मुझे मिली।

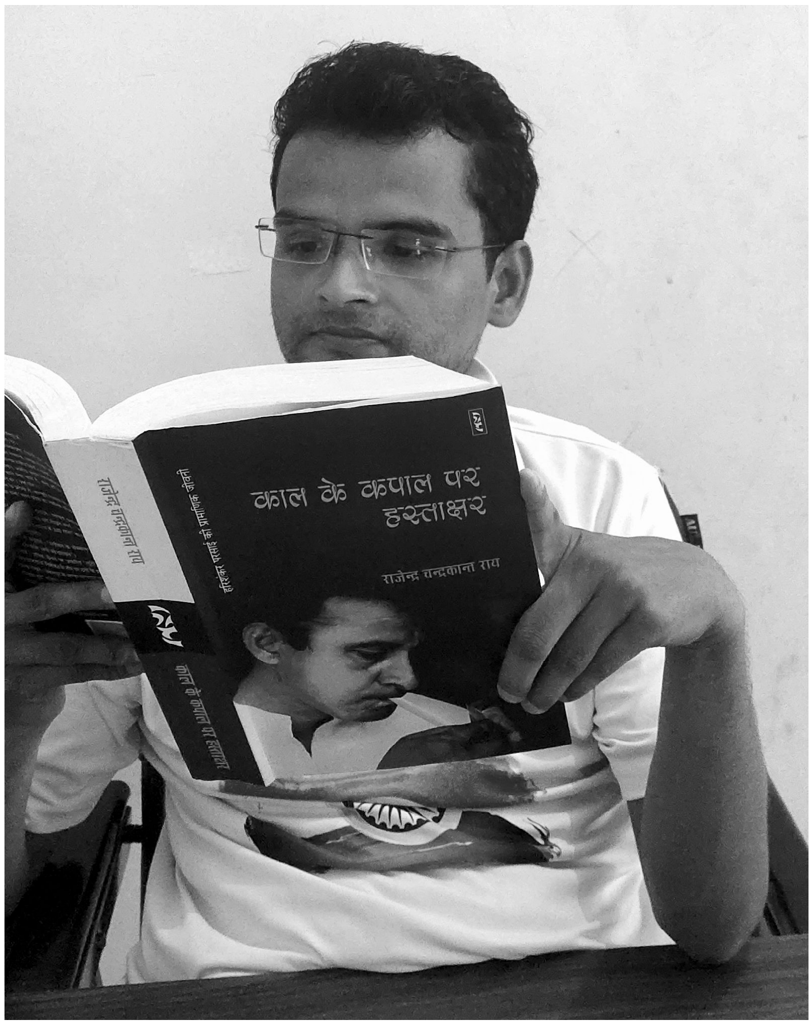

इस जरूरी जीवनी को हिंदी समाज को ऐसे समय मे उपलब्ध करवाकर राजेन्द्र जी ने परसाई जी के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है। राजेंद्र चंद्रकांत राय परसाई जी के काफी नजदीकी रहे हैं।

लेकिन इतने बड़े लेखक की जीवनी लिखने के लिए केवल नजदीकी ही काफी नहीं बल्कि और भी तमाम सारी तैयारियां और चुनौतियां होती हैं जिसे लेखक ने अपने परिश्रम और धैर्य से पार पाया है। अपनी इस कृति में लेखक परसाई जी के लगभग पूरे जीवन चरित्र को उभरने में सफल रहे हैं। जीवनी के पूर्वांक में वे लिखते हैं, 'इसे लिखने की योग्यता हासिल करने में मुझे पचास साल का अरसा लगा और लिखने में तीन साल का।'

निश्चित ही उनका यह काम ऐतिहासिक महत्व का काम बन गया है। अपने विशालकाय प्रारूप में यह एक उपन्यास परक जीवनी है जोकि पूरी विश्वसनीयता के साथ परसाई जी के जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करती है।

सम्पूर्ण जीवनी को उन्होंने दो खण्डों में बांटा है एक देश की आजादी से पहले जिसे उन्होंने 'काल से मुठभेड़' का नाम दिया है और दूसरी देश की आजादी के बाद से परसाई

के देहांत तक का समय जिसे उन्होंने 'काल के कपाल पर हस्ताक्षर' नाम दिया है। आपकी यह कृति परसाई जी के अंदर बैठे परसाई का ईमानदार अनुसंधान करती है और पाठक को हरिशंकर परसाई के व्यक्तित्व और कृतित्व के लगभग हर पहलू से बड़े ही पठनीय तरीके से परिचित कराती है। इस कृति में लेखक अपने तरीके से अपने प्रिय लेखक की खोज करता है। इस प्रक्रिया में वह परसाई के जीवन के बहुत अंदर तक प्रवेश कर जाता है और कई ऐसे अछूते और मार्मिक प्रसंग हमारे सामने लाता है जो इससे पहले हिंदी साहित्य परिसर में अप्रकट थे।

ऐसा करते हुए उपन्यास और जीवनी दोनों विधाएँ कब एकाकार हो जाती हैं पाठक को पता ही नहीं चलता। 650 पृष्ठों से अधिक का विस्तार होने के बावजूद यह किताब आपको स्वयं से बांधकर रखती है। रचनात्मक और शोध दोनों ही मानकों पर लेखक खरा उतरा है।

किताब को पढ़ते हुए आप पाते हैं कि न सिर्फ एक बड़े लेखक का लेखन बल्कि उसका जीवन भी हमें उसे समझने के, उससे प्रेरणा लेने के तमाम जीवन सूत्र देता है जो गुण आज के लेखको में दुर्लभ होते जा रहे हैं। आपकी यह कृति परसाई मास्साब से लेखक परसाई बनने की जीवंत दास्तांबयानी है। बीते हुए समय चक्र को उसके सही अर्थों में समझना कठिन कार्य है जिसे घटनाओं के सही क्रम में रखते हुए तदानुरूप भाषा के प्रयोग से राजेंद्र जी बखूबी निभा ले गए हैं। लेखक परसाई ने जब अपनी पहली डायरी बनाई इसका जिक्र बड़ा दिल छू लेने वाला है वह लिखते हैं, श्डायरी उनका सृजन थी। निर्माण थी। रचना थी। सोच को शब्दों में ढालने का कारखाना थी।

विचारों की फसल उगाने का खेत थी। कलम उनका औजार बन गई। जैसे हथौड़ा लोहार का। जैसे हल किसान का। जैसे रंदा बढ़ई का।परसाई को परसाई बनाने में जिस किसी का भी योगदान रहा उन सभी का जिक्र इस पुस्तक में विस्तार से है।

उनकी वैचारिकता के निर्माण में किस तरह उनके पूर्वज लेखक शामिल रहे उन सब की गाथा यह जीवनी बड़ी ही सादगी से कह जाती है। बीते हुए समय को ठीक से समझ कर ही आने वाले समय की पहचान की जा सकती है। एक सर्वसमावेशी बेहतर मानवीय समाज की संकल्पना का मूल मंत्र यही है। समय की सच्चाइयों से कट कर हम कभी आगे नहीं बढ़ सकते। परसाई का लेखन ठीक इसी संक्रमण काल की अभिव्यक्ति है। जबलपुर आने के बाद तो जैसे परसाई यही के होकर रह गए। इस शहर की पहचान परसाई से और परसाई की पहचान जबलपुर से हो गई। इस घटनाक्रम में एक तांगे वाले से परसाई की बातचीत का बड़ा रोचक प्रसंग आता है।

हरिशंकर परसाई जीवन भर अलग-अलग मोर्चो पर लड़ाई लड़ते रहे। चाहे वह परिवार हो, चाहे आजीविका का संघर्ष हो या फिर चाहे लिखकर पहचान बनाने की अदम्य इच्छा। इस कृति का सानिंध्य हमें थोड़ा और मनुष्य बना देता है। हरिशंकर परसाई जैसा कालजयी लेखक कहीं शताब्दियों में एक बार पैदा होता है। हरिशंकर परसाई के लेखन में समाज और व्यक्तियों को पहचान, समस्याओं की जड़ तक पहुंचने और उनके यथार्थवादी समाधानों तक पहुंचा देने वाली सांकेतिक दृष्टि मौजूद है। परसाई का पूरा साहित्य सामाजिक उत्तरदायित्व का लेखन है। वह युगचेतना को दिशा प्रदान करता है। वास्तविक साहित्य यही कार्य करता है। इस महत्वपूर्ण जीवनी के रूप में राजेन्द्र जी के इस अवदान को व्यंग्य साहित्य के लिए इस साल की उपलब्धि की तरह से देखा जाना चाहिए।

पुस्तक समीक्षा-2

गहन अनुभूतियों से भरा काव्य-संग्रह “साँझ के पंछी”

समीक्षक : विजय कुमार तिवारी

काव्य सृजन को लेकर हर रचनाकार का अपना चिन्तन और आलोक होता है। कोई आंतरिक चेतना आसपास की संगतियों-विसंगतियों से अनुप्राणित होकर गहन भाव-संवेदना के साथ साहित्य की विधा में ढलने लगती है। विधा का चयन रचनाकार की अपनी स्वतंत्रता है। काव्य विधा शायद हर किसी के मन में सबसे पहले प्रस्फुटित होती है। यह कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है परन्तु हर लेखक पहले कवि ही होता है। कविता मन के भावों को बहुत सहजता से सामने लाती है, विस्तार देती है और सबका सम्बल बनती है। मुंबई में रहने वाली कवयित्री एवं चित्रकार सुश्री शिवाली ढाका का ऐसा ही सम्बल प्रदान करने वाला काव्य संग्रह “साँझ के पंछी” मेरे सामने है। पुस्तक के आवरण पृष्ठों पर लिखा वक्तव्य उद्धृत करने योग्य है– “एक रचनाकार के तौर पर शिवाली की दृष्टि बेहद व्यापक है और इसी कारण उनकी कविताएं कभी प्रकृति के सौन्दर्य का रसास्वादन कराती हैं तो कहीं तीखे सवालों से साक्षात्कार करती हैं। अपनी जड़ों से लगाव और जुड़े रहने की भावना उनकी कविताओं में बेहद कोमल, शांत और शिष्ट शैली में प्रकट होती है। शिवाली एक अच्छी चित्रकार के रूप में पहले से ही स्थापित हैं और अपनी अनुभूतियों, अनुभवों को समेटते हुए बहुत समय से काव्य-सृजन कर रही हैं।” संग्रह के शुरू में उनकी लम्बी आभारोक्ति के पीछे के भाव समझने योग्य हैं। अमित कल्ला जी ने अपनी भूमिका में उनके काव्य-चिन्तन व लेखन पर बड़ी सार्थक, सशक्त टिप्पणी की है। शायद इसके बाद कहने के लिए कुछ भी रह नहीं गया है। शिवाली ने भी अपना आत्मकथ्य बड़े सधे हुए अंदाज में लिखा है– पिता आते तो अपने साथ अनेक साहित्यिक पत्रिकाएँ ले आते, माँ कहती– तुम सोचती बहुत हो, लिखा– करो। शादी के बाद पति भी लिखने के लिए प्रेरित करने लगे। अपने संग्रह को लेकर विस्तार से उसने जीवन की सच्चाइयों के बारे में बताया और लिखा है ऐसा भी कह सकते हैं कि मैंने इन कविताओं को नहीं, अपितु कविताओं ने मुझे गढ़ा है। “साँझ के पंछी” शिवाली का पहला काव्य-संग्रह है जिसमें उनकी कुल 67 कविताएँ संग्रहित हैं। मानवीय संवेदना के बिना हमारी रागात्मक चेतना विस्तार नहीं पाती। हम तभी जुड़ पाते हैं जब भीतर कोई करुणा, दया या प्रेम का भाव होता है। ‘भाव हूँ मैं’ कविता का संदेश यही है, भाव न हो तो शब्द या वाक्य कोई अर्थ नहीं रखते। कवयित्री ‘दर्पण बोलता है’ कविता में अनेक सन्दर्भों, बिंबों के साथ सच्चाई बता रही हैं, जो हम कह नहीं पाते, छिपाते रहते हैं, दर्पण वह सच बोल देता है, हमारा हमसे साक्षात्कार करवा देता है और हमारी कुरूपता उजागर कर देता है। ‘मैं ही क्यों?’ से ‘तुम नहीं तो और कौन?’ के बीच की यात्रा समझने-समझाने की कोशिश है इस कविता में। ‘संबंधों का पेड़’ नए तेवर की कविता है, विचार स्पष्ट हैं और सारे प्राकृतिक बिंब खुलकर उभरते हैं, पंक्तियाँ देखिए प्रेम और नेह के बीज/जहाँ एक बार पड़ जाएँ/वहाँ संबंधों का पेड़ उगते/विलंब नहीं होता या इन पंक्तियों को समझिए पत्तियों की मानिंद/हर सम्बन्ध की अपनी उम्र होती है/अपनी शाख, अपनी सुगंध/अपना कंपन, अपना चलन होता है। ‘बिखरी रोटियाँ’ समाज के बड़े फलक को पकड़ती है, अन्तर्विरोध दिखाती है और कोई सच बयान करती है पर ‘गरीबी’ नाम की कैसी महामारी है/जो देश से जाने का नाम नहीं लेती है।

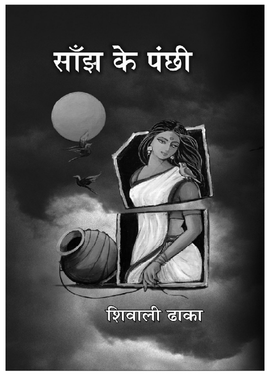

कवयित्री को जीवन का, संघर्षों का, सुख-दुख का गहरा अनुभव है, वह कहती है हद तो खुशियों की होती है/दर्द की

कोई हद नहीं होती। आगे के भाव देखिए और दर्द गर प्रीत का हो/तो तोड़ जाता है और यह अनुभूति देखिए फिर दर्द, दर्द नहीं रहता/एक मुस्कराती हुई/आह बन जाता है। 'कभी देखा है अरुणोदय?' कोई आपबीती-सी गहन अनुभूति को सहेजती, संभालती व सामंजस्य बिठाती परिस्थितियों की कविता है। यह किसी भी स्त्री के जीवन का सच हो सकता है जिसे साहस पूर्वक शिवाली ने चित्रित करने का प्रयास किया है। 'जलरंग' प्रेम के भावों के स्वीकार की कविता है, गहन अनुभूतियों के साथ सब कुछ स्मृतियों में जीवन्त है जो कभी तुमने खींचा था/मेरे सुरमई नैनों के नभ में। 'मिट्टी' की स्थिति को सहज भाव से उन्होंने समझा है इस कविता में और स्त्री-जीवन से जोड़कर सब कुछ समझाया है। वह अपने बिंबों को प्रकृति से ग्रहण करती है और जीवन में उनके आलोक को दिखाती है।

'मैं सरिता सी' कविता में नदी के साथ अपनी समानता के सारे भाव विह्वल करने वाले हैं और कोई सच दिखाने का उपक्रम व्यथित करता है। स्त्री-मन की गहन अभिव्यक्ति हुई है उनकी कविताओं में। वह प्रेम करती है तो स्वीकारती है और किसी के प्रेम को भूलती नहीं, स्मृतियों में पूरी तरह जीवंत रहता है। शिवाली चित्रकार हैं, उन्हें दृश्य रचना खूब आता है। 'बंजारन पुकार' के दृश्य उजास फैलाने वाले हैं, कोई संवाद चलता रहता है भीतर ही भीतर, पंक्तियाँ देखिए सुप्तावस्था में गँवा चुकी/अपने भाग की अरुणबेला को/चिरनिद्रा से पहले एक बार/स्वागत करना चाहती हूँ/इसी पुकार के साथ/'पूरी रात बीत चुकी, अब सो जाओ'।

'क्या देह, क्या परछाई' कविता में स्त्री दीवारों के भीतर है, मन के झरोखों से झाँकती है, स्वयं को किसी के लिए प्रतीक्षारत पाती है और सोचती है अगर हो जाए मिलन/दो संतृप्त आत्माओं का/फिर क्या देह, क्या परछाई। वह सहजता से मन की बात कह जाती हैं और नायिका भेद के हर स्वरूप को उजागर करती हैं। भीतर की संवेदनाएँ, शब्दों का सहारा लेकर भाव-दृश्य रचती हैं और कोई कविता प्रवाहित होने लगती है। गहराइयाँ, गोधूलि बेला, चाक समय का, काव्यांश और थकी साँझ जैसी कविताएँ ऐसे ही निःसृत नहीं हुई हैं, कोई-न-कोई भाव-दृष्टि है इनके पीछे। 'गहराइयाँ' गहरी अनुभूति लिए मिलन संयोगों के भाव की कविता है।

गहराई का अपना अर्थ है, सौन्दर्य है, वह आकर्षित करती है, भीतर समा जाने को प्रेरित करती है और डूबकर भी मन नहीं भरता। 'गोधूलि बेला' कविता बिंबों के माध्यम से प्रेम की बात करती है और प्रेम-यात्रा के दैविक अंत की कल्पना करती है। इन कविताओं में, इन बिंबों में प्रेम नाना रूपों में प्रकट होता है। नारी-मन का प्रेम खूब मुखरित होता है। 'काव्यांश' कविता में नायिका पूर्णता अनुभव करती है और इसका रहस्य समझना चाहती है। 'थकी साँझ' कविता में कवयित्री के पास प्रश्नों की गठरी का बोझ है, न उत्तर मिलता है और न बोझ उतरता है। ऐसी कविताएँ गहरे चिन्तन-भाव से उभरती हैं और चमत्कृत करती रहती हैं। शिवाली मानवीय संवेदनाओं व प्रेम को खूब समझती हैं और कोई गहन असंतुष्टि ही काव्य बन उभरता रहता है। हर किसी के जीवन में एक सच्चाई होती ही है, सब कुछ होते हुए भी कोई-न-कोई कोना खाली रहता है। कवयित्री ही नहीं हर कोई वहाँ प्रेम ही खोजता है और यह सत्य है, प्रेम से ही उसे भरा भी जा सकता है। 'शीतल आगमन' में झुलसी हुई देह है किसलय की, रूठा मौसम है, रेत के शुष्क होंठ हैं, उपर से रेगिस्तानी आँधी, कवयित्री ने कोई वीभत्स दृश्य देखा है और पैर के तलुए जल रहे हैं। उनका भाव अद्भुत है कि तृष्णा सिर नहीं उठाती विलग हो जाने की, निर्भरता विचलित नहीं करती बल्कि सिखा जाती है धैर्य व प्रतीक्षा जल रूपी प्रेमी की जो निष्ठुर तो है किंतु विश्वासघाती नहीं है। ग्रीष्म के बाद बरसात में बगिया भीग जाती है।

'काँच या पाषाण' के शक्तिशाली होने की तुलना चमत्कृत करने वाली है। 'पगडंडी' कविता के सारे दृश्य मनमोहक हैं और साथ चलने का भाव सम्मोहित करती है। शिवाली की स्मृतियों में गाँव, खेत-खलिहान, हवेली और सहयात्रा जीवन्त रहती है। 'उर्मिला उवाच' कविता में लक्ष्मण-उर्मिला प्रसंग की यह कोई नई व्याख्या है और शिवाली का काव्यात्मक प्रश्न झकझोरने वाला है। 'प्रभात किरण' के पीछे कोई ऐतिहासिक सन्दर्भ की गाथा है, शरणार्थी की पीड़ा विचलित करने वाली है परन्तु प्रभात की किरण सुखद अनुभूति जगा रही है। 'सार में, सारांश भी'

कवयित्री के मन की उड़ान की कविता है।

वह बिंबों में अपनी उपस्थिति से चौंकाती है साहिलों की पतवार भी हूँ, सीली-सी बरसात भी हूँ, मैं सृजन हूँ, सम्मान हूँ और नारीत्व का दर्प मैं स्वाभिमान भी हूँ। 'प्रीत का तोरणहार' का गहन भाव-संदेश यही है, हर किसी के मन के पट द्वार हल्के नहीं होते, उन्हें पाने के लिए मृदुल शब्दों की दस्तक देनी होती है, प्रीत का तोरणहार सजाना पड़ता है और स्वप्नों की रंगोली से जीवन के सतरंगी पुष्प आँगन में बिछाकर, प्रतीक्षा का दीपक जलाना पड़ता है। कवयित्री की इन शिक्षाओं को प्रेम करने वाले गहराई से समझ लें। 'आखिर कब तक?' बहुत जरूरी प्रश्न उठाती कविता है। देश-समाज में अपनों द्वारा बच्चियाँ वासना की शिकार हो रही हैं, शोषण हो रहा है, उनकी नन्हीं काया का, अबोध आत्मा का और उनके मासूम विश्वास का। कविता की पंक्तियाँ देखिए और कितना शर्मसार करेंगे/माली के नाम को/ये वासना के कीड़े/जो उगती कलियों को कुतर रहे हैं। 'आज की हवा' कविता में वे आज की हवा को आत्मविश्वास से भरा बताती हैं जो रुकने वाली नहीं है, वह हर जगह पहुँच सकती है और हर विरोध को ध्वंस करने वाली है। 'दूरियों का काफिला' समाज के मनोविज्ञान के चिन्तन की कविता है। बातचीत में कुछ शब्द फिसल जाते हैं चाहे रस से पगे हों या विष में बुझे, धैर्य की कसौटी पर चढ़ते-उतरते वे हाँफने लगते हैं, जरूरी हो जाता है अल्प विराम या बंद हो जाता है सिलसिला कहने-सुनने का। कभी-कभी कवि या कवयित्री का काव्य-चिन्तन बहुत तेज चलता है, शायद कविता की पंक्तियाँ उस चिन्तन के साथ तालमेल नहीं कर पातीं या उनका अभीष्ट सहजता से सुगम्य नहीं रह जाता। शिवाली की कविताओं में ऐसी कोई दुरूहता नहीं है परन्तु रचनाकार को सजग होना ही चाहिए कि उनका मंतव्य पाठकों तक संप्रेषित हो रहा है।

'स्याह रेखा' कविता कोई प्रक्रिया समझाती है फूलों से छलकते रंग/रंगों में महकती सुगंध/रंग व सुगंध में लिपटी प्रकृति/प्रकृति से झाँकती नैसर्गिकता/नैसर्गिकता से उपजा प्रेम। चित्रकार शिवाली कला के शिखर से कविता लिखती हैं उसी निश्छल प्रेम को/उभारने के लिए/उसके उथलेपन को/गहराई में उतारने के लिए/कहीं न कहीं खींचनी/आवश्यक हो जाती है/एक स्याह रेखा। चित्रकार एवं कवि मन का मिलन संभावनाओं का द्वार खोलने वाला है। उनकी कविताएँ चित्र-सी लगती हैं, ऐसे में उनके चित्रों में लोग कविताओं की अनुभूति करते होंगे।

'अपूर्ण को संपूर्ण बनाना' जैसा भाव कोई चित्रकार कवि ही सोच सकता है। स्त्री-मन की प्रतीक्षा, सारी तैयारी, विश्वास और प्रश्न, कुछ भाव-चित्रण देखिए ओस के भीगे पत्तों के/लरजते-मचलते होंठ/मानो दे रहे हों गवाही/कि झिझक रहे हैं कुछ/मासूम, अल्हण प्रश्न/ देहरी लाँघ जाने को। ऐसी रचनाएँ हृदय की पुकार की तरह होती हैं, प्रेम और मिलन की गहन भावनाओं-सी। 'मौसम मनभावन है' कविता में भीतरी द्वन्द्व है, भीगा मौसम है, उठती हूक है और प्यार भरी उलाहनाएँ हैं फिर भी/'मौसम मनभावन है'/ऐसा कह सकते हो/क्योंकि छोड़ तड़पता बादल/प्रीत की रिमझिम में/भीगे जो हो तुम आज। चित्रकारी के दृश्यों से होकर उभर रही कविता है 'धुँधली-सी चित्रकारी'। कुहासे से भरी सर्द रात है, स्मृतियों में उभर रहा है जलता हुआ अलाव तुम्हारे आँगन का। पंक्तियों में दृश्य देखिए उसकी गर्म आँच/खींच रही है मेरी/बर्फीली देह को/और मैं/पिघलती जा रही हूँ/उसी ओर। शिवाली अपनी कविता में चित्रांकन रचती हैं और कोई प्रेम का सूत्र जोड़ती हैं। 'फिर कोई मीरा' कान्हा के लिए अपने भावों के साथ जन्म ले रही है। 'एक थी चिड़िया' कविता में कवयित्री अपनी माँ को बड़ी मार्मिकता के साथ याद करती हैं और कहती है यह जान गई हूँ माँ/वो चिड़िया कोई और नहीं/बल्कि शायद तुम ही थी। शिवाली को सुबह का सिंदूरी सूरज, शाम में घोंसलों में लौटते पंछी तनिक भिन्न तरीके से आकर्षित करते हैं, कोई जीवन-दर्शन चित्रित होता है और प्रेम की ध्वनि गूँजती है आसपास। 'नीड़ की ओर' कविता में यही भाव मुखरित हुआ है। वह सम्पूर्ण दृश्य जीवन्त होता है उनकी पुतलियों में और वर्षों बाद भी स्मृतियों में बसा हुआ है।

'समय की हाँडी' में जीवन-दर्शन छिपा हुआ है, उनकी गहन अनुभूतियाँ सृजित हुई हैं, लिखती है तुमने देखना/जीवन के चूल्हे से/जब हाँडी उतरेगी/चाशनी का रंग गाढ़ा होगा।

'स्वर्ण परी' कविता में कवयित्री के साथ नन्हीं परी का मिलना बहुत कुछ बदल कर रख दिया है। अब वह बिखरती नहीं, उड़ती फिरती है उन्हीं पंखों के सहारे मनचली हवाओं के ऊपर। 'सिलवटें' कविता में जीवन की सच्चाइयों को सहजता से स्वीकार लेने का भाव है, समझौते करने पड़ते हैं, बिस्तर पर सिलवटें पड़ती रहती हैं और दबकर रह जाते हैं मासूम से उत्तर सदा के लिए। शिवाली अपनी उम्र से कहीं अधिक समझदार होती गई हैं और उनके सारे सन्दर्भ जीवन-दर्शन की सहज व्याख्या करते हैं। 'अभिलाषा' प्रेम में मसल दी गई पंखुडी की यथार्थ कहानी है। अक्सर प्रेमी-प्रेमिका के जीवन में ऐसे संयोग बनते हैं और प्रेमी कली को मसलकर कहीं और चला जाता है। शिवाली ने आसपास देखा होगा, यह दृश्य घटित होते, बहुत सुन्दर शब्द वाक्यों के साथ कविता में ढाल दिया है। 'क्षितिज से परे' उन स्त्रियों के जीवन पर मार्मिक कविता है जिनके पति या प्रेमी अक्सर कहते हैं छोड़ दो मुझे/उड़ जाओ कहीं। कवयित्री ने स्त्री की पीड़ा, मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण किया है। वह महत्वपूर्ण सलाह देती है किसी अनुभवी की तरह हाँ, तुम्हारे मन में लगी/एक क्षीण-सी गाँठ/अगर वो खोल दो तुम/तो उड़ने लगोगे मेरे ही संग। रिश्तों को तोड़ने के बजाए उन गाँठों को खोलने की जरुरत है। 'साँकल' खुलती नहीं है, बार-बार प्रयत्न करने पर भी क्योंकि वह तो सदियों से/बंद पड़ी/रूढ़ियों की/जंग लगी/लोहे की साँकल है। प्रयत्न करने वाले को ही लहूलुहान होना पड़ता है। शिवाली सहजता से, सहज-भाषा के शब्दों में, सधी हुई शैली में जीवन की बड़ी-बड़ी सच्चाई उजागर करती है। 'सुलगते सपने' हर किसी के सपनों के साथ दिन-रात की यात्रा है। 'छंदमुक्त' सुन्दर भाव विश्वास की कविता है। प्रेमिका विश्वास करती है और उससे इतर की कल्पना नहीं करती। 'सियासी हाथ' किंचित राजनीतिक चिन्तन की कविता है वादों की सुलगती अंगीठी में/फिर आ पड़ी है/तपती, झुलसती जनता। कवयित्री जनता की मजबूरी बतलाती है और सियासी हाथों में शिकार होती रहती है। कुछ तेरे, कुछ मेरे, सच होते सतरंगी स्वप्नों का 'अनमोल कालीन' बन ही जाता है एक दिन। कवयित्री प्रक्रिया बतलाती है इसके निःशब्द धागे में/बुनती रही फिर भी मैं/अनवरत कभी मिलन/कभी ठहरी हुई जुदाई। शिवाली की कविताओं में स्त्रियों के अनुभव, संघर्ष, सुख-दुख, धोखे भरे पड़े हैं, वे स्त्रियाँ धैर्य रखती हैं, प्रतीक्षा करती हैं, अपने हिस्से का प्रयास करती हैं और प्रेम से भरी हुई हैं। 'कच्ची राह' हो, कच्ची उम्र हो, सबका अपना महत्व है। पंक्तियाँ देखिए फिर भी कच्ची राह की/सौंधी खुशबू/हर बरसात में/दिला ही जाती है/अपनी मिट्टी का एहसास/जो अभी तक दबी है/जड़ों में कहीं। जीवन की सच्चाई को समय रहते स्वीकार लेना और उसी के अनुसार अगला कदम उठाना अच्छा है। 'सिंदूरी सूरज' में वही भाव लिए वह अपने सूरज का हाथ थामे चल रही है। सहजता से स्वयं को बदल लेना और ढाल लेना परिस्थिति के अनुसार कोई चाहे तो शिवाली से सीख सकता है। 'कही-अनकही' में लिखती है नहीं स्वीकृत अगर/झुकना इनका तो लो/तुम्हारी कही झटककर/केवल अनकही ओढ़ ली। वह संतुष्ट होकर लिखती है इससे मोहक श्रृंगार/क्या होगा किसी रिश्ते का? किसी स्त्री के समर्पित मन का निश्चय ही यह सुन्दर उदाहरण है।

अतृप्ति बहुत कुछ समझा देती है। 'माटी की गागर' की पंक्तियाँ देखिए कुछ भरी हैं/मेह से तृप्त/कुछ पड़ी हैं/स्नेह से रिक्त। अंत में सबको मिट्टी में ही मिल जाना है। 'इठलाता समय' में बिंबों के द्वारा वह जीवन के रहस्यों को समझती-समझाती हैं। 'लिखी कहानी, बनी कविता' सहज प्रेम से भरे जीवन की उड़ान की कविता है। 'मालिन की मलिन टोकरी' कविता में जीवन का गहन सत्य उजागर हुआ है, कल फूल खिले हुए थे, आज मुरझाकर उसी गंदी टोकरी में जायेंगे। 'खामोशी' टूटने पर झनझना उठता है शब्दों का मौन, उसे संभालना पड़ता है। उनकी भावनाएँ देखिए कहीं प्रीत की यह वीणा/रह न जाए अनसुनी/दबकर किसी ताल के नीचे/जिसके एक तार में तुम/और एक तार में हूँ मैं। कवयित्री दुनिया की तमाम स्त्रियों की ओर से पूछती है अपने प्रिय से क्या संभाल सकोगे/मेरे लिए मेरे प्रिय 'प्रथम पात' हर पति-पत्नी के जीवन की कविता है। भाव सुखद अनुभूति देने वाले हैं, लिखती हैं यही गर्म हवाएं/उड़ाकर लाई थी एक दिन/एक पात तुम्हारी शाखों

का/कुछ मेरे अरमानों-सा गीला/कुछ तुम्हारी चाहत में महका-सा। घर-संसार बढ़ता जाता है, कुछ सुखी होते हैं, कुछ दुख भोगते हैं, कुछ जिम्मेदारियाँ पूरी होती हैं, बहुत कुछ अधूरा रह जाता है। शिवाली के सारे बिंब व भाव हृदय को धड़का देते हैं और कोई सुखद प्रेम की बयार बहती रहती है। 'गुलाबी छतरी' के भाव-बिंब वही तो बता रहे हैं। 'साँझ के पंछी' कविता के शीर्षक को ही शिवाली ढाका ने अपने काव्य संग्रह का नाम रखा है। कवयित्री को साँझ का पंछी बहुत प्रिय है क्योंकि वह मिलन की संभावना, भोर की उम्मीदें जगाता है और प्रेम की लाली व बिखरी-महकी हृदय की धड़कन लाता है। समर्पण के गहन भाव की पंक्तियाँ देखिए कुछ शरमाई, कुछ इठलाई/शूल चुभे तो कुछ घबराई/लिपटी फिर भी इन साँसों से/भीगी हुई रेशमी एहसासों में। प्रिय के आत्मसात करने, स्वीकार कर लेने से ही जीवन की राहें सुगम, अलंकृत और प्रीत का सुखद आलिंगन है। 'मत्स्यकन्या-सी' कविता में जीवन की उलझने हैं, कवयित्री के प्रश्न हैं और श्रेष्ठता की तलाश है। 'नेह का चंद्र' कविता में वह अपने पिता को याद करती है, अपने बचपन को फिर से जीना चाहती है और खो जाना चाहती है पिता की छाँव तले। 'नाम तेरा' कविता स्त्री-मन का विस्तार बताती है कि हर प्रसंग में प्रिय का नाम नाना भूमिकाओं में उभरता रहता है। वह बताती है 'नियति' के खेल में हम दोनों टूटे थे, अंतर सिर्फ इतना था/कि तुम लहराकर/किनारे गिरे/और मैं/सीधी धारा के बीच। 'चार पल' जीवन के उतार-चढ़ाव को लेकर सशक्त भाव-चिन्तन है। 'अलंकृत हथेली' कविता स्त्री के सर्व समर्पित मन की कविता है, वह लिखती है खुली हो या बंद/अलंकृत रहेगी/यूँ ही हथेली/तेरे नामों से। 'बिन सावन बारिश की बूँदें' कविता सावन भादो के बरसात का मोहक दृश्य दिखाती हैं। बूँदें शहरों में भिन्न अंदाज में बरसती हैं और कोई सौन्दर्य सृजन नहीं होता। वहीं बूँदें किसी झोपड़ी के छप्पर की फुनगियों से टूटकर बरसने से पहले थम जाती हैं, फिसलकर सहम जाती हैं, गोबर से लिपे आँगन में बरसकर पछताते हुए धरती में समा जाती है।

'बदरा मेरे' के भावपूर्ण दृश्यों में कवयित्री रंगों का अद्भुत साम्य चित्रित करती हैं। बादल भटक कर कीकर के जंगल में उलझ गया है और उसकी मटमैली-सी झोली फट गयी है। बूँदें चाँदी के मनकों की तरह बिखर गई हैं, कुछ शाखाओं पर, कुछ गुलाबी पंखुड़ी में, कुछ रेत के गालों पर और कुछ हथेली में आ सिमटी हैं। कवयित्री की रुमानियत भरी चाह देखिए यदि राह पा जाओ तो प्रतिज्ञा करो कि फिर भूलोगे राह/इसी छत पर मेरी/फिर बरसोगे अँगना मेरे/यूँ ही बनकर सोना-चाँदी/ओ श्यामल बदरा मेरे। "अँखियाँ" कविता जीवन के अलग-अलग रूपों में आँखों का भाव कृत्य दृश्य दिखा रही हैं। "छलनी" में दीपक का संघर्ष है, वह कहता है, अंधकार में तुम्हारी सूनी देहरी पर प्रकाश फैलाता रहता हूँ, फिर भी कहते हो कि/मैं हूँ बस माटी की काया। 'अश्रु' का त्रिशंकु की तरह लटके रहना, अद्भुत साम्य दिखाया है शिवाली ने, वह अश्रुओं को परिभाषित करती है न ढलकते हैं, न ठहरते हैं, न बरसते हैं, न सँभलते हैं, हो प्रसन्न कभी क्रीड़ा करते हैं या संवेदना की पीड़ा में जलते हैं और न मौन रहते हैं, न व्यक्त करते हैं। संग्रह की अंतिम कविता है 'दरिया।' प्रायः सभी ने दृश्य देखा है, शांत जल में कोई कंकड़ गिरता है, लहरें गोलाकार दायरा बनाती हैं और किनारों की ओर बढ़ती जाती हैं। कवयित्री की स्थिति देखिए गिरा कहीं से आकर/एक कंकड़ अनजाने में/न शोर हुआ/न आह निकली/पर बन गए सैकड़ों दायरे/दिल के दरिया में। वीतरागी के हाथों से गिरता है कंकड़ तो भीगती जाती हैं आँखें। आगे की पंक्तियाँ देखिए किंतु मानवता का/धैर्यशील पवित्र जल/कहाँ किसी/दायरे में सिमटता है/नव उत्साह से भरा/एक उछाल आता है/और झिलमिला उठती है/स्नेह की चंचल रश्मियाँ।

इस तरह देखा जाए तो शिवाली के लेखन में परिपक्वता है, भाव, भाषा, शैली के साथ-साथ दृश्यांकन में भी। उनका चित्रकार होना काव्य लेखन को गंभीर दिशा प्रदान करता है। उनमें भावुकता है, संघर्ष है और सामंजस्य की भावनाएँ अधिक हैं। यह कोई कमजोरी नहीं बल्कि उनकी अपनी ताकत है। प्रथम प्रयास होते हुए भी संभावनाएँ अधिक दिखाई दे रही हैं। शिवाली को सतत लेखन करते रहना चाहिए, हिन्दी साहित्य समृद्ध होगा और उनके लेखन में परिपक्वता आती जायेगी।

पुस्तक समीक्षा-3

उदात्त प्रेम की देह से परे आध्यात्मिक अनुभूति है यह उपन्यास

समीक्षक : विनीता राहुरीकर

हमारे देश में जब भी कुम्भ के मेले लगते हैं चाहे उज्जैन का सिंहस्थ हो, प्रयागराज का कुम्भ हो, अर्ध कुम्भ हो, जनता के मन में यदि सबसे अधिक जिज्ञासा होती है तो वह है नागा साधुओं के विषय में जानना। नागा अपने आपमें ही कौतूहल का एक बड़ा विषय है और सिर्फ भारतीय ही नहीं विदेशी जनमानस में भी आजकल नागा साधुओं के विषय में जानने की परम जिज्ञासा देखी जाती है तभी तो सुदूर ऑस्ट्रेलिया के सिडनी शहर की अत्याधुनिक कैथरीन वहाँ की चकाचौंध व ऊपरी जगमग से दूर हिमालय की बर्फीली वादियों की धवल शुभ्र शांति में नागा साधुओं पर उपन्यास लिखने आ गई।

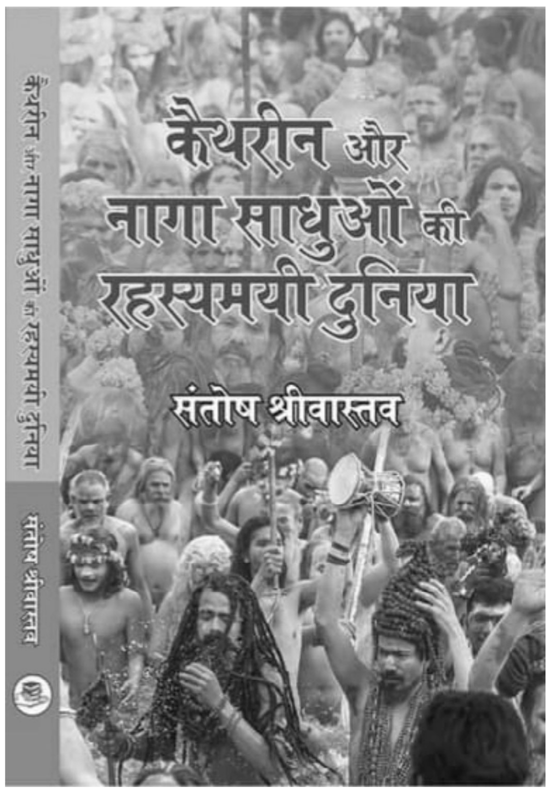

और शुरू होती है एक यात्रा कैथरीन के साथ नागाओं को जाने-समझने और उनके रहस्यमयी जीवन में झाँकने की। क्यों कोई इतना कठिन जीवन चुनता है। कुम्भ के बाद सारे नागा साधू कहाँ विलुप्त हो जाते हैं अचानक। कभी भी कोई नागा साधु हमारे आसपास दिखाई नहीं देता। पड़ाव डर पड़ाव हर कदम पर अत्यंत रोमांचक यह यात्रा नागाओं के जीवन का एक विहंगम दृश्य पाठक के सामने प्रस्तुत करती है। और परत दर परत हिमालय की दिव्यता, उसकी बर्फीली घाटियों, हाड़ कंपा देने वाली ठंड और गौमुखए,भोजबासा के जंगल, तपोवन, गुफाओं के एक अनदेखे संसार की ओर ले चलती है जहां दसियों फूट जमी बर्फ पर भोजपत्र की एकाकी कुटिया में एक वृद्धा अकेली रहती है। जहां गिरती बर्फ में एक दिगम्बर साधु आनंद से तपस्या में लीन हो जाता है।

देह में रहते हुए भी देह की अनुभूति से परे हो जाने की उच्चता मात्र भारतीय आध्यात्मिक व योग दर्शन में ही सम्भव है। विश्व का कोई दर्शन, कोई आध्यात्मिक विचारधारा दूर-दूर तक भी इसकी परछाई नहीं छू सकती। जहां शून्य से कई डिग्री नीचे के तापमान में मनुष्य ढेर सारे गर्म कपड़ों के बाद भी कांपता रहता है, सांस लेने में तकलीफ होने लगती है वहीं नागा महीनों तक आराम से तपस्या करते रहते हैं। न उन्हें ठंड सताती है, गर्मी न भूख न प्यास। देह पर नियंत्रण का अद्भुत उदाहरण है नागा।

मंगल जिसके लिए प्रेम आत्मा से जुड़ी अनुभूति है। जो प्रेम को मन में तलाशता है और दीपा की प्रेम के प्रति दैहिक अनुरक्ति से आहत हो कर वैरागी बन बैठता है। यह वैराग्य उसे हिप्पियों की गलियों से होते हुए नागा साधुओं के अखाड़े तक ले जाता है और यहीं मंगल के भीतर से नरोत्तम गिरी नागा साधू का जन्म होता है।

विदेशी हिप्पी संस्कृति जो हरे रामा-हरे कृष्णा करते हुए

भी आनंद की खोज में मारिजुआना व एलएसडी के नशे में धुत्त उन्मुक्त यौन संबंधों में डूबकर अंततः मनोरोग से ग्रस्त हो जाते हैं। न वे समाज में रह पाते हैं न उससे कट पाते हैं। देह क्षणिक सुख दे सकती है किंतु आनंद की स्थायी अवस्था तो प्रेम ही दे सकता है, प्रेम जो देह से परे आत्मा की गहराइयों में बसा हुआ हो। और मंगल को उसी प्रेम की तलाश थी जो उसे हिमालय की बर्फीली वादियों के तपोवन तक ले गयी और नरोत्तम गिरी के रूप में नागा साधू बनकर वह सदा के लिए देह की अनुभूति को भुलाकर आत्मस्थ हो गया।

कैथरीन प्रवीण के साथ चरम दैहिक सुख भोगने के बाद भी भीतर से किसी अनुभूति के लिए व्याकुल है और यही व्याकुलता उसे हज़ारों किलोमीटर दूर भारत में नागा साधुओं के प्रति आकर्षित करते हुए हिमालय की गोद में बसे भोजबासा तक ले आती है और एक दिन अनायास नरोत्तम नागा के सामने खड़ा कर देती है।

भारतीय संस्कृति व संस्कृत भाषा से कैथरीन का अत्यधिक लगाव क्या मात्र एक संस्कृति व देश के प्रति उत्सुकता है अथवा नियति का संकेत। भारत आकर कैथरीन प्रेम के एक उदात्त रूप से परिचित होती है और उसकी यात्रा प्रारंभ होती हैए भोग से त्याग की ओरए प्रेम के दैहिक स्वरूप से आत्मिक स्वरूप की ओर, भौतिक सुख से आध्यात्मिक आनंद की ओर।

नागा साधू जिनके विषय में सामान्य जनता बहुत ही कम जानती है क्योंकि वे समाज से अलग-थलग अपनी दुनिया में, अपने तप में, कठोर साधना में लीन होते हैं। संतोष जी ने उनके इतिहास, नागा बनने के लिए उनकी कठोरतम तपस्या, उनकी शाखाओं की विस्तार से जानकारी दी है। किस प्रकार भारतीय योग पद्धति देह को वज्र बना देती है कि मनुष्य बर्फबारी में भी ठंड की अनुभूति से अछूता रह सकता है। कैसे देह में रहते हुए भी विदेह हो सकता है। अद्‌भुत रहस्यमयी है यह सब। पाठक अंत तक रोमांच से बंधा रहता है। कैसे योग मन को भी वश में कर लेता है कि दिगम्बर अवस्था में रहते हुए भी स्त्री की निकटता भी उन्हें अपने धर्म के मार्ग से डिगा नहीं पाती।

इतिहास गवाह है कि जब भी आवश्यकता पड़ी है भारतीय संस्कृति व धर्म की रक्षार्थ नागाओं ने योद्धा बनकर, हाथ में अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध किये हैं और विजयी हुए हैं। उन्होंने न केवल भारतीय आध्यात्मिक चेतना की लौ को जलाकर रखा हुआ है वरन उसके भौतिक रूप अर्थात मंदिरों की भी आतताइयों से रक्षा की है। नागा साधुओं पर यह उपन्यास एक विशद शोध ग्रन्थ की तरह है जो उनके जीवन को समग्रता से पाठक के सामने रखता है। पाठक के मन की सभी जिज्ञासाओं के उत्तर देकर उनकी उत्सुकता को शांत करता है। वर्षों के शोध व परिश्रम का प्रसाद है यह उपन्यास इसीलिये इसे पढ़ते हुए उसी दिव्यता व श्रद्धा का आभास होता है पाठक को।

दिल्ली, दिल्ली से उज्जैन, और वहाँ से हिमालय के विविध क्षेत्र। सभी का इतना जीवंत चित्रण किया है संतोष जी की कलम ने की उसे पढ़ते हुए पाठक स्वयं को उन स्थानों पर प्रत्यक्ष अनुभव करता है। जैसे भोजबासा की गुफा में वह स्वयं नरोत्तम गिरीए अष्ट कौशल गिरी और महाकाल गिरी नागाओं के साथ बैठा है। पूर्णिमा की रात्रि में गौमुख के सौंदर्य में डूबा है। चांद को हाथ बढाकर सहला रहा है।

सारी विषय वासना से परे सबके कल्याण हेतु साधना की अग्नि में तपकर स्वयं को समाप्त कर देने वाले इन नागा साधुओं की रहस्यमयी दुनिया की यह रोमांचकारी यात्रा निश्चित ही अद्‌भुत है। पाठक उपन्यास के आकर्षण में कई दिनों तक बंधा रहता है। यह उपन्यास एक कालजयी कृति है क्योंकि इसके पूर्व में इस विषय पर कभी कोई पुस्तक पढ़ने में अथवा चर्चा में नहीं आयी है। यूँ भी संतोष जी के सभी उपन्यासों के विषय एकदम भिन्न होते हैं किंतु ये उपन्यास अपने गूढ़ विषय के कारण सबसे हटकर है। साहित्य में संतोष जी की लेखनी का एक और सशक्त हस्ताक्षर है। ऐसे अनेकानेक हस्ताक्षर उनकी कलम करती रहे और साहित्य समृद्ध होता रहे, संतोष जी के उपन्यासों की दीवानी इस पाठिका की यही कामना है।

साहित्य समाचार-1

चित्रनगरी संवाद मंच मुम्बई में 'व्यंग्य के नावक : शरद जोशी' पर चर्चा

अंधों का हाथी की टीम के साथ प्रेम जनमेजय सुभाष काबरा देवमणि पाण्डेय

शरद जोशी स्मृति दिवस के अवसर पर 'अंधों का हाथी' का मंचन शानदार रहा। इस नाट्य प्रस्तुति को बेहद पसंद किया गया। इस नाटक में व्यंग्य की ऐसी धार है जो श्रोताओं को कभी विचलित कर देती है और कभी वे सरकारी तंत्र के निकम्मेपन और राजनीति की असंवेदनशीलता पर तालियाँ भी बजाते हैं। प्रज्ञा गान्ला के निर्देशन में 'अंधों का हाथी' की प्रस्तुति बहुत असरदार रही। सभी कलाकारों ने सशक्त अभिनय किया।

व्यंग्य यात्रा के संपादक प्रेम जनमेजय ने बड़ी आत्मीयता से शरद जोशी के व्यक्तित्व और कृतित्व को याद किया। शरद जोशी के व्यंग्य की विशेषताओं को उजागर करने के साथ ही प्रेम जी ने इस तथ्य को भी रेखांकित किया कि कैसे शरद जोशी रिश्तो-नातो को अहमियत देते थे।

प्रेम जी ने शरद जोशी की रचनात्मकता पर केंद्रित किताब 'व्यंग्य के नावकः शरद जोशी' का परिचय भी श्रोताओं को दिया। व्यंग्यकार सुभाष काबरा का व्यंग्य लेख 'आप जाने के बाद ज्यादा काम आ रहे हो शरद जी' काफी दिलचस्प था। कार्यक्रम के संचालक देवमणि पांडेय ने शरद जोशी से जुड़े कुछ रोचक प्रसंग साझा किए।

सीग वाले गधे और डांस इंडिया डांस पर समीक्षा गोष्ठी

परसाई जन्मशती के पूर्व दिनांक 5 अगस्त को समीक्षा गोष्ठी

व्यग्यम द्वारा साग वाल गध आर डास इाडया डास पर चचा

का आयोजन किया गया जिसमें देश के सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार श्री प्रेम जनमेजय की पुस्तक सींग वाले गधे और श्री जयप्रकाश पांडेय की पुस्तक डांस इंडिया डांस पर श्री कुंदन सिंह परिहार, श्री अभिमन्यु जैन, श्री प्रतुल श्रीवास्तव ने समीक्षा प्रस्तुत की। पुस्तक में से रचना पाठ श्री यशोवर्धन पाठक और श्री सुरेश मिश्रा विचित्र ने किया। इस अवसर पर श्री जयप्रकाश पांडेय ने पुस्तक पर चर्चा की। स्वागत श्री विजय तिवारी किसलय, श्री अरुण यादव और श्री रमाकांत ताम्रकार ने किया। संचालन व्यंग्यम् के अध्यक्ष श्री रमेश सैनी ने और आभार श्री विजय तिवारी किसलय ने किया। परसाई जन्मशती के अवसर पर

व्यंग्यम् द्वारा व्यंग्य विमर्श

हरिशंकर परसाई जन्मशती के अवसर पर व्यंग्यम् द्वारा हरिशंकर परसाई जी की रचनात्मक को केंद्र में रखकर व्यंग्य विमर्श का आयोजन किया गया। विमर्श का विषय था 'हरिशंकर परसाई के समग्र पर बात'। इस विमर्श पर दिल्ली से डॉ. प्रेम जनमेजय, रीवा से डॉ. सेवाराम त्रिपाठी दिल्ली से, डॉ. रमेश तिवारी और जबलपुर से श्री राजीव कुमार शुक्ला ने विस्तार से अपने विचार व्यक्त किए।

प्रेम जनमेजय अपनी बात कहते हुए

डॉ. प्रेम जनमेजय अपने वक्तव्य के शुरू में कहते हैं, जब जबलपुर जाता हूँ तो व्यंग्य की माटी से मिलने का सुख मिलता है। मैं महसूस करता हूँ। व्यंग्य मेरी मातृभाषा है और परसाई के कारण जबलपुर व्यंग्य की मातृभूमि है। वे आगे कहते हैं स्वतन्त्रता का समय और उसके पूर्व के समय में सब एक थे। पर स्वतंत्रता के बाद कुछ लोगों के लिए दो जून की रोटी बचाने का संघर्ष था उसके लिए लड़ाई लड़ने लगे। लड़ाई वही थी यही मूल्य है जिस पर परसाई बात करते हैं और यही मूल्य कबीर कहते हैं। डॉ. सेवाराम त्रिपाठी अपने वक्तव्य में कहते हैं, परसाई का लिखा हुआ प्रत्येक शब्द सृजनात्मक साहित्य है, चाहे वह लेख हो, कहानी हो, संस्मरण हो, या पत्र। आगे वे कहते हैं, आज के परिदृश्य में लोकतंत्र खतरे में है, पर लेखक और व्यंग्यकार इस पर बात नहीं करेंगे। व्यंग्य बचकर लिखने की कला नहीं है। व्यंग्य अपने आप में आलोचना है। रमेश सैनी कहते हैं। व्यंग्यम् पिछले पचास वर्ष पहले सक्रियता से अस्तित्व में थी। हाँ बीच में, इसमें लम्बा ठहराव रहा। अब पुनः सक्रिय है। व्यंग्यम् आरंभ से ही व्यंग्य के प्रति प्रतिबद्ध और समर्पित संस्था ही नहीं वरन एक आंदोलन है जो अब तक निरंतर जारी है।

'शब्दम्' का परसाई केंद्रित आयोजन

23 जुलाई को बजाज इलेक्ट्रिकल्स के संस्कृति भवन में शब्दम् द्वारा आयोजित हुआ प्रेम जनमेजय ने कहा, व्यंग्यकार का काम समाज के चिकित्सक का है जो किसी सुंदरी के फोड़े की इसलिए चीर फाड़ करता है जिससे वे सुंदरी और सुंदर हो जाये। परसाई ने अपने सामाजिक व्यंग्य लेखन के जरिए यह काम बखूबी किया है। परसाई समाज को सुधारने से ज्यादा उसे बदलने की मुहिम में लगे थे। परसाई के निशाने पर हमेशा सत्ताएँ रही हैं, उनका लेखन समाज के लिए बेहद मूल्यवान था। शब्दम् की अध्यक्ष श्रीमती किरण बजाज ने अपने संदेश में कहा, शब्दम् इस महान व्यंग्यकार की जन्मशती के अवसर पर विमर्श कार्यक्रम के जरिए श्रद्धावनत है। उन्होंने शरद जोशी, के.पी.सक्सेना का जिक्र करते हुए कहा, परसाई का व्यंग्य लेखन इन सबसे अलग है, क्योंकि उसमें करुणा है। कार्यक्रम प्रारंभ होने से पूर्व अतिथियों ने वृक्षारोपण किया।

जबलपुर में व्यंग्यम का परसाई जन्मशती समारोह आयोजन

इस अवसर पर शब्दम् सलाहकार समिति के सदस्य और प्रख्यात व्यंग्यकार अरविंद तिवारी के नए व्यंग्य संग्रह 'लोकतंत्र से टपकता हुआ लोक' का विमोचन किया गया। विषय का प्रवर्तन और कार्यक्रम का संचालन अरविंद तिवारी ने किया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए, के डिग्री कॉलेज के प्राचार्य डॉक्टर मोहकम सिंह ने कहा आज व्यंग्य पर बेहद सारगर्भित कार्यक्रम हुआ।

साहित्य समाचार-2

इंडिया नेटबुक्स द्वारा ऑडियो बुक्स का टेस्ट लॉन्च

रिपोर्ट : शैली माथुर

नेटबुक्स समय-समय पर किताबों की दुनिया में नई-नई योजनाएँ और नए-नए माध्यम पेश करती रही है। अभी प्रिटिंग मीडिया के साथ-साथ डिजिटल मीडिया में उसके द्वारा प्रकाशन किया जा रहा है। आज एक समारोह में 'इंडियानेट बुक्स द्वारा ऑडियो बुक्स का टेस्ट लॉच किया गया जिसमें एक ऐप को डाउनलोड करके और इंस्टाल करके किताबों को ऑडियो फॉर्म में सुना जा सकेगा।

टेस्ट लॉच में हिंदी के गीतों भरी किताब 'बारिश सी तुम' जिसमें लालित्य ललित के गीतों को चंद्रकांता ने संकलित एवं संपादित किया है, के साथ 10 वर्षीय तन्वी कुंद्रा लिखित मूनलाइट (अंग्रेजी) की आडियो बुक्स लोकार्पित की गई। साथ ही संजीव कुमार द्वारा संपादित प्रेमचंद की कहानियों के चार खंड, शाशि सहगल द्वारा लिखित एवं राष्ट्रीय पुस्तक 'न्यास' द्वारा प्रकाशित पुरातन भारतीय कथाएँ और प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित 'मॉरिशस के राष्ट्रपति' का भी लोकार्पण किया गया। तकनीकी अधिकारी नरेन्द्र सिंह ने ऑडियो बुक्स का संचालन करके उपरोक्त पुस्तको के उद्धरण सुनवाये।

इस अवसर पर अध्यक्ष श्री प्रताप सहगल ने कहा कि इंडिया नेटबुक्स द्वारा जो सराहनीय कार्य किए जा रहे हैं, उनके लिए वो बधाई के पात्र हैं, और हमारी। शुभकामना कि यह प्रगति निरंतर चलती रहे। उन्होंने लालित्य ललित के कृतित्व पर उन्हें भी बधाई दी। उन्होंने आडियो बुक्स को नवीनतम माध्यम के रूप में परिभाषित किया।

मुख्य अतिथि श्री प्रेम जनमेजय ने कहा कि ऑडियो बुक्स के माध्यम से साहित्य के प्रसार में अनुपम योगदान की संभावना है। उन्होंने डॉ. संजीव कुमार को वैविध्यपूर्ण प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई दी। प्रथम ऑडियो बुक के तौर पर लालित्य ललित के प्रकाशन पर उन्होंने कहा कि अब उनका कृतित्व बहुमाध्यम, बहुभाषी और बहुविधा पूर्ण हो गया है। इसके लिए बधाई और शुभकामनाएँ।

लालित्य ललित ने प्रथम ऑडियो बुक्स के रूप में उनकी किताब के प्रकाशन का इंडिया नेटबुक्स का आभार व्यक्त किया और चंद्रकांता को धन्यवाद दिया कि उन्होंने इतना अच्छा एवं सुरूचिपूर्ण संकलन तैयार किया।

डॉ. संजीव कुमार ने बताया कि ऑडियो बुक्स में बच्चों की किताबों पर प्राथमिकता रहेगी। उन्होंने "अनुस्वार बाल संगमनष" के बारे में भी विस्तार से बताया और कहा कि इंडिया नेटबुक्स का प्रयास रहेगा कि प्रकाशन में सदैव उत्तमता और विविधता बरकरार रहे। उन्होंने बताया कि पिछले 5 वर्षों में इंडिया नेटबुक्स ने लगभग 900 पुस्तकों का प्रकाशन कर लिया है और 100 से अधिक पुस्तकें प्रकाशन के विभिन्न चरणों में हैं। उन्होंने सबके सहयोग की कामना की।

इस अवसर पर श्री रणविजय राव, चंद्रकांता, दीपक, स्वाति चौधरी आदि भी उपस्थित थे। डॉ. मनोरमा ने सभी अतिथियों को हार्दिक धन्यवाद दिया। कुल मिलाकर आयोजन सफल रहा।

सात्यि समाचार-3

राही रैंकिंग में 9वें स्थान के बाद डॉ. संजीव कुमार को जयशंकर प्रसाद स्मृति सम्मान

रिपोर्ट : शिवानी

अंतरराष्ट्रीय विश्व मैत्री मंच द्वारा। सम्मान समारोह दिनांक 19 अगस्त 2023 को हिंदी भवन भोपाल (म.प्र.) में आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में लगभग 60 साहित्य प्रेमी उपस्थित रहे। समृद्ध मंच सुशोभित हुआ अध्यक्ष आ. सुरेंद्र विहारी गोस्वामी जी, मुख्य अतिथि श्री गिरीश पंकज एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में रामायण केंद्र के अध्यक्ष डॉक्टर राजेश श्रीवास्तव की उपस्थिति से।

प्रथम सत्र में सम्मान समारोह के अंतर्गत साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने वाली तीन विभूतियों को सम्मानित किया गया।

डॉक्टर संजीव कुमार को उनके प्रबंध काव्य 'कोणार्क एक प्रेम मंदिर' हेतु जयशंकर प्रसाद स्मृति सम्मान से सम्मानित किया गया।

मंच की संस्थापिका एवं अध्यक्ष श्रीमती संतोष श्रीवास्तव ने कोणार्क एक प्रेम मंदिर खंडकाव्य की समीक्षा करते हुए कहा कि "कोणार्क" एक ऐसा ग्रंथ है जो काव्य के सामयिक उच्चतम प्रतिमानों की छांव और धूप में पाठक के जेहन में फिर से मानो किसी इम्तहान से गुज़रा हो। कोणार्क मात्र एक स्थल नहीं है, वो मात्र एक स्थापत्य ही नहीं है, और तो और, वो महज़ एक श्रद्धा स्थल भी नहीं है बल्कि कोणार्क की अवस्थिति पत्थरों से प्रमाणित एक एक राग है जिसकी झंकार को इतिहास ने अपने प्रामाणिक सुर दिए हैं। इसे वक्त ने गाया है।

सत्र का संचालन आकाशवाणी भोपाल की उद्घोषक श्रीमती शशि बंसल ने किया। द्वितीय सत्र आनंद दायी कविताओं की प्रस्तुति से सराबोर रहाजिसका संचालन श्री

मुजफ्फर इकबाल सिद्धीकी ने किया। अंत में धन्यवाद ज्ञापन श्रीमती महिमा श्रीवास्तव ने किया।

अंततः

ज्यों ज्यों बूड़े परसाई रंग

प्रेम जनमेजय

इन दिनों परसाई जन्मशती के आयोजनों के बहाने से व्यंग्य चर्चा में है। हिंदी व्यंग्य जिस पर बात करने से गंभीर आलोचक किनारा करते थे, उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, अब परसाई की जन्मशती के बहाने व्यंग्य पर बात कर रहे हैं। वैसे हम परसाई पर जितना हम बात करते हैं उतने ही समृद्ध होते हैं। बिहारी ने कहा है ज्यों ज्यों बूड़े श्याम रंग त्यों त्यों उजलो होई ज्यों ज्यों बूड़े परसाई रंग त्यो त्यों समृद्ध होई।

विरोध विसंगत समय को नपुंसक होने से बचाता है। हमारे देश के पिछहत्तर वर्षीय इतिहास में जब भी समय विसंगत हुआ है शब्द विरोध में उतरे हैं। विरोध कठिन कर्म है। एल्बर्ट कामू ने कहा था, 'हमारी गर्दन किसी के पावों तले दबी हो और हम विरोध की एक आवाज तक न निकाल पाएँ, इसका सीधा अर्थ है कि शोषण में हमारी भी भागीदारी है।' परसाई विरोध को जीते थे। वह महानता की श्रद्धा ओढ़कर नपुसंक नहीं होना चाहते थे। वे श्रद्धेय होने की भयावहता समझते थे। तभी तो वे लिखते हैं, ''अपने श्रद्धालुओं से मैं कहना चाहता हूँ। यह चरण छूने का मौसम नहीं है, लात मारने का मौसम है। मारो एक लात और क्रांतिकारी हो जाओ।'' सही कहा परसाई ने कि यह चरण छूने का मौसम नहीं है, लात मारने का मौसम है, मारो एक लात हो जाओ क्रांतिकारी। विरोध को जीने वाले परसाई को धार्मिक पुस्तक भी बनाया गया है। उनका नाम स्मरण खूब किया जाता है पर उनके लिखे को विचार में नहीं लाया जाता। आज परसाई की महिमा ढोई जा रही है, परसाई नाम की माला अधिक जपी जा रही है, उसका चंदन घिसा जा रहा है, अपने माथे लगया जा रहा। परसाई की रचनाओं का जितना विश्लेषण किया गया है उतना शायद ही किसी अन्य व्यंग्य लेखक का किया गया हो। संस्मरण संस्मरणों की तो ऐसी बाढ है। बाढ़ में गंगा भी अन्य नदियों जैसी मटमैली हो जाती हैं संस्मरण की इस गंगा में नहाते समय भक्तों ने अपना भी बहुत कुछ मिलाया है। स्वयं को अपने साबुन से स्वच्छ कर परसाई में डुबकी लगाई है। हर-हर परसाई किया है तथा अपने पुण्य का अधिक बखान किया है।

मैं हरिशंकर परसाई को प्रगतिशील चेतना का नैसर्गिक रचनकार मानता हूँ। वे भारतीय साहित्य का एक ऐसा ऐतिहासिक व्यक्तित्व है, जिसने मानव समाज की बेहतरी के लिए न केवल विसंगतिपूर्ण चुनौतियों का निरंतर सामना किया, बल्कि उनके विरुद्ध साहित्यिक हथियार उठाए अपितु दिशायुक्त संघर्ष के संस्कार भी दिए। हरिशंकर परसाई पर बात करना जितना सरल है उतना ही कठिन है। यह लगभग वैसे ही है जैसे आप समुन्द्र को गोताखोर की तरह, उसके अंदर तह तक न जाएँ, केवल सतह देखकर अहंकार पालें कि मैंने तो पूरा समुन्द्र देख लिया। परसाई कबीर की राह के रचनाकार हैं। जैसे कबीर ने निडर होकर हर धर्म हर जाति की विसंगितयों पर प्रहार किए हैं वैसे ही परसाई ने भी किए हैं। फर्क इतना है कि कबीर ने कविता में कहा परसाई ने गद्य में कहा। 'धर्म अभी मरा नहीं' में परसाई लिखते हैं, "यदि शूद्र ब्राह्मण की निंदा करें, तो उसकी जीभ काट लो। पर यदि ब्राह्मण शूद्र को मार डाले तो वह उतना ही प्रायश्चित करें, जितना सूअर या कुत्ते को मारने से करना पड़ता है नहा लो, जनेउ बदल लें, पूजा-पाठ कर ले, एक दिन उपवास कर ले। यानी प्राचीन धर्म-व्यवस्था के हिसाब से तू कुत्ता और सूअर की बराबरी का होता है।

तूने शिकायत की तो तू अपने धर्म से गिरा।'' परसाई ने स्वयं स्वीकारा हैः

"मैं कबीर बना तो यह सोचकर
कबीरा खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ।"

कबीरी सोच के कारण परसाई पिटे भी। वे एकमात्र व्यंग्यकार हैं जो अपने लेखन के लिए पिटे, शेष तो विचारे पिटने के जुगाड़ रचते रचते संसार से कूच कर गए या बूढ़े हो गए पर पिट नहीं पाए। जैसे कबीर का एक रूप समाज सुधारक का है वैसे ही परसाई का भी है। पर परसाई अपने सुधाकर रूप को थोड़ा-थोड़ा ही मानते हैं। वे कहते हैं कोई सुधर जाये तो मुझे क्या एतराज है। वैसे मैं सुधार के लिये नहीं, बदलने के लिये लिखना चाहता हूँ। याने कोशिश करता हूँ चेतना में हलचल हो कोई विसंगित नजर के सामने आ जाये। इतना काफी है। सुधरने वाले खुद अपनी चेतना से सुधरते हैं।''

हर लेखक का वर्तमान और अध्ययन के कारण ग्रहण की अतीत की पृष्ठभूमि उसकी दृष्टि को तय करती है। उसके सामाजिक सरोकारों के चिह्नित करने के लिए उसके वर्तमान और उसकी सोच को जानना बहुत जरूरी है। इस संदर्भ में एक बात और जरूरी है कि जब हम हरिशंकर परसाई जैसे किसी भी लेखक की आज के समय में पड़ताल कर रहे हों तो उसकी प्रासंगिकता को भी समझें। जाने कि परसाई के जाने के बाद भी परसाई अपनी रचनाओं के माध्यम से आज क्यों हमारे बीच जिंदा हैं। परसाई के समय में अनेक रचनाकार हुए, या उनसे पहले हुए पर आज हम परसाई के लिखे को रेखांकित कर रहे हैं, क्यों?

जीवन के संबंध में मुझे चार्ली चैपलिन का एक उधाहरण याद आता है जिंदगी पास से देखने में एक त्रासदी है और दूर से देखने में एक कॉमेडी।' यही व्यंग्य के साथ भी है। यदि आपके पास व्यंग्य में गहरे जाकर उससे मुठभेड़ करने का सुशिक्षित मस्तिष्क नहीं है तो अच्छी व्यंग्य रचना भी कामदी लगेगी और हर व्यंग्य रचना से आप कामदी की अपेक्षा करेंगें। व्यंग्य अगर बाण है तो उसका बाणों के रूप में प्रयोग करें। व्यंग्य प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। हथियार का एक प्रयोग सैनिक की तरह करें न कि हत्यारे की तरह। बहुत पुराना कथन है कि जब मुकाबिल हो तोप तो अखबार निकालो और मेरा कहना है कि जब मुकाबिल हो तोप तो अखबार निकालों। यह तोप का मुकाबला करने वाला हथियार हैं।

यह अंक सतोष खन्ना के लेखन पर केंद्रित है। वे विभिन्न विधाओं की लेखिका हैं। न केवल विभिन्न साहित्यिक विधाओं की लेखिका हैं अपितु उनके पास कानून के लंबे अनुभव भी हैं। अपने विभिन्न रूपों को रेखांकित करते हुए उनका कहना है "अगर मेरे व्यवसाय को देखें तो मेरा पहला जॉब ऑल इंडिया रेडियो में था" अर्थात मैं कार्यपालिका में थी। बाद में संसद अर्थात व्यवस्थापिका में और अंत में न्यायपालिका में थी। एक ही जन्म में मुझे देश सेवा के अवसर मिले तो लोकतंत्र के चौथे स्तंभ पत्रकारिता में हूँ। इन सबसे यही लगता है कि मेरे लिए भूमिकाओं का निर्णायक कोई और था।'' इसी कोई और के कारण संतोष खन्ना ने 1994 में 'विधि भारती' का प्रकाशन आरंभ किया। तीस वर्ष से वे किसी बड़ी सहायता के बिना इसका प्रकाशन एंव संपादन कर रही हैं। मुझे लगता है कि 'विधि भारती' की संपादक एंव प्रकाशक संतोष खन्ना और 'व्यंग्य यात्रा' का मैं संपादक एवं प्रकाशक एक ही यात्रा के यात्री हैं।

संतोष खन्ना का मस्तिषक यदि कानून की सूखी यर्थाथवादी, साक्ष्य और तथ्यात्मक जमीन पर दौड़ने वाला है तो कविता उनके दिल में बसती है। वे अपनी कविता में अपने दिल की यह बात समझाते हुए 'शब्द' में लिखती हैं:—

शब्द
जब मैं शब्दों के बीच होती हूँ
अकेली नहीं होती
साथ चलता है समय
आकाश के संग धरती
इन्द्र धनुषी हो जाती है
शब्द रिश्ते नाते, दोस्ती संबंध
सब निभाते हैं

शब्द अपनी संवेदना सरोकारों में
करुणा बरसाते हैं
शब्द अपने अनेक अवतारों में
उज्जाला फैलाते हैं
कभी अपनी भंगिमाओं से
दुःखी भी कर जाते हैं।

शब्द जब बन जाते हैं प्रेरणा
मैं एकाएक उठ कर
फलांगने लगती हूँ
नहीं देखती तब
रास्ते में पड़े पत्थर
झाड़-झंखाड़, नुकीले कांटे
पर्वत की चोटियाँ
कितनी भी हो दुर्गम
सब लांध जाती हूँ।

कामना यहीं है
बना रहे शब्द का साथ
जैसे सागर में उर्मि,
जैसे बादल में जल,
जैसे सुमनों में सुरभि,
जैसे कान्हा की मुरली
जैसे उषा की किरण
शब्द ही ब्रह है
गंगा-यमुना-सरस्वती की तरह
संवेदना कल्पना सृजन का संगम
शब्द की सत्ता को नमन
शब्द की सत्ता को नमन...।

संतोष खन्ना के रचनाकर्म से मैं विशेष परिचित नहीं था, लेकिन इस अंक के माध्यम से हो गया हूँ। मेरा विश्वास है कि मेरी तरह अनेक अनभिज्ञ भी ज्ञानवान हुए होगें। धन्यवाद संपादक महोदय।

फार्म-5

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विवरणों सम्बन्धी उद्घोषणा, जिसे प्रत्येक वर्ष के प्रथम अंक में फरवरी के अन्तिम दिवस के बाद प्रकाशित किया जाना है।

1. **प्रकाशन का स्थान :** सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

2. **प्रकाशन का समय काल :** त्रैमासिक

3. **मुद्रक का नाम :** बालाजी ऑफसेट,
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

4. **प्रकाशक का नाम :** डॉ. संजीव कुमार
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

5. **सम्पादक का नाम :** डॉ. संजीव कुमार
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

6. समाचार पत्र का स्वामित्व रखने वाले व्यक्ति ओर साझेदार या अंशधारक जो कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक धारित करते हों, का नाम और पता (100 प्रतिशत), डॉ. संजीव कुमार

मैं डॉ. संजीव कुमार, एतद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे संज्ञान एवं विश्वास में सत्य है।